भ्रमरगीत सार : समीक्षा एवं व्याख्या

(आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रणीत भ्रमरगीत सार
की सारगर्भित समीक्षा एव व्याख्या)

लेखक

प्रो० पुष्पपाल सिंह एम० ए०

रिसर्च स्कॉलर

प्रकाशक

अशोक प्रकाशन

नई सड़क, दिल्ली-६

आमुख

भाव-सम्राट् महाकवि सूरदास के 'भ्रमरगीत' का अध्ययन करते समय मन बारम्बार उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हुआ है, रीझा है। उसके वक्रिम भाव-वैभव ने ही यह प्रेरणा दी कि मै उस पर कुछ लिखूँ। साथ ही एम० ए० मे 'भ्रमरगीत' पढते समय मन ने बहुत सी पक्तियो के अर्थ के लिए बुद्धि को झकझोरा था जिसमे विद्यार्थियो की कठिनाइयो का भी ध्यान था। मै यह कहने का साहस तो नही कर सकता कि यह पुस्तक विद्यार्थियो की भ्रमरगीत सम्बधी प्रत्येक कठिनाई और आवश्यकता को पूर्ण करेगी, केवल यही कह सकता हूँ कि प्रस्तुत पुस्तक उस 'कुछ लिखूँ' की इच्छा का ही परिणाम है। 'भ्रमरगीत' सम्बधी अध्ययन को यदि यह पुस्तक कुछ भी सहायता पहुँचा सकी तो मै अपने श्रम को सार्थक समझूँगा।

पुस्तक के प्रणयन मे जो अमूल्य निर्देश, परामर्श एव प्रेरणा श्रद्धेय गुरुवर डॉ० कृष्णचन्द्र शर्मा 'चन्द्र' जी, उपाध्यक्ष हिन्दी विभाग, मेरठ कॉलिज, से प्राप्त हुई, उसके अभाव मे पुस्तक का पूर्ण होना कदाचित् सम्भव न था। इसमे जो कुछ अच्छा बन पडा है उसका श्रेय उन्ही को है। उनकी कृपा-स्नेह का उपयोग मैने सर्वदा अधिकार के रूप मे किया है, कृतज्ञता सहित उनका आभारी हूँ। बन्धुवर श्री कुँवर वीरेन्द्र प्रताप सिह जी एम० ए० तथा श्री रोहिताश्व कुमार जी आर्य एम० ए० का भी मै आभारी हूँ जिन्होने कभी स्नेह से तो कभी धीगामस्ती और सहयोग से पुस्तक के पूर्ण करने मे सहायता दी। अन्य जिन विद्वानो के ग्रथो से सहायता ली गई है वे भी धन्यवाद के पात्र है। पाठको के सम्मुख पुस्तक इसी आशा से रख रहा हूँ कि "सार सार को गहि रहें, थोथा देयँ उडाय।"

—लेखक

विषय सूची

भ्रमरगीतसार

व्याख्या-भाग

पद १.

श्री कृष्ण के मधुपुरी चले जाने पर ब्रज का कण-कण उनके वियोग मे व्याकुल हो उठा। अपने प्रिय सखा ज्ञानी उद्धव को श्री कृष्ण ने ब्रजवासियो को प्रबोध देने के लिए भेजते हुए निम्न सदश प्रेपित किया—

हे उद्धव ! तुम ब्रज पहुँच कर पहले नद बाबा से प्रणाम कर यहाँ की कुशलता का समस्त समाचार सुनाना, तदनन्तर राधा के पिता वृषभानु गोप के यहाँ जाकर सब कुशलक्षेम ज्ञात करना। श्रीदामा आदि ग्वाल सखाओ से मेरी ओर से प्रेमपूर्वक आलिगन-बद्ध होकर मिलना एव हमारी कुशलता का समाचार सुनाकर विकल गोपिकाओ का सताप भी दूर करना। मेरा ही अश—प्रतिनिधि—राधा—वृन्दावन मे रहती है, उससे मिलकर तुम प्रसन्नता का अनुभव करोगे। उसे चतुराई से शीश झुकाकर मेरी ओर से प्रणाम कहना। अब राधा का परिचय देते कहते है कि वह अत्यत सौन्दर्यशाली, किशोरायु एव विशाल तथा चचल नेत्रो वाली है। पीताम्बर से सुशोभित उसके हाथ मे वंशी, शीश पर मयूरपच्छो का मुकुट एव वक्षस्थल पर माला शोभा पा रही होगी।

तुम ब्रज के सघन काननो मे भयभीत मत होना, ब्रजदेवियाँ तुम्हारी रक्षा करेंगी। वे सर्वदा वृन्दावन की रक्षा करती है, कभी भी वहाँ से अलग नही होती। सूरदास जी वर्णन करते है कि इस प्रकार प्रभु ने कृपा करके ब्रज का समस्त रीति-व्यवहार समझाकर उद्धव को ब्रज भेजा और इस प्रकार अपने मन की प्रेम-भावनाओ का उद्धव से प्रकटीकरण किया।

विशेष—१ कतिपय आलोचक रत्नाकर के कृष्ण मे ही तुल्यानुराग की स्थिति मानते है, किन्तु यहाँ भी कृष्ण एव गोपी—उभय पक्ष मे समान प्रेमोत्कण्ठा है। २ "सुख सदेश सुनाय ' 'भेटियो" मे वैष्णवो के 'तत् सख सखी' सिद्धात का पोषण होता है। ३ प्रिय के प्रेम की अभिव्यक्ति

का उसके स्वरूप को अपनाकर करने का ढग भी कवियो का प्रिय विषय रहा है। एक बार रसखान ने भी कृष्ण को राधा बनवाया था—

"कोटिक काम गुलाम भये,
जब कान्ह है भानु लली बन आई।"

पद २.

श्रीकृष्ण प्रेम-विह्वल हो नद के लिए उपालम्भ भरा सदेश देते उद्धव से कहते है—

उद्धव ! नद बाबा से कहना कि तुम बडे कठोर हृदय निकले। हम दोनो भाइयो (कृष्ण एव बलराम) को दूसरे के घर डालकर इसी प्रकार हमारी कोई सुधि नही ली जैसे कोई किसी की धरोहर को लौटाकर उससे निर्लिप्त हो जाता है। आपने हमे अत्यन्त छोटी आयु से लालन-पालन कर इतना बडा किया है और हमे अनेक सुख प्रदान किये है। जब हम गोचारण को जाया करते थे तब आप हमारी हितचिन्ता मे स्नेहवश बहुत दूर तक पीछे-पीछे आते थे और अब वासुदेव तथा देवकी हमे अपना पुत्र बनाते है। आगे कृष्ण मातृ-दुलार की ललक प्रकट करते कहते है कि विधाता ने हमे पुनः यशोदा माता की गोद मे क्रीडा करने का अवसर नही दिया। इस नगर का समस्त ऐश्वर्य और विविध सुख ब्रजसुख के अभाव मे किस प्रयोजन के है ? सूर वर्णन करते है कि श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा कि तुम ब्रजवासियो को समझा कर कह देना कि हम आज-कल मे ही अर्थात् शीघ्रातिशीघ्र ब्रज आने वाले हैं।

विशेष—१. अलकार—वस्तूत्प्रेक्षा एव छेकानुप्रास। २. स्मृति सचारी का वर्णन है। ३ विद्यापति के कृष्ण को भी ब्रज के अभाव मे राज्य-सुख इसी प्रकार हेय लगा था—

"ऐसन नगर ऐसन सब नागरि ऐसन सम्पद मोर,
राधा बिनु सब बाधा मानिए नयन तेज़ अनोर।"

३. रत्नाकर से तुलना कीजिए—

"ऊधौ सुख, संपति-समाज ब्रज मंडल के,
भूलै हूँ न भूलै भूलैं हमको भुलाइबौ।"

४ भ्रमरगीत की प्रमुख वृत्ति उपालम्भ है जो वेदना की आर्द्रता मे तीव्रतर होती गई है, उसका प्रारम्भ प्रस्तुत पद से ही हो जाता है। ५ 'कठोर भये', 'थाती सौपि गये', 'तनक-तनक' एव 'आजु-काल्हि' जैसे सामान्य प्रयोगो एव मुहावरो से भाषा मे विशेष प्राणवत्ता आई है।

पद ३.

प्रस्तुत पद मे उद्धव की मथुरा विदा के समय का दृश्य-वर्णन है। जब श्रीकृष्ण जी ब्रज-स्मृतियो मे खोए हुए थे तभी उद्धव आ गए। दोनो सखा मित्रता के प्रगाढ बधन मे आबद्ध थे। उनके अन्तर और बाह्य स्वरूपो मे भी कोई विशेष असमानता न थी। दोनो अत्यत प्रेमपूर्वक आलिंगन-बद्ध होकर मिले। भेट-समय जब श्रीकृष्ण ने उद्धव के अपने जैसे ही सुन्दर श्यामल शरीर को देखा तो उन्हे बहुत पश्चात्ताप हुआ (पश्चात्ताप इसलिए कि इस कोमल शरीर मे कठिन योग की प्रस्थापना करने वाली बुद्धि क्यो है?) वे सोचने लगे कि काश! ऐसे सुन्दर शरीरधारी को भी गोपियो के समान प्रेममार्गी बुद्धि प्राप्त होती तो क्या ही अच्छा था, ब्रज जाने पर इसे वह प्राप्त हो सकती है। इसके सम्मुख प्रेम-चर्चा चलाते है तो योग की बाते ही बघारने लगता है। सूर कहते है कि कृष्ण ने सोचा कि यह ज्ञानाध प्रेमस्वरूप गोपिकाओ को योग क्या सिखा पायेगा?

पद ४

उद्धव के ब्रज जाते समय श्री कृष्ण ने अपनी अन्तर्दशा का जो प्रकाशन किया कवि उसी का वर्णन प्रस्तुत पद मे करता है।

श्री कृष्ण ने ब्रज के प्रेम की चर्चा करते हुए कहा कि उद्धव! मुझे सुखदायी ब्रजकालीन स्मृतियाँ विस्मृत नही होती। यहाँ मेरा मन नही लगता और मन मे ऐसी उमग उठती है कि अभी ब्रज चला जाऊँ। श्री कृष्ण ब्रज-स्मृतियो का ध्यान करते हुए कहते है कि गोप (ग्वालो के मण्डल का नायक) तथा अन्य सुहृद ग्वालो के साथ गौ चराने के कार्य को छोडकर हृदय अत्यत व्यथित है। अब वह माखन-चोरी की लीला कहाँ शेष रह गई है और कहाँ रह गया है यशोदा माता का प्रेमपूर्वक 'खाओ पुत्र' कहकर खिलाना। सूर

वर्णन करते है कि श्री कृष्ण के इन प्रीति-वचनो को सुन कर भी उद्धव को योग के नियम-साधना का ही ध्यान आता है।

विशेष—१ स्मृति सचारी है। २. कृष्ण को अन्त तक ब्रज की स्मृति नहीं भूलती, अन्त मे भी वे कहते हे—

> **"ऊधो ! मोहि ब्रज बिसरत नाही।**
> **हस सुता की सुन्दर कगरी और कुजन की छाही।"**
>
> (पद ४००)

पद ५.

श्री कृष्ण का ब्रज-स्मृतियो के प्रति मोह दखकर ज्ञानी उद्धव मुस्करा उठे। कवि उसी का वर्णन करता है।

श्री कृष्ण ने उद्धव को मुस्कराते हुए देखा, वे सोचने लगे कि मन मे जो शका थी वही प्रत्यक्ष हो रही हे। भाव यह है कि कृष्ण सोचते थे कि यह मेरा प्रेम देखकर उसकी खिल्ली उड़ायेगा। फिर भी कृष्ण पुन उसी प्रेम-प्रसग की चर्चा कर इस प्रकार कहने लगे।

हे उद्धव ! मुझे ब्रज-स्मृति का विस्मरण नही होता। रात्रि मे सोते हुए, दिन मे चलते-फिरते, जागते, मन कही अन्यत्र नही लगता, केवल गोकुल का ही ध्यान रहता है। जहाँ नद-यशोदा तथा व्रज का अन्य समाज है वही मेरा चित्त लगा रहता है। सूरदास जी वर्णन करते हैं कि श्री कृष्ण ने कहा कि उद्धव सुनो ! मै तुमसे इस प्रीति की एक अत्यंत रहस्यपूर्ण बात प्रकट करता हूँ— मेरे मन से कभी भी राधा की प्रीति छुड़ाये नही छूटती।

विशेष—तुलना कीजिए—

> **"ऊधौ सुख संपति ब्रज-मडल के**
> **भूलै हू न भूलै भूलै हमको भुलाइबौ।"**

पद ६

श्री कृष्ण उद्धव से ब्रज स्मृतियो का उल्लेख करते हुए कहते है— मित्र ! तुम मेरी एक बात तो सुनो। जिन ब्रज की लताओ मे अनेक प्रेम-क्रीडाएँ की है, उन लताओ के साथ गोपियो का ध्यान करके अब

पश्चात्ताप होता है। भाव यह है कि ब्रज के कुंज एवं गोपांगनाओं के अभाव से हृदय मे वेदना की टीसें उठती है। इस विकल अवस्था मे रासक्रीडा का स्मरण आते ही चित्त और भी अधिक व्याकुल हो जाता है। सूरदास जी कहते है कि श्रीकृष्ण की इन प्रेममयी बातो को सुनकर उद्धव ने कहा कि यह सासारिक प्रेम, जिसकी आप चर्चा कर रहे है, सर्वदा नही रहता, नश्वर है। इस प्रेम के जितने भी उपकरण है वे सब नष्ट होने वाले है, मिथ्या है। अर्थात् गोपियो का प्रेम भी आपसे सदैव नही रहेगा, किसी न किसी दिन नष्ट अवश्य होगा। अतएव हे कृष्ण ! तुम मेरी बात को ध्यान पूर्वक सुनो, केवल ब्रह्म से ही सम्बध सच्चा है क्योकि वह नित्य है।

विशेष—१ स्मृति सचारी है। २ अन्त्यानुप्रास अलकार है। ३ अन्तिम दो पक्तियो मे उद्धव अद्वैतवाद के सिद्धात वाक्य—'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या आकाशनैल्यवत्''—का आश्रय लेकर जगत् की क्षणिकना प्रतिपादित करते है।

पद ७

प्रेमी मन बडा सशक होता है। कृष्ण को शका होती है कि कही उद्धव ब्रज भेजने मे मेरा वास्तविक मन्तव्य न समझ ले, ('ऐसे को वैसी बुधि होती') इसीलिए वे कहते है—

हे उद्धव मैं तुम्हे मनसा-वाचा-कर्मणा ब्रज, ब्रजवासियो को प्रबोध देने के लिए भेजना चाहता हूँ, ऐसा अपने मन मे निश्चित समझकर तुम तुरत ही ब्रज के लिए प्रस्थान करो। हे उद्धव ! तुम ऐसे पूर्ण ब्रह्म के ज्ञाता हो जो रूप, रेखा एव जाति से अज्ञात है अर्थात् जिसे रेखाओ द्वारा अकित नही किया जा सकता, जिसे किसी रूप विशेष के द्वारा बताया नही जा सकता क्योकि उसका स्वरूप पल-पल परिवर्तित है, और न ही जिसे जाति विशेष के आधार पर इगित किया जा सकता है। इस ब्रह्म के न कुल का पता है न माता पिता का, जो स्वय मे पूर्ण है (कोई भी सासारिक व्यक्ति अपने मे पूर्ण नही होता—'Only God is perfect') अखण्ड एव अविनाशी है। भाव यह है कि ऐसे अनन्त ब्रह्म का ज्ञान रखने के कारण तुम अत्यत ज्ञानवान् हो।

सूरदास जी कहते है कि श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम अपना यह अनुपम ज्ञान गोपियो को दे आओ, वें मेरे विरह की नदी मे डूब रही है। भाव यह है कि गोपियाँ इस ज्ञान को पाकर ससार को मिथ्या मानकर मेरा ध्यान छोड देगी और विरह से मुक्त हो जायेगी। उन्होने आगे कहा कि तुम तुरत यह जाकर कहो कि बिना ब्रह्म को जानें हुए ससार-बधन से मुक्ति नही होती।

विशेष—१. अलकार—निरङ्ग-रूपक। २. श्रुतियो की ब्रह्मभावना के समान ही यहाँ श्रीकृष्ण जी उद्धव के निरुपाधि ब्रह्म का वर्णन करते है; तुलना कीजिए—

"वह शब्द-रहित, स्पर्शरहित, रूप-रहित व्यय-रहित, रस रहित, गध-रहित है।"—'कठोपनिषद्'

पद ८

शब्दार्थ—सुरति संदेम=१. प्रेम मदेश २ सुरति=ध्यान=योग सदेश।

श्री कृष्ण गोपियो की विरह-विकल अवस्था का ध्यान करते हुए उद्धव से कहते हैं—

उद्धव तुम बहुत शीघ्र ही ब्रज को जाओ (क्योकि गोपियाँ अत्यत विरह-विक्षुब्ध होगी) और मेरा प्रेम सदेश देकर (अथवा अपना योग-सदेश सुनाकर) मेरी प्रेमिकाओ का सन्ताप नष्ट करना। (मेरे अभाव मे) काम की अग्नि से उनका कपास सा सुन्दर कोमल शरीर विरह की उत्तप्त श्वासो से सुलग रहा होगा। रात-दिन निरन्तर रोने के कारण अश्रुओ की झडी लग रही होगी। इन नेत्रो के नीर के शरीर पर गिरते रहने के कारण काम की अग्नि प्रज्वलित नही हो पा रही होगी। इसीलिए उनका शरीर भस्मसात् नही हो रहा होगा। काम की अग्नि तो उन्हे पहले से ही सता रही होगी किन्तु इसी उपाय से आज तक उनका शरीर कुछ-कुछ चेतनावस्था मे होगा। भाव यह है कि अश्रुओ के कारण ही वे आजतक जीवित है। ऐसी करुण अवस्था मे भी बिना समझाये-बुझाये अबलाएँ धैर्य किस प्रकार रख सकेगी। सूरदास जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने कहा कि मै तुमसे अधिक

बना बना कर, शिक्षा रूप से, क्या कहूँ, तुम स्वय ज्ञानवान्, चतुर, हो। हे सुमति (अच्छी मतिवाले)! तनिक सोचो तो सही कि बिना जल के भला मछलियाँ कैसे जीवित रह सकती हैं। भाव यह है कि जिस प्रकार बिना जल के मछलियाँ जीवित नही रह सकती, उसी प्रकार बिना मेरे गोपियो का जीवन दूभर है।

काव्य-सौन्दर्य—

१. अलकार—"काम पावक······समीर" मे सागरूपकालकार।

भसम नाहिन ·····नीर" मे काव्यलिग अलकार (जहा प्रस्तुत कार्य का कारण दिया जाये वहाँ काव्यलिग अलकार होता है)। अन्तिम पक्ति मे अप्रस्तुत प्रशसा है। बात को स्पष्ट शब्दो मे न कहकर इस रूप मे कहना कि वास्तविक बात लक्षित हो जाय। २ यहाँ कवि की सशक्त भाषा का सुन्दर प्रवाह दर्शनीय है, एक-एक शब्द स्वय कवि के अभीष्ट अर्थ को व्यजित करता है। प्रथम पक्ति मे प्रयुक्त 'बेगि ही' एव पाँचवी मे 'क्यो धरै तिय धीर' की व्यजना तथा छठी पक्ति मे 'साधु प्रबीन' मे व्यग्य का कौशल दर्शनीय है।

पद ९

श्री कृष्ण ने ब्रज जाते हुए उद्धव से अत्यत भाव विभोर होकर निम्न-लिखित सन्देश कहा—

हे पथिक! तुम ब्रज जाकर हमारा यह सन्देश कह देना कि हम दोनो भाई (श्री कृष्ण एव बलराम) शीघ्र ही आ रहे है। माँ यशोदा हमारी चिन्ता मे व्याकुल न हो। आगे वे यशोदा के देवकी के पास भेजे गये सदेश के विषय मे अत्यत उपालम्भ भरी चर्चा करते हुए कहते है कि हमे यह बात बहुत बुरी लगी, हमने इस बात का बहुत बुरा माना, कि उन्होने अपने को हमारी धाय कहलाकर भेजा। तुम वस्तुत धाय नही हो, मै तुम्हारी कीर्ति का यशोगान कहाँ तक करूँ। तुमने अपना दूध पिलाकर ही (इतना) बडा किया है। आगे नन्द बाबा के लिए मनुहार भरी प्रार्थना करते हुए कहते हे कि उनसे पैर पकडकर, अर्थात् अत्यत विनम्रतापूर्वक यह निवेदन करना कि मेरी

धूमरी और धौरी गाय तनिक भी दुखी न होने पावे। सूरदास जी कहते है कि कृष्ण ने कहा कि यह और निवेदन कर देना कि यद्यपि मथुरा मे बहुत वैभव और ऐश्वर्य है तो भी आप (ब्रजवासियो) के अभाव मे कुछ भी अच्छा नही लगता। अब तो यह टूटा हुआ हृदय ब्रजवासियो से मिलकर ही जुडेगा अर्थात् आप लोगो से मिलकर ही सुख प्राप्त होगा।

काव्य-सौन्दर्य—१ अलकार—वृत्त्यनुप्रास एव अन्त्यानुप्रास। २ गौओ की हित-चिन्ता से कृष्ण के हृदय का ब्रज के प्रति असीम अनुराग और विशाल हृदयता तो परिलक्षित होती ही है, साथ ही कृष्ण के विरह की समग्र ब्रज जीवन मे व्याप्ति भी दृष्टिगत होती है। ३. जिस प्रकार सूर के कृष्ण ने मथुरा के वैभव को ब्रज-ऐश्वर्य के सम्मुख तुच्छ समझा है, उसी प्रकार रसखान भी ब्रज की करील-कुजो पर ही मथुरा का समस्त ऐश्वर्य न्योछावर करने को तत्पर है—

"कोटिक हौ कलधौत के धाम, करील की कुजन ऊपर वारौ।"

पद १०

श्रीकृष्ण के हृदय मे माँ यशोदा का दुलार उमड रहा है, उसी भावावेश मे वे ब्रज जाते हुए उद्धव से कहते है—

माँ यशोदा तुम कुशलतापूर्वक रहो—यह मेरी मनोकामना है। मै और भाई बलराम (हलायुध धारण करने के कारण बलराम का नाम हलधर) दोनो चार-पाँच दिन मे ही आ रहे है। मा से कहना कि जिस दिन से हम, यहा आकर, उनसे अलग हुए है उस दिन से हमे किसी ने (प्यार भरा नाम) 'कन्हैया' कहकर नही पुकारा। कभी भी प्रात काल मे वैसा कलेऊ नही किया और न साय के समय गौ दुग्ध की धार को अपने मुँह से ही पिया है। अब कृष्ण बाल्यावस्था की वस्तुओ से अपना नेह प्रकट करते हुए कहते है कि उनसे कहना कि मेरी वशी को तनिक सभाल कर रखे, ऐसा न हो कि राधा कभी अवसर ढूढकर उसे या मेरे अन्य खिलौनो को चुरा कर ले जाय। सूरदास कहते है कि उद्धव तुम नद बाबा से यह कह देना कि आपने तो

हृदय बिल्कुल ही कठोर कर लिया है, एक बार श्याम को मथुरा पहुँचा कर खबर तक नही ली।

विशेष—१ सगीत के आरोह-अवरोह से पद की गेयता देखते ही बनती है। २. रत्नाकर के कृष्ण को भी, सूर के समान ही, अपने वास्तविक नाम के न लिये जाने की वेदना है—

"प्यारौ नाम गोविद गुपाल कौ विहाइ हाय
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहै कहा।"

३ चतुर्थ पक्ति मे 'बसी बेनु' मे 'पुनरुक्ति-दोष' है। ४ अन्तिम दो पक्तियो मे सूर के कवि का मनोवैज्ञानिक कौशल देखते ही बनता है। कृष्ण उपालम्भ माता को नही पिता को देते है क्योकि वे जानते है माँ इस सदेश को सुन न सकेगी, उसमे इतनी शक्ति कहा ? यह उपालम्भ नद के पुरुष की परुषता ही सह सकती है।

पद ११

श्रीकृष्ण ने उद्धव को गोकुल भेजने का निश्चय किया। उद्धव ने मन मे सोचा कि कृष्ण मेरे ज्ञान का लोहा मानते है, इसीलिए मुझे गोपिकाओ को ज्ञान देने के लिए भेज रहे है। ऐसा सोचकर उद्धव अभिमान मे फूले नही समाये। इसी अवस्था का वर्णन कवि करता है।

ब्रज जाते समय उद्धव के मन का उल्लास तरगे लेने लगा। उन्होने सोचा कि आज कृष्ण ने योग सिद्धात को सत्य मान लिया है, इसीलिए मुझे नारियो के पास भेज रहे है और उन्हे योग सिखाने को कह रहे है। इस विजय के अभिमान की भावना मे भरकर उनके नेत्र ऊपर को तन गये अथवा उन्होने त्राटक (भौहो और नासिका के मिलन-बिन्दु) पर दृष्टि जमाई। वे अब मन ही-मन अपने सिद्धातो को प्रशसा करते हुए सासारिक सुख-भोग को क्षणिक मानने लगे। उन्होने प्रभु की आज्ञा को श्रेय समझकर शिरोधार्य कर लिया। सूरदास जी कहते है कि उद्धव ने सोचा, जब स्वय श्रीकृष्ण—जो उद्धव के विचार से पूर्णब्रह्म है—ही मुझे गोकुल भेज रहे है तो मै उसमे आनाकानी क्यो करूँ, उनकी आज्ञा पर मुझे ब्रज जाना ही चाहिए।

विशेष—१ **"जदुपति जोग ·· चढायो"** मे नाथ-परम्परा के अवशेष

दृष्टिगत होते है और यह सिद्ध होता है कि सूर के उद्धव बुझती हुई निर्गुण परम्परा के प्रतीक है। २ 'नयन अकास चढायो'—त्रनाटक मे नेत्र लगाकर ध्यान करने की एक यौगिक विधि। ३. अद्वैतियो के समान संसार-सुख को मिथ्या माना है।

उद्धव प्रति कुब्जा के वाक्य—

कुब्जा सूर की एक सुन्दर सृष्टि है जो भ्रमरगीत मे गोपियो के विरह को और भी मार्मिक, तीव्र एव स्त्री-जनोचित बना देती है।

पद १२.

कृष्ण प्रेमिका कुब्जा ने ब्रज जाते हुए उद्धव से गोकुल वासियो की कृष्ण से प्रीति छुडाने के लिए यह सन्देश कहा—

हे उद्धव! तुम गोकुल को जा रहे हो; तनिक एक सन्देश हमारा भी लेते जाओ। वहाँ पहुँचने के पश्चात् ब्रजवासियो से हमारी एक बात कह देना। उनसे कहना कि अपने वास्तविक माता-पिता—वासुदेव-देवकी—का प्रेम पहचानकर ही कृष्ण मथुरा आए है। हे गोपिकाओ! कृष्ण न तो तुम्हारे प्रियतम है और न यशोदा के पुत्र है। भाव यह है कि वे समस्त सम्बध भ्रामक थे। तुम तनिक अपने पिछले कार्यो पर विचार करके तो देखो, तुमने कृष्ण के साथ कौन सी भलाई कर दी? कहाँ वह निर्विकार बालक कृष्ण और कहाँ तुम यौवनमत्त गोपिकाएँ अर्थात् दोनो का कोई सुयोग नही किन्तु तुम सबने फिर भी उसे अपने वश में कर लिया। और यशोदा! उसने तो मक्खन जैसी तुच्छ वस्तु के लिए कृष्ण को बहुत दुख दिये है। तुम सबने ही (जो कृष्ण की प्रेमिका होने का दम्भ भरती हो) कृष्ण को बंधवाने के लिए रस्सी दी। तुम्हे उस (शिशु) पर तनिक भी दया नही आई। उस राधा ने जो कृत्य किये है वह छिपे नही है। इन्ही सब कार्यों से लज्जित होकर कृष्ण ने ब्रज छोड दिया। जब तुमने उनके साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया है तो अब उनके वियोग का दुख क्यो मानती हो? भाव यह है कि जो तुमने किया है उसे भुगतो। सूरदास जी कहते है कि कृष्ण ने ये सब बातें सुनकर व्यथा से सिर नीचा कर लिया, उनकी वाणी मूक हो गई क्योकि वे

दुविधा मे पड गये इधर नागरी गुण युक्त कुब्जा थी और उधर प्रेमदिवानी सरला गोपिकाएँ, किस का पक्ष लेते ?

उद्धव का ब्रज मे आना

पद १३.

उद्धव रसभूमि ब्रजभूमि मे पदार्पण करते है । उद्धव और श्री कृष्ण दोनो रूप-रग मे एक जैसे थे- 'सखा सखा कछु अन्तर नाही' अतः उद्धव को देखकर उन्हे कृष्ण समझ, वे उत्सुकता से प्रतीक्षा करती हैं किन्तु अपना भ्रम ज्ञात होने पर ठिठक कर रह जाती है । इसी का अत्यन्त सुन्दर मनोवैज्ञानिक **वर्णन** कवि ने किया है ।

गोपियाँ परस्पर कहती है कि देखो कोई कृष्ण जैसा श्यामल शरीर-धारी आ रहा है । कृष्ण जैसा ही वस्त्र धारण किये है, वैसे ही रथ पर सुशोभित है एव वक्षस्थल पर वैसी ही माला है । यह बात सुनकर अन्य गोपियाँ जिस स्थिति मे बैठी थी वैसे ही समस्त गृह-कार्य छोडकर दौड पडी । अत्यन्त सुन्दर शरीर वाले श्री कृष्ण का आगमन जान उनकी रोमा-वलि पुलकायमान हो गई एव वे प्रेम मे गदगद होकर, विह्वल हो गई । इसी बीच उद्धव उनके समीप आ गये । अपनी आशा के विपरीत देखकर वे सब ठगी सी खडी रही । सूरदास जी कहते हैं कि वे कहने लगी कि श्री कृष्ण यहाँ क्योकर आयेगे वे तो कुब्जा के प्रेम-बन्धन मे बधे है ।

काव्य-सौन्दर्य १ अनुप्रास—अन्त्यानुप्रास एव स्मरणालकार है।२ तृतीय पक्ति मे पुलक आदि सात्विक अनुभाव तथा चौथी पक्ति मे 'रही ठगी तिहि ठाम' मे 'जडता' सचारी है । ३ तृतीय एव चतुर्थ पक्ति मे 'भावशान्ति' एव 'भावोदय' है । ४. अनुभावो के चित्रण से भाषा मे भी चित्रात्मकता आ गई है । •

उद्धव का ब्रज में दिखाई पड़ना—

पद १४.

उद्धव के ब्रज मे आ जाने पर उन्हे कृष्ण समझकर एक गोपी अन्य गोपिकाओ से कह रही है —

हे सखि यह तो कोई कृष्ण जैसी ही आकृति का है वह आ भी मथुरा से इधर को ही रहा है, तू तनिक ध्यान पूर्वक अपने नेत्रो से देख। उसके माथे पर मुकुट, कानो मे कमनीय कुण्डल एव शरीर पर पीला वस्त्र सुशोभित है। वह रथ पर बैठकर अपने सारथि से ब्रज की ओर हाथ उठाकर, इगित करता हुआ कुछ कह रहा है। तात्पर्य यह है कि यह अवश्य ही मथुरा से आने वाले ब्रज से सम्बद्ध श्री कृष्ण है। मै बिल्कुल ठीक-ठीक तो नही कह सकती किन्तु कुछ-कुछ पहचानती हूँ, लगता है कि इस व्यक्ति को देखे हुए चार युग, अर्थात् दीर्घसमय हो गया है। व्यग्य यह है कि कृष्ण तुम चार-युगो के समान लम्बी अवधि के पश्चात् यहाँ आ रहे हो फिर भी हम तुम्हे पहचानती तो है। सूरदास जी गोपियो की उस अवस्था की उपमा देते हुए कहते है कि वे अपने प्रियतम कृष्ण से बिछुडकर वैसी ही हो रही थी जैसे बिना जल के मछली विकल होती है।

विशेष—१ **अलकार**—अनुप्रास, धर्मलुप्तोपमा (जहाँ उपमेय एव उपमान का साधारण-धर्म—यहा प्रियतम से बिछुडने पर विकलता -बनाया नही जाता) तथा भ्रम अलकार है।

पद १५

उद्धव के ब्रज आगमन पर जब गोपियो ने नद द्वार पर रथ खडा देखा तो वे सोचने लगी कि पुन अक्रूर आ गये है किन्तु फिर उनका भ्रम दूर होना है। उनके इसी मनोभाव का चित्रण करता हुआ कवि कहता है—

गोपियो ने जब नन्द द्वार पर खडा हुआ रथ देखा तो वे परस्पर कहने लगी कि हे सखी प्रतीत होता है कि अक्रूर पुन आ गये है। ऐसा सोचकर उनके हृदय मे अमगल की आशका होने लगी (क्योकि पहले भी कृष्ण को ले जाकर इसने अमंगल किया है) हमारे प्राणो को तो ये पहले ही श्री कृष्ण के रूप ले जा चुके है पता नही अब क्या करने आये है। दूसरी गोपी कहती है कि हे सखि! मेरा अनुमान है कि अब हम पर कुछ अनुकम्पा करने आया है। उसका विचार था कि सम्भवत यह श्री कृष्ण को लौटाने आये हो। इसी वार्ता के बीच उद्धव जी ने आकर दर्शन दिये। गोपियो ने जब उन्हे कृष्ण के मित्र के रूप मे पहचाना तो उनका तन-मन

प्रसन्न हो उठा। तब उन्होने अत्यन्त आदरपूर्वक हाथ जोडकर प्रणाम किया। आगे गोपियो ने शिष्टाचार पूवक कहा कि हमने जैसी आपकी प्रशसा सुन रखी थी वैसा ही आपको पाया भी। आप अत्यन्त चतुर और भोले है। आपके दर्शन पाकर हमने आज अपना जन्म सफल सिद्ध कर लिया। सूरदास जी कहते है कि गोपियो को उद्धव से मिलकर ऐसा ही सुख प्राप्त हुआ जैसे मछली पानी पाकर सुखी होती है। भाव यह है कि कृष्ण-वियोग मे विकल गोपियो को उद्धव के आने से एक सम्बल सा प्राप्त हो गया क्योकि कृष्ण के मित्र होने के नाते वे उनका कुशल-सदेश गोपियो को सुनाते है।

विशेष—१ अलकार—प्रथम चार पक्तियो मे भ्रम अलकार एव अन्तिम मे उपमा है।

पद १६

उद्धव के ब्रज पहुँचने पर साक्षात्कार के उपरान्त गोपियो ने उनसे अत्यन्त परिहासपूर्वक वार्ता आरम्भ की। उसी का वर्णन है।

एक गोपी ने कहा कहिये! आप कहा से आ रहे है। मुझे अनुमान मे लगता है कि आप श्री कृष्ण जी ने ही भेजे हो। उन्ही के समान आपका वर्ण है, वस्त्र भी उन जैसे ही धारण कर रखे है एव उन्ही की अनुहार पर आभूषणो को सजाया है। हमारे जीवनाधार को तो (अक्रूर) पहले ही ले जा चुके हो (भाव यह है कि तुम नही तो तुम्हारे साथी उन्हे ले गये) अब किस पर दॉत लगाये हुए हो। आगे वे उडते हुए मधुप को सम्बोधन देती हुई कहती है कि हे भ्रमर! हम सबका तो एक ही हृदय था उसे ही तुम लेकर वहा मथुरा मे रमण कर रहे हो। मथुरा मे सुदर-सुन्दर मान करने वाली सुन्दरिया है, आप वही जाइये, क्योकि आपको तो वही व्यवहार अच्छा लगता है कि हम सरला गोपिकाओ की प्रीति को तो आपने ठुकराया और उन मान करने वाली कामिनियो की प्रीति मे आप उलझ गये। अब आप ब्रज पर न जाने किस कारण से कृपालु हो रहे है? अब यहाँ आने मे अर्थात् इतने विलम्ब से हमारी सुधि लेने मे कौन सी बुद्धिमत्ता है? सूरदास जी कहते है कि आगे गोपियो ने कहा कि जितने भी काले है, उनसे हम भली-

भाँति परिचित है। दूसरे शब्दो मे जैसे निष्ठुर आपके मित्र श्री कृष्ण है वैसे ही आप है।

काव्य-सौन्दर्य १ अलकार—अनुप्रास। २. चतुर्थ पक्ति मे 'पहिराये हौ' मुहावरे का सुन्दर प्रयोग है। ३ पद के उत्तरार्द्ध मे भ्रमर के माध्यम से व्यग्य तीव्र हो उठा है एव भाषा की अभिव्यजना-शक्ति स्तुत्य है। ४. सूर की गोपियो के समान एक ही मन वाली बात से प्रेम की अनन्यता की पुष्टि अन्य कवियो ने भी की है, तुलना कीजिए—

"ह्याँ तो हुतो एक ही मन सो हरि लै गए चुराई।
हरिचन्द कोऊ और खोजि कै जोग सिखावहु जाई॥"

५ अन्तिम पक्ति से मिलाइये—

"ऊधो मैने सब काले अजमाये।"

पद १७.

प्रसंग—महाकवि सूर ने तीन भ्रमरगीतो की रचना की है। दो मे एक ही तारतम्य मे सम्पूर्ण कथा एक लम्बे पद मे कह दी गई है (दूसरे भ्रमर-गीत के लिए देखिये पद ३७६) शेष मे मुक्तक रूप मे जो भ्रमरगीत है वही वस्तुत सूर के सागर का सर्वाधिक कान्ति और ओगज से परिपूर्ण रत्न है। प्रस्तुत पद मे समस्त वर्णन आ जाता है।

उद्धव के आगमन पर कोई गोपी कुशल पूछती रह गई, कोई उनके स्वरूप निहारती, कोई शिष्टाचार मे तत्पर तथा इसी प्रकार कोई किसी परिहास मे व्यस्त रह गई। तब एक चतुरा गोपी ने कहा कि सब व्यर्थ अपनी अपनी हाक रही हो, उद्धव का उपदेश ध्यान से क्यो नही सुनती? जब इन्हे सुन्दर एव चतुर प्रियतम कृष्ण ने भेजा है, तब तो इनकी बात सुननी ही चाहिए अर्थात् कम से कम कृष्ण के नाते से ही इनकी बात सुन लो।

अब कवि ने उनके आगमन का प्रसग चलाकर कहा कि गोपी ने कहा कि जिधर श्री कृष्ण जी गये थे—अर्थात् मथुरा की ओर—उधर से ही कोई आ रहा है। वशी की ध्वनि वैसी ही हो रही है मानो श्रीकृष्ण आ रहे हो। इस समाचार से सब आनदित होकर उसी ओर दौडी। वहाँ जाकर देखा तो

उद्धव थे। किन्तु फिर भी वे अतिथि तो थे ही अत उनका यथोचित आतिथ्य किया। वे उन्हे लिवाकर राधा नद के यहाँ आई, उस समय उनके हृदय का आनन्द चुआ पडता था। नद के यहा उद्धव को अर्घ एव आरती से अभिनन्दित किया एव दूर्वादल तथा दही से माथे पर तिलक लगाया। फिर भरे हुए स्वर्ण कलशो को लाकर उद्धव की परिक्रमा की। आतिथ्य सत्कार के पश्चात् कौतूहल वश नद-प्रागण मे गोपो की भीड एकत्रित हो गयी और यादव जाति के समस्त सदस्य सम्मिलित होकर वहाँ बैठे। उन सबके आगे उद्धव के लिए पानी की जलझारी (पात्र-विशेष) रखी थी। तत्पश्चात् मथुरा की कुशल-क्षेम पूछना प्रारम्भ किया गया। उन्होने पूछा वासुदेव कुशल है ? एव आदरणीय देवी कुब्जा भी कुशल है ? अक्रूर कुशल है ? और बलराम जी भी कुशल है ? इस प्रकार कृष्ण की कुशलता पा जाने पर सब कृतज्ञतापूर्वक उद्धव के चरण पकड कर रह गई। ब्रज के इस असीम प्रेम भाव को देखकर उद्धव भी प्रेम-मग्न हो गये। प्रेम-मग्न होकर उद्धव को मन ही मन कृष्ण की यह बात कुछ ठीक नही लगी कि वे ब्रज के ऐसे अपार प्रेम को विस्मृत करके इन भोली ब्रजबालाओ को योग सिखाने की बात सोच रहे है। तात्पर्य यह है कि उद्धव का भी यह मत हो गया कि गोपिकाओ को कृष्ण से प्रेम करना चाहिए न कि विराग। इस अवस्था मे वे कृष्ण द्वारा भेजी गई पत्रिका को भी पढ कर न सुना पाये और उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। गोपिकाओ का यह असीम प्रेम देखकर उनका ज्ञानाभिमान चूर हो गया। तब उन्होने इधर उधर के प्रसग चला कर लज्जावश नेत्रो का जल नेत्रो मे ही सुखा लिया। इस स्थिति मे उन्होने सबको सम्बोधित करके अपने समस्त ज्ञान को अपने ध्यान मे सचित कर प्रबोध देने के लिए ज्ञान चर्चा आरम्भ की। हे गोपिकाओ ! जिस योग व्रत को श्रेष्ठ मुनि धारण करते है फिर भी उस निर्गुण ईश्वर का भेद नही जानते उसी सर्वशक्तिमान् ब्रह्म के व्रत को तुम सीखो और इस सासारिक विषय से पूर्ण प्रेम को छोड दो। वे उद्धव के ऐसे वचन सुनकर खेद के कारण अपने नेत्रो को नीचा करके रह गई। उनकी इस अवस्था के विषय मे कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो पहले तो वे अमृत से सीची गई थी और अब उन्ही के ऊपर विष छिडका जा रहा है। भाव यह है कि कृष्ण की कुशल

बता कर पहले तो उन्हे अमृत सदृश जीवन दान दिया, अब यह विषपूर्ण ज्ञान का उपदेश दे रहे है। गोपियो ने इस आघात से सम्भलते हुए कहा, हम तो अबला नारियाँ है। हम भला इन यौगिक-प्रक्रियाओ की रीति को क्या जाने? ऐसी कौन होगी जो श्रीकृष्ण के सरस, ऋजु प्रेम-मार्ग को छोडकर दीवार पर चित्र आदि बना कर इस योग के पचडे मे पडेगी। (ध्यान, अष्टाग साधना मे योग की एक प्रक्रिया है जो दीवार पर बिन्दु बनाकर केन्द्रित किया जाता है, उसी की कठिनता गोपिया बताती है) जो स्वरूप से अज्ञात और अग्रहणीय तथा शक्ति मे अपार आदि उपाधियो मे विभूषित होकर अदृश्य निरजन है, उसी का जप कोई कैसे करे अर्थात् वहाँ तो जप अथवा ध्यान का कोई आधार ही नही। आपकी योग-साधना के मत से नेत्र और नासिका के अग्रभाग, त्राटक, मे ब्रह्म का निवास है। वह ब्रह्म नष्ट नही हो सकता, वह नित्य है तथा वह स्वय की ज्योति मे ही प्रकाशमान होता है अर्थात् वह सहजप्रबुद्ध है। ऐसे ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए आप मन को वश मे रखने के लिए कहते हो (योग साधना मे मन को वश मे रखने पर बडा बल दिया गया है—कबीरदास जी ने भी कहा है—" काया कसूँ कमाण ज्यूँ, पंचतत्व करि बाण। मारो तो मन मृग को, नही तो मिथ्या जाण॥) पर तनिक सोचिए तो सही मन को कोई कैसे बाँध कर रख सकता है, वह तो घूम फिर कर पुन अपने रुचि के स्थान पर ही आकर रुकेगा। ऐसी अवस्था मे हम अपने मन की रुचि के आधार श्री कृष्ण को कैसे छोड दे और पराये घर, अर्थात् तुम्हारे ब्रह्म को, कैसे ग्रहण करे ? उद्धव तो मूर्ख है जो हम नारियो को योग की सीख देने फिरते हैं। वे हमको अज्ञान मे भूली हुई बताते है, बताओ भला ! हम भूली हुई है कि हमे योग सिखाने वाले लोग ? अर्थात् उद्धव भूले हुए है, हम नही। चाहे हम कृष्ण के प्रेम मे अन्धी ही सही किन्तु गोपियो से भी अधिक अन्धे ज्ञानपूर्ण दो नेत्रो वाले है, भला जो नेत्र, ज्ञानान्ध हैं उन्हे कुछ कैसे दिखाई दे सकता है ? ये जो हमे बार बार वेद और शास्त्र के उदाहरण दे-देकर अपना उपदेश दे रहे है, इनसे पूछो कि कही उन वेद और शास्त्रो से उस आदि और अन्तहीन परमेश्वर के माता और पिता का भी कुछ पता चलता है। भाव यह है कि जिन शास्त्रो मे जिस ब्रह्म का कोई

पता नही वे शास्त्र और वह ब्रह्म व्यर्थ है। तुम कहते हो वह अरूप है जब उसके चरण और भुजा नही तो फिर वह ओखली से कैसे बँध गया! जब उसके नेत्र, नासिका और मुख कुछ भी नही है तो उसने दही चुराकर कैसे खायी? और हमने गोद मे भी तो उसे ही खिलाया था किसी अन्य को नही तथा (व्रज की वीथियो मे) तुतले वचन बोल कर उसने ही हमे आनन्दित किया है। हे उद्धव! आपके यह निष्कर्ष तो उसे ही सत्य लग सकते है जिसको अपनी आँखो से न दीखता हो। हमने तो यह सब लीलाएँ अपनी आँखो से देखी है। नददास की गोपियो ने भी उद्धव से ऐसे ही तर्क किये थे—

"जो मुख नाहिन हुतो, कहौ किन माखन खायो।
पाइन विन गौ संग, कहौ को बन बन धायो॥"

गोपियाँ आगे कहती है कि हम सचमुच पूछती है (परिहास नही है) हमारी बात का उत्तर देने से तुम्हारे ही मुख से न्याय हो जायगा। यह बताओ कि प्रेम-कथा अर्थात् प्रवृत्ति मार्ग एव नियमसाधना अर्थात् निवृत्ति मार्ग दोनो मे कौन सा स्वर्ण है, वास्तविक मणि है एव कौन सा काच, झूठी मणि है। सफल योग तो उसी को मानिए जिस मे साधक अपना सिर देकर भी ब्रह्म को प्राप्त कर ले किन्तु वह सिर देकर भी प्राप्त नही होता (—'सीस उतारे भुई धरै, तब पैठे घर माहि"—कबीर) हे मधुर! (उद्धव को ही परोक्ष सम्बोधन) तुम्हे हमारी सौगध है, अब सच-सच बताओ कि योग श्रेष्ठ है अथवा प्रेम। वस्तुत प्रेम तो इस सृष्टि का सार है, प्रेम प्रेम से ही होता है और प्रेम के द्वारा ही इस ससार-सागर के पार पहुँचा जाता है। सम्पूर्ण ससार किसी न किसी प्रेम सम्बन्ध के सूत्र से आबद्ध है तथा प्रेम से ही पारलौकिक सुख की प्राप्ति होती है (सूफी कवि मौलाना रूमी ने भी प्रेम का ऐसा ही महत्व माना है—It is the flame of love that fired me. It is the wine of love that inspired me

इस प्रेम का निश्चय ही एक मधुर फल है— जीवन-मुक्ति। किन्तु इस प्रेम की सार्थकता तभी है जब श्री कृष्ण जी पुन मिले। गोपियो के इस अटल प्रेम को देखकर उद्धव अपनी योग-साधना को भूल गये। वे श्री कृष्ण

का गुणगान करते हुए प्रमुदित होकर कु जो मे फिरने लगे (क्योकि वे कु ज गोपाल के स्मृति चिह्न थे)। वे क्षण-क्षण मे पुलकित होकर गोपियो के पैर पकडते है और कहते है कि तुम्हारा यह प्रेम व्रत धन्य है। वे कृष्ण-प्रेम मे मग्न होकर बार-बार दौडकर वृक्षो आदि का आलिगन करने लगे तथा कहने लगे कि गोपियाँ धन्य है, गोपकुमार धन्य हे और धन्य ह श्री कृष्ण के द्वारा वन मे चराये जाने वाली गौएँ। वह भूमि धन्य-धन्य है जहाँ बनवारी श्रीकृष्ण ने विहार किया।

उद्धव सोचने लगे कि मै इन गोपागनाओं को ज्ञान का उपदेश देने आया था किन्तु मुझे स्वय प्रेम का उपदेश मिल गया। ऐसा विचार कर वे गोपवेश धारण कर श्री कृष्ण के पास मथुरा गये। उनका समस्त व्यवहार परिवर्तित हो गया। वे कृष्ण का यादवनाथ आदि ऐश्वर्य-सम्मानपूर्ण नाम भूल गये। अब उन्हे गोपाल और स्वामी कहने लगे। उन्होने प्रभु को कृपालु जानकर उनके चरण पकड लिए और उनसे निवेदन करने लगे कि हे प्रभु आप एक वार व्रज अवश्य जाकर गोपियो को दर्शन दे आओ। आप गोकुल के उस सुख को छोडकर यहाँ कहाँ आ पडे ? मुझे व्रज का वह असीम प्रेम देखकर कुछ भी अच्छा नही लगता। इससे आगे उद्धव कुछ कह न सके, उनके नेत्रो मे जल उमड आया (When heart is full, tongue is mute —शेक्सपियर)।

सूरदास जी कहते है कि उद्धव श्री कृष्ण के सम्मुख पृथ्वी पर गिर पडे। उनके नेत्र अश्रुपूर्ण थे। श्री कृष्ण ने अपने पीताम्बर से उनके अश्रु पूछते हुए व्यग्यपूर्वक कहा—

'कहिए योग सिखा आए ?'

विशेष—१ प्रारम्भ मे उद्धव के आतिथ्य से व्रज-सस्कृति का परिचय प्राप्त होता है। २ स्थान स्थान पर पुष्टि मार्गीय सिद्धात एव योग की कुछ प्रक्रियाओ का उल्लेख प्राप्त होता है, उदाहरणार्थ गोपियों के तर्को के माध्यम से— "चरन नही · बैन ?" मे लीला वणन' हो जाता है। ३ भ्रम, उत्प्रेक्षा, परिकराकुर, अनुप्रास आदि अलकारो एव लक्षणा तथा व्यजना शक्तियो ने भाषा का शृगार किया है।

पद १८

उद्धव ने गोपियो को निर्गुण, सर्वव्यापी, अनादि ब्रह्म का उपदेश देते हुए कृष्ण को सामान्य कोटि का मनुष्य बताया जो मथुरा जाकर राजा हो गया है और अब राजकीय कार्यो मे निरत है। प्रेम-बावरी गोपिकाए यह कैसे स्वीकार करती उनके लिए तो कृष्ण पहले जैसे ही है। वे उद्धव को प्रत्युत्तर देती हुई कहती है—

तुम हमसे कौन से कृष्ण की बाते कहते हो ? हे उद्धव हमारी समझ मे कुछ आया नही, इसीलिए आप से पुन पूछती है। कौन तो राजा हो गया किसने कस को मारा है और कौन वसुदेव के पुत्र है ? वे कोई और होगे, हमारे यहाँ तो वे अत्यन्त सुन्दर (श्रीकृष्ण) विद्यमान है जिनका मुख देखकर हम जीवित है। भाव यह है कि यदि वे यहाँ न होते तो हम जीवित नही होती। वे (श्याम) प्रतिदिन अपने स्वभावानुसार गोप सखाओ को लेकर गौ चराने जाते है। दिवस के बीतने पर सध्या मे जब लौट कर आते है तो दर्शको के नेत्र एकटक उन्ही की रूप माधुरी को देखते रह जाते है।

सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि जिसे आप वेद की विधि से सर्वव्यापक, पूर्ण, अविनाशी एव अपार बताते हो वह कौन है ? हमे तो ऐसा लगता है कि आप व्यर्थ ही यह प्रलाप कर रहे हो। इस ब्रज मे तो नद के कुमार श्री कृष्ण जी ही है, तुम्हारे यहा और कोई होगे।

काव्य सौन्दर्य—

पद्माकर से तुलना कीजिए—

ऊधो वे गोविन्द कोई और मथुरा मैं यहाँ,
मेरे तो गोविन्द मोहि-मोहि में रहत है।"

पद १९

उद्धव ने गोपियो को बताया कि श्री कृष्ण ने ब्राज से विलग होकर मथुरा मे बडे-बडे कार्य किये। यद्यपि गोपियाँ इस तथ्य को जानती हैं तथापि अपने प्रेम का अडिग विश्वास दिखाकर, उद्धव से अत्यन्त परिहासपूर्वक यह कहती है कि कृष्ण का और हमारा कभी वियोग हुआ ही नही।

वे भ्रमर के माध्यम से उद्धव से कहती है कि हे मधुकर ! तुम किसमे यह सब बडी-चढी बाते हॉक रहे हो ? यहाँ तो कुछ पल्ले ही नही पडा । हमारी समझ मे कुछ नही आया है, इसीलिए हम एक बार पुन कहती है कि तनिक उसी कथा को फिर गा दो (व्यग्य है) । रथ पर बैठ कर कौन अक्रूर के साथ गया ? किसने मथुरा मे धोबी के वस्त्र लुटा कर राजसी परिधान पहना ? किसने धनुष तोडा और कुवलयापीड हाथी को किसने मारा ? उन राजदरबार के पहलवानो को किसने पछाडा ? बलपूर्वक उग्रसेन, बसुदेव और देवकी की (कारागार मे पडी) लोह शृखलाओ को किसने तोडा ? ये सब क्या चक्कर है ? तुम ये सब प्रशसा किसकी करते हो और किसने तुम्हे इस घोष मे उपदेश देने भेजा है ? किसने मामा का वध करके इस ससार मे यश लिया है एव कौन मथुरा पर अधिकार किये हुए है ? गोपियाँ कहती है कि इन सब कार्यो को करने वाला तो हमारी समझ मे नही आता । हम तो केवल ललाट पर मुकुट धारण करने वाले, वक्षस्थल पर गु जाओ की माला धारण किए हुए एव मुख से मधुर स्वर मे वशी बजाने वाले से परिचित है । सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि ऐसे यशोदा के पुत्र ब्रज मे कहा नही है ? अर्थात् सर्वत्र ही वे रमे हुए है ।

विशेष— १ समस्त पद मे भागवत के दशम-स्कध के अध्याय ४१—४४ तक की अन्तरकथाएँ समाहित है, यथा—

(क) चतुर्थ पक्ति मे, धोबी के वस्त्र लुटाने की चर्चा है, मथुरा पहुँचकर कृष्ण ने राजदरबार मे जाने के लिए एक धोबी से राजसी परिधान माँगा, धोबी के मना करने पर कृष्ण ने उसके समस्त वस्त्र लुटा कर उसको मार दिया ।

(ख) '**गज मारचो**', कस ने अपने द्वार पर, कृष्ण के आने पर उनके ऊपर आक्रमण के लिए कुवलयापीड नामक खूनी हाथी छोड दिया था, कृष्ण ने उसका सू ड चीर कर वध कर दिया ।

(ग) '**मल्ल मथि जाने**' - कस की मल्लशाला के दो प्रसिद्ध पहलवानो को कृष्ण और बलराम ने मारा था ।

(घ) **उग्रसेन बसुदेव देवकी**—कस ने अपने पिता उग्रसेन एव बहनोई तथा

बहन को कारागृह मे डाल रखा था। उग्रसेन से राज्य छीन कर बन्दी किया था एव वसुदेव-देवकी को उनके विवाह के पश्चात् यह आकाशवाणी होने पर कि इन की आठवी सन्तान के द्वारा तेरी मृत्यु होगी, बन्दी किया था। श्री कृष्ण ने कस को मार कर तीनो को मुक्त किया था।

२ पद्माकर के 'मेरे तो गोविद मोहि-मोहि मे रहत है' पद से तुलना कीजिए।

पद २०

उद्धव ने गोपियो को निर्गुण साधना अपना लेने के लाभ बताते हुए मुक्ति आदि के प्रलोभन दिये थे किन्तु प्रेम-दीवानी गोपियो के लिए वे सब व्यर्थ है, वे अपनी वर्तमान अवस्था से ही सन्तुष्ट है। इसीलिए कहती है—

हम तो नन्द के इस छोटे से पुरवे की रहने वाली है। हमारा तो नाम ही गोपाल है, हमारी जाति एव कुल भी गोप नामधारी है। क्योकि हमारे समस्त सम्बन्ध गोप जाति से ही सम्बद्ध है इसीलिए हम गोपाल—श्री कृष्ण—की उपासिका है। हमारा ये उपास्य देव गिरिराज गोवर्द्धन को धारण करने वाले, गौओ को चराने वाले तथा वृन्दावन से प्रेम रखने वाले है। तुम जो हमे राज्य आदि का प्रलोभन देते हो (मुक्तात्मा राज्य करती है ऐसा ज्ञानियो का मत) वह सब व्यर्थ है क्योकि राज्य हमारे यहाँ भी है। हमारे शासक राजा नन्द है, यशोदा जी महारानी है और समुद्र के समान ही यमुना नदी बहती है एव हमारे प्रियतम अत्यन्त सुन्दर, कमल जैसे नेत्रो वाले, सुखराशि श्री कृष्ण है। सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि हम अपने सुख और ऐश्वर्य का वर्णन कहाँ तक करे? आठो महासिद्धियाँ हमारी दासी बनी हुई है।

विशेष—१. अलकार—अनुप्रास, उपमा एव अतिशयोक्ति। २ वैष्णव भावनानुसार आठो-सिद्धि एव नव-निधि की प्राप्ति से पूर्ण सुख की उपलब्धि होती है एव यह देवता अथवा महान् अवतारो को ही प्राप्त होती हैं किन्तु गोपियाँ इन्हें भी अपनी दासी मान लेती है, अष्ट सिद्धियाँ इस प्रकार है—"अणिमा, महिमा, चैव गरिमा, लघिमा तथा। प्राप्ति प्रकाम्यमीशित्व वशित्व चाष्ट सिद्धय।" ३. रसखान ने भी कृष्णार्पित जीवन व्यतीत करने में अष्ट-

सिद्धि एव नव-निधि से भी अधिक सुख माना था—

"आठौ सिद्धि नवौ-निधि को सुख
नद की गाय चराय बिसारौं।"

पद २१.

उद्धव के योगोपदेश का प्रतिकार करती हुई गोपियाँ योग के लिए अपनी अपात्रता प्रकट करती है।

गोपियाँ कहती है कि गोकुल मे सब गोपाल की ही उपासना करने वाले है, तुम्हारे योग को यहा कोई नही पूछेगा — हे उद्धव! Love knows no substitute जो योग के आगे का अभ्यास करते है वे सब शिव की नगरी काशी मे रहते है। व्यग्य यह भी है कि उद्धव तुम मे इतनी भी बुद्धि नही कि यह जान सको कि इस योग के उपासक कहाँ होगे। यद्यपि कृष्ण ने हमे तज कर अनाथ कर दिया है तो भी हम उन्ही के चरणो के प्रेम रस मे लिप्त रहने वाली दासियाँ हैं। यदि कृष्ण ने हमारे साथ अन्याय किया है तो क्या हम उनकी प्रीति को छोड दे; चन्द्रमा भी तो राहु के ग्रसने पर अपनी शीतलता को नही छोडता। हमसे ऐसा कौन सा अपराध बन पडा है जिसके दण्ड-स्वरूप आप प्रेम भजन करती हुई हम प्रेमिकाओ के पास योग-सदेश लाये है? सूर कहते है कि ऐसी कौन विरहिणी होगी अर्थात् कोई नही होगी जो गुणों की खान श्री कृष्ण चन्द्र को छोडकर योग द्वारा प्राप्त मुक्ति मागेगी।

काव्य-सौन्दर्य—

१ अन्तिम पक्ति मे निवृत्ति मार्ग पर प्रवृत्ति मार्ग की विजय दिखाई है जिसमे प्रेम की ऋजुता की रक्षा होती है। प्रवृत्ति को ही महत्त्व देने के कारण गोपियाँ 'सायुज्य' नही अपितु 'सामीप्य' चाहती है, पद ६१ मे भी इसी बात की पुष्टि होती है, यथा—

"कहा करौ निर्गुन लै कै हौं जीवहु कान्ह हमारे।"

२. 'ईसपुर कासी'— अत्यत सुन्दर साभिप्राय प्रयोग है। काशी वैसे भी योगियो का गढ रहा है, दूसरे इसका अर्थ 'शिव की नगरी काशी' लेने पर सुन्दर व्यजना होती है क्यो कि योगियो के सभी सम्प्रदायो का, विशेष रूप से

नाथो का, शिव अथवा शैव सम्प्रदाय से विशेप सम्बन्ध है।

३ रत्नाकर से तुलना कीजिए—

"मुक्ति मुक्ता को मोल माल ही कहा है,
जब मोहन लला पै मन-मानिक ही वार चुकी।'
+ +
"वाही मुख मजुल की चहति मरीचै सदा,
हमको तिहारी ब्रह्म ज्योति करिबो कहा।"

४ यह ध्यान देने की बात है कि गोपियाँ योग का विरोध नही करती अपितु उसके अधिकारी अन्यत्र बनाती है जिससे सिद्ध होता है कि सूर भी योग के विरोधी नही अपितु उसके लिए अधिकारी भेद मानते है।

५. 'जोग-अग' योग के अष्टाग साधनो के लिए कहा है, आठ साधन इस प्रकार हैं, १ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारणा, ७ ध्यान, ८ समाधि।

पद २२

गोपियाँ श्री कृष्ण को अत्यधिक प्रेम करती है किन्तु इस प्रेम मे अब उन्हे मलाल यही है कि उनका स्थान कुब्जा ने ले लिया है। इसी मनोदशा की अभिव्यक्ति करती हुई वे कहती हैं—

अब कृष्ण की वर्तमान प्रेयसी कुब्जा का ही जीवन सफल है। वह हमारे सुन्दर प्रियतम श्री कृष्ण का रात दिन दर्शन और स्पर्शलाभ करती है। किन्तु उसे कृष्ण से इस प्रकार वास्तविक सुख प्राप्त नही हो सकता क्योकि उसे प्रेम की वे रीतियाँ कहा ज्ञात हे जो हमे है। भला केवल शास्त्र किसी के पास होने से, बिना पढे ही, नेत्र बन्द किये हुए ही कोई ज्ञानी हो सकता है? हमारा यह दृढ मत है कि अत्यत रूपवान, मनरजन कृष्ण ही श्रेष्ठ हैं, उनके अभाव मे शेष जगत् निस्सार है। हे सखियो! सुनो इस योग को लेकर क्या करें जहाँ हमारा चित्त न लगता हो, जहा हमारा मनहरण ना हो। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि हम तो नवनीत खाने वाली है फिर भला हमे खट्टा मट्ठा रुचिकर क्यो लगेगा? भाव यह है कि नवनीत सदृश श्री कृष्ण को छोड कर हम खट्टे मट्ठे सदृश निर्गुण ब्रह्म को क्यो अपनावे।

विशेष—१ अलकार— छेकानु-प्रास (जहाँ आदि या अन्त मे एक अथवा अनेक अक्षरो की आवृत्ति केवल एक बार हो), वृत्त्यनुप्रास (आदि या अन्त मे एक वर्ण अथवा कई वर्णो की समता वृत्तियो के अनुसार कई बार पडे लोकोक्ति का प्रयोग है । २ गोपियो के 'असूया' भाव का चित्रण है । कुब्जा के प्रति सूर काव्य के ऐसे पदो ने रीतिकालीन सपत्नी कलह वर्णन को प्रोत्साहन दिया है ।

पद २३

शब्दार्थ— खेप=गधे अथवा खच्चर पर दोनो ओर को लटकाये जाने वाला बोझा रखने का एक बोरा सा । कुम्हार ईंट आदि ढोने मे यही कहते है कि कितनी खेप भर चुके और कितनी उतार चुके ।

गोपियो के वार्तालाप मे, उद्धव को लक्ष्य करके, व्यग्य और विनोद तीव्र से तीव्रतर होता जाता है । यहाँ उद्धव की तुलना एक व्यापारी से की है ।

गोपियाँ परस्पर कहती है कि हे सखि ! हमारे पुरवे मे एक बहुत बडा व्यापारी आया है । उसने ज्ञान और योग के गुणो की भरी हुई खेप, गठरी ब्रज मे उतारी है । अब वह अपना योग का फटकन देकर, हमसे स्वर्ण अर्थात् श्री कृष्ण को मागता है , हमे बिल्कुल ही भोला समझ लिया है । इस व्यापार मे प्रारम्भ से ही उसके मन मे बेईमानी भरी हुई है, इसीलिए सिर पर वह बोझ रखे-रखे फिरता है । भाव यह है कि यदि इसके मन मे बेईमानी न होती तो अब तक यह बोझ समाप्त भी हो जाता । ब्रज मे ऐसी कौन अज्ञानी होगी अर्थात् कोई नही होगी जो इनके बहकावे मे आकर अपना दूध छोड के, दूर जाकर खारे कुएँ का जल पीयेगी । निर्गुण उनकी सीमा से बाहर है और है कठिन भी, इसीलिए वह दूर का खारे कुँए का पानी है, एव श्रीकृष्ण उनके पास है, चाहे शरीर से दूर हो, वैसे गोपियो के मन के तो पास है, ('जसोदानन्द गोकुलन कहँ न बिराजै') इसीलिए वे घर के अमृत तुल्य दुग्ध सदृश है । सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि हे उद्धव ! तुम यहाँ से सवेरे ही चल दो और तनिक भी देरी मत लगाना, जाकर किसी अन्य स्थान मे पारखी साहूकार को दिखाओगे तो अपने इस बोझ के मन चाहे दाम प्राप्त करोगे ।

अन्तिम पंक्ति का दूसरा अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है—तुम यदि अपने उस साहूकार, जिसके तुम प्रतिनिधि हो, अर्थात् श्री कृष्ण जी, को दिखला दो तो हम तुम्हे मुँह मागे पैसे देगी।

विशेष—१ रूपक तथा अन्योक्ति अर्थालंकार एव अनुप्रास आदि शब्द अलकार है। २. 'फाटक' एवं 'हाटक' मे अत्यंत सुन्दर शब्द मैत्री है। ३ 'खोटो खायो' मे मुहावरे का प्रयोग है। ४. अन्तिम पंक्ति मे योग के अधिकारी भेद की ही बात ध्वनित हो रही है। ५. गोरखनाथ ने भी पुस्तकीय ज्ञान रखने वाले की उपमा भारवाही गर्दभ से की है, उसी से मिलता-जुलता विचार द्वितीय पंक्ति मे ध्वनित हो रहा है।

पद २४

उद्धव की व्यापारी से तुलना चल रही है—

गोपियाँ कहती है कि यह ठगी का सौदा योग है, इस ब्रज मे नही बिकेगा। हे उद्धव ! यह तुम्हारा माल जैसा लाये हो वैसे का वैसे ही वापिस चला जायगा। गोपियो का तात्पर्य यह है कि वृथा ही हमको योग सिखाने का उद्योग मत करो, हम इसे ग्रहण नही करेगी। हे मधुकर तुम सच मानना यदि हम इसे खरीद भी ले तो यह उन्हे भी रुचिकर न लगेगा जिन श्रीकृष्ण से लाए हो अर्थात् यदि हम योग-मार्गी हो जाँय तो कृष्ण जी को यह बात ठीक नही लगेगी। भला तुम यह तो बताओ कि अगूर जैसी मधुर वस्तु को छोडकर कडवी निबौली कौन खायेगा ? और कौन मूली के पत्तो के सौदे मे मुक्ताओ को लुटा देगा ? भाव यह है कि जिस प्रकार इन तुच्छ वस्तुओ के बदले मे ऐसे मूल्यवान् पदार्थ नही दिये जा सकते उसी प्रकार इस तुच्छ योग के बदले हम श्रीकृष्ण के प्रेम को नही छोड सकती। सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि गुणवान् प्रभु को छोडकर निर्गुण से अथवा गुणहीन आराध्य से निर्वाह कैसे हो सकता है।

विशेष—१. रूपक, तुल्ययोगिता एव अन्योक्ति अर्थालकार तथा अन्तिम पक्ति मे 'निर्गुन' मे सभगपद यमक है। २ 'दाख छाँडि······खैहै ?"—की निम्नलिखित से तुलना कीजिए—

"जीभ निबौरी क्यो लगै बौरी ! चाखि अंगूर"—बिहारी।

पद २५

यहाँ भी वही व्यापारी के रूप मे उद्धव और योग का वर्णन चल रहा ह । गोपियाँ उद्धव पर व्यग्य करते हुए कहती है कि—

पाडे जी ! आप हमे योग सिखाने आए है ? व्यग्य यह है कि आपकी बुद्धि भी धन्य है जो हम अनन्य प्रेमिकाओ को योग सिखाने आये हो। आप तत्वदर्शी पुराणो आदि को इस प्रकार साथ-साथ लादे फिर रहे हो जैसे बनजारे अपने माल का टडीरा उठाये-उठाये फिरते है। किन्तु आपका यह प्रयास वृथा है। हमारे तो एकमात्र प्राणाधार पति कमल के समान नेत्रो वाले श्रीकृष्ण है, जो योग सीखती है वे तो अभागी है। हे मधुप ! तुम ही बताओ एक म्यान मे दो तलवारें कैसे समा सकती है, अर्थात् हमारे हृदय मे ब्रजचन्द्र के रहते हुए निर्गुण ब्रह्म की योग-साधना कैसे स्थान पा सकती है। उद्धव तुम कहते हो वह महान् योगी है, अमुक महान् योगी है; यदि हम उनकी देखा-देखी योगिन बन जाये तो यह हमारी सामर्थ्य के बाहर है। भला कोई हाथियो के समान समूचे गन्ने खाने का प्रयास कर सकता है ? वायु भक्षण मात्र से किसकी भूख तृप्त हुई है ? भूख मिटाने के लिए तो दूध, घी एव माँडे (पराठे जैसा ब्रज का प्रिय भोज पदार्थ) की ही आवश्यकता है। इसी प्रकार हमारी प्रेम भूख अरूप निर्गुण से तृप्त नही हो सकती उसके लिए श्रीकृष्ण का अवलम्ब आवश्यक है। तुम व्यर्थ मे ऐसी बकवाद क्यो करते फिरते हो जैसे किसी चोर को अपराध का दण्ड दे रहे हो (कितना करारा व्यग्य है)। सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि महाराज धनिया, धान और काशीफल एक समय मे ही उत्पन्न नही होते। भाव यह है कि जिस प्रकार ये तीनो वस्तुएँ एक समय मे उत्पन्न नही होती उसी भाँति योग-नियमो की साधना, निर्गुण ब्रह्म का ध्यान एव श्रीकृष्ण का प्रेम भी एक साथ नही हो सकता।

काव्य-सौन्दर्य—१ उत्प्रेक्षा, छेकानुप्रास, दृष्टान्त, लोकोक्ति आदि अलकारो एवं व्यजना तथा लक्षणा शक्तियों ने भाषा की वाग्वैदग्ध्यता को समृद्ध किया है। २. धनिया शिशिर मे, धान शरद् मे एव काशीफल ग्रीष्म

एव वर्षा ऋतु मे ही विशेष रूप से होते है। यह समय वस्तुओ के बोने का नही अपितु फल देने का है। कुछ वस्तुएँ बोई तो साथ-साथ जाती है किन्तु कवि का तात्पर्य फल से ही है। ३ **'तीनो नहीं उपजत'**—से कुछ विद्वान् भक्ति, योग और ज्ञान का अर्थ भी लेते हैं किन्तु यह अर्थ भ्रामक है क्योंकि इन तीनो की एकत्र समन्विति मिल सकती है जैसे कबीर मे।

पद २६

गोपियाँ उद्धव के सम्मुख योग की तुलना मे श्री कृष्ण की भक्ति को श्रेष्ठ प्रतिपादित करती हुई कहती है कि हमे योग मे कुछ भी तो लाभ दृष्टिगोचर नही होता, यदि इसमे कुछ लाभ हो तो वे इसे सहर्ष अपना लेती।

हे मधुप! तुम हमे यह बताओ कि तुम्हारे इस योग मे हमारे कृष्ण से क्या श्रेष्ठता है। तुम हमे व्यर्थ ही नदकुमार श्री कृष्ण की प्रेम पद्धति छुडवाकर इस निर्गुण की निस्सार फीकी योग साधना गले मढने का प्रयास कर रहे हो। जिस योग की साधना मे समाधिस्थ होने पर न कुछ दिखाई देता है, न कानो से कुछ सुनाई देता है तथा व्यर्थ ही 'ज्योति ज्योति' की पुकार लगाकर ध्यान किया जाता है उसके सामने सुन्दर, दयालु, कृपासमुद्र श्रीकृष्ण को कैसे भुलाया जा सकता है ? कैसे उस क्रीडा को हम भूल जाये जब रसयुक्त मधुर मुरली की मनोहर स्वर लहरी को सुनकर हम आनद विभोर हो उठती और श्याम अपनी भुजाएँ प्रेमोन्मत्त होकर हमारे गले मे डाल देते थे। उस समय हम आनद की उमग मे फूली नही समाती थी। इस प्रकार हमने प्रभु की मुरली के आमन्त्रण पर उनसे भेट कर कर लोक-मर्यादा एव कुल के भय की उपेक्षा कर दी। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि जब हम कृष्ण के लिए ऐसे-ऐसे साहसिक कार्य कर चुकी है तब आप हमे योग रूपी विष-लता का रसास्वादन कराने आये है ? भाव यह है कि जिस कृष्ण के लिए इतना सब कुछ कर चुकी है, उसको विस्मृत कराने के लिए यह योग-सदेश विष-तुल्य है।

विशेष— १ अलकार— अन्तिम पक्ति मे अन्योक्ति है। २ पुष्टिमार्गी भक्ति सिद्धात के अनुसार लोक-मर्यादा एव कुलबधन की मर्यादाओ के कगारो को तोड़ना भक्त के लिए आवश्यक है, क्योकि उसे सर्वात्मना 'मार्जार-शिशु न्याय-वत्' भगवान् को ही समर्पण करना है।

पद २७

उद्धव ने गोपियो को योगसाधना के विधि विधानो द्वारा ब्रह्म-प्राप्ति का उपाय बताया, गोपिकाएँ योगमार्ग की कठिनता बताते हुए कृष्ण के प्रेम मार्ग को ही श्रेष्ठ बताती है। वे कहती है—

हे उद्धव आपकी इस योग-साधना का अभ्यास हमारे यहाँ गोकुल मे, कौन करेगी ? आगे उसकी कठिनता प्रतिपादित करती हुई कहती है कि जो ब्रह्म अगम्य, अपार एव अगाध आदि उपाधिधारी है, जिसकी कही खोज नही की जा सकती , उसी ब्रह्म के लिए मृगछाला, भस्म, अधारी तथा जटा आदि के व्यर्थाडम्बर जुटा कर कौन उसकी प्राप्ति के प्रयत्न करे। भाव यह है कि इतनी कठिन साधना के पश्चात् भी जिस ब्रह्म की प्राप्ति होती है वह कृष्ण की तुलना मे हीन है। गिरधारी श्रीकृष्ण की मनोहर रूप माधुरी के लिए इन सब आडम्बरो की कोई आवश्यकता नही। जब श्रीकृष्ण की प्राप्ति बिना इन कठिनाइयो के हो जाती है तो फिर आसन, प्राणायाम, विभूति, मृगछाला, ध्यान (ये समस्त योग-साधना के उपकरण है) आदि के झझट मे कोई क्यो पडे ? सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि कौन ऐसा मूर्ख होगा अर्थात् कोई नही जो अपने मुक्ताओ को छोड कर राख को लेने की चेष्टा करेगा। गोपिया यह कहना चाहती है कि अपने श्री कृष्ण के बदले मे निर्गुण ब्रह्म को वे क्यो स्वीकार करे।

विशेष— अन्योक्ति अलकार के साथ साथ 'बाँध बाँधना' जैसे मुहावरे ने भी भाषा का शृगार किया है।

पद २८

उद्धव ने गोपियो से कहा कि तुम कृष्ण के प्रेम मे तो इसी प्रकार विरहाग्नि मे जलती रहोगी, कृष्ण की प्राप्ति तुम्हे होगी ही नही, अतः तुम निर्गुण ब्रह्म की साधना को अपना लो। इसी का प्रत्युत्तर गोपियाँ देती हैं—

हे उद्धव ! कृष्ण के मिलने अथवा न मिलने, उभय दशाओ मे हमारे प्रेम की सफलता सिद्ध हो जाती है। जो श्री कृष्ण जी मिल जाय तो उस स्थिति मे तो मगल है ही और यदि वे न भी प्राप्त हो तो हमारी इस अनन्य

प्रेम कथा की कीर्ति-गाथा समस्त ससार मे चलेगी । यह हमारे लिए गौरव-पूर्ण विषय है कि विश्व यह चर्चा करेगा कि गोकुल की निकृष्ट वर्ण की नीच-जन्मा गोपिकाए और लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु दोनो मे कितना अन्तर था किन्तु अपने प्रेम के ही कारण भगवान् के साथ ही उनका स्मरण हो रहा है जो प्रभु वेदादि एव ज्ञानी मुनियो के लिए भी रहस्यमय अप्राप्य है वे गोपी प्रेम के कारण अहीरो के पुरवे के निवासी बने । हम इस यशागान से कृत-कृत्य हो जायेगी । हे उद्धव अब हमे सच सच बताओ कि इससे अधिक और क्या अभिलाषा करनी चाहिए, यह तो प्रेम की सफलता की चरम सीमा है । तुम मुक्ति की महिमा का कथन करते हो किन्तु यह मुक्ति तो प्रभु की दासी है । अर्थात् जब हम स्वामी को ही प्राप्त कर लेगी तो उनकी अनुचरी तो सहज लभ्य हो जायगी । वे अत्यन्त अनुनय सहित कहती है कि अतएव हे उद्धव ! इस योग के दुखदायी प्रसग को बार-बार मत दुहराओ । सूर कहते है कि गोपियो ने अपना दृढ मत उन्हे बताते हुए कहा कि कृष्ण को छोडकर जो अन्य किसी की आराधना करे, उसकी माता का मातृत्व धिक्कारपूर्ण है ।

विशेष— १. पाँचवी पक्ति मे वृत्त्यनुप्रास अलकार है एव चौथी पक्ति मे 'इक पाँति' मुहावरे का प्रयोग हुआ है । २ गोपियो का प्रेमादर्श शूर-वीरो के समान है—

"जीवता लभ्यते लक्ष्मीः मृतेनापि सुरांगनाः ।"

३. इसी प्रकार वे प्रेम की सफलता और असफलता दोनो मे ही सुखी है । अन्तिम चरण मे गोपाल की प्रीति को स्थायित्व देने की सुन्दर कामना है, तुलना कीजिए—

गिरि ते गिरावो , काले नाग ते डसावो,
हा ! हा ! प्रीति न छुड़ाओ गिरधारी लाल सौ ।

पद २९.

उद्धव ने अगम्य, अपार, अविनाशी ब्रह्म की पूर्णता का श्रेष्ठत्व प्रति-पादित करते हुए गोपियो से उसे ग्रहण करने को कहा था, गोपियाँ उसी का प्रत्युत्तर देते हुए कहती है—

उद्धव ! तुम्हारे उस सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की पूर्णता हमारे इन नेत्रो को

तो रुचिकर लगी नही। आपने ब्रह्म की जो महत्ता बताई है कानो से सुनकर उस पर हम विचार करती है, क्योकि वह ब्रह्म अरूप है इसीलिए ये नेत्र आराध्य की रूप माधुरी के अभाव से दुखित होकर विलख-विलख कर छटपटाते है। आपने कहा कि ब्रह्म घट-घट वासी है, इस तथ्य से अवगत होने पर भी हमने बुद्धिमत्ता से इस प्रश्न पर आदि से अन्त तक विचार किया किन्तु फिर भी इस निष्कर्ष पर पहुँची कि प्रेम स्वरूप श्री कृष्ण तो समुद्र से निकले रत्न के समान मूल्यवान् सम्पत्ति है। जब हमने श्री कृष्ण जैसी सुन्दर मणि को प्राप्त कर लिया है तो आप धूल जैसा तुच्छ पदार्थ निर्गुण हमको देने का प्रयास क्यो कर रहे है? वे भ्रमर के माध्यम से उद्धव की भर्त्सना करती हुई कहती है कि हे मधुलोभी नीच! तू अपनी इस बकबाद को बन्द कर। तू छली है, इसीलिए निर्दयतापूर्ण कटु सन्देश कह रहा है। कहाँ निर्गुण को प्राप्त करने वाली ऋषियो की समाधि और कहाँ अबला ब्रजागनाएँ? भला कठोर पत्थर पीस कर किस प्रकार चूर्ण रूप मे परिवर्तित किया जा सकता है? सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि चातक का व्रत तो देखो कि शीतल, स्वादिष्ट एव सब प्रकार सुन्दर जल से कितनी नदियाँ, समुद्र एव सरोवर भरे हुए है, उसे स्वाति नक्षत्र के जल की ही कामना रहती है, शेष जल उसके लिए अग्रहणीय है। हमारा कृष्ण प्रेम भी चातक की भाति अटल है।

विशेष—१ अन्त्यानुप्रास, छेकानुप्रास तथा निदर्शनालकार है। २ अन्तिम चरण के प्रथम पद मे 'दुष्क्रमत्व दोष' है। ३ सूर के ही समान तुलसी ने अनेक स्थानो पर चातक के अनन्य प्रेम व्रत की प्रशसा की है।

पद ३०

गोपियों को श्री कृष्ण के प्रेम का अटल विश्वास है, वहा शका को लेश मात्र भी स्थान नही। उद्धव के यह कहने पर कि अब कृष्ण तुम्हे भूल गये है, वे कुब्जा के साथ रस-रीति मे निरत है, गोपिया उत्तर देती है—

हमे कृष्ण कभी भी भूल नही सकते। उन्हे ब्रजवास के समय की प्रेम के साथ खिलाने तथा अधरामृत पान कराने की वे रस क्रीडाएँ कैसे विस्मृत हो सकती है? किन्तु इन सब बातो की तुम्हारे सम्मुख चर्चा करने से उद्धव

क्या लाभ क्योंकि तुम तो वही योग का पचडा बारम्बार जो उठाते हो। तुमसे इस प्रेम कथा की चर्चा करना इस प्रकार निरर्थक है मानो कोई घास काटने जैसा व्यर्थ का कार्य कर रहा हो। जिस प्रकार काटी हुई घास पुन बढ जाती है, उसी प्रकार तुम्हारी योग-कथा भी समझाने पर भी बढती ही जाती है। गोपियाँ आक्रोश सहित कहती है कि बहिरा व्यक्ति मधुर सगीत की स्वर लहरी को क्या जाने और गूँगा सम्भाषण के मधुर रस को किस प्रकार अनुभव कर सकता है, जिस प्रकार ये लोग कथित रस से वचित है उसी प्रकार तुम इस प्रेमकथा के मर्म को न समझ सकोगे। अब वे परस्पर कहती है कि हे सखि! अब हमारी मिलन वेला आने को है और पुन वे ही आनद क्रीडाएँ हुआ करेगी। सूर कहते है कि गोपियो न उद्धव से कहा कि अब हमारी विरह की अवधि समाप्त होने को है।

विशेष—१ अनुप्रास शब्दालकार एव उत्प्रेक्षा तथा निदर्शना अर्थालकार प्रयुक्त हुए है। अन्तिम पक्ति मे मुहावरे का प्रयोग है। २. 'भयो तेरहो मास' लोकगीतो मे 'बारहमासे' के अन्तर्गत वर्ष के बारह महीनो मे वियुक्त प्रेयसी की व्यथा का वर्णन होता है एव तेरहवाँ मास लगते ही प्रिय का मिलन हो जाता है, गोपियो का सकेत भी, इस मुहावरे द्वारा, यह है कि अब कृष्ण मिलने वाले है।

मिलन की आशा इसलिए है कि हमारे यहाँ 'सुखान्त' काव्य परम्परा ही है 'दुखान्त' नही।

पद ३१

उद्धव गोपियो के प्रेम के विषय मे शकायुक्त तर्क करते है, गोपियाँ उन्ही का उत्तर देती है।

हे उद्धव! इस प्रेम के सम्बन्ध मे तुम जो चाहे सो कह दो, हमे तुम्हारी कोई बात भी अप्रिय नही लगेगी। तुम जो यह कहते हो कि तुम्हारे इस प्रेम रस का हम कृष्ण के पास रहते हुए भी रसास्वादन न कर सके तो इसमे प्रेम का क्या दोप? हे मधुप तनिक ध्यानपूर्वक सुन! सहृदय व्यक्ति ही को प्रेम रस का आनद प्राप्त हो सकता है सहृदय न होने पर प्रेम-पात्र के पास रहने पर भी प्रेमानुभूति नही हो सकती। मेडक सदैव कमलो के सम्पर्क मे रहता है

किन्तु वह जीवनपर्यन्त कमलो के सौन्दर्य एव रस को नही प्राप्त कर पाता और दूसरी ओर भ्रमर है वह चाहे कमल से कितनी ही दूर हो किन्तु कमल के रसपान के लिए प्रेमविभोर होकर चल देता है। बीच मे अन्य कोई पुष्प उसे आकर्षित भी करे तो वह रुकता नही है। तुम उद्धव श्री कृष्ण के प्रेम रस से वचित कमल के पास रहते हुए दादुर के सदृश हो। हे उद्धव! आप जो बार-बार इस प्रेम मार्ग की कठिनता बताते हो हमे इस की चिता नही। जब नदी अपने प्रियतम सागर से भेट करने को चलती है तो अपने कगारो और राह मे पडने वाले वृक्षो आदि को समूल नष्ट करती हुई प्रिय से जा मिलती है। इसी प्रकार हम इस प्रेम की रक्षा के लिए बडी से बडी विपत्ति को सहन करती हुई प्रियतम कृष्ण से मिलेगी। युद्ध-क्षेत्र मे कायर तो व्यर्थ का प्रलाप करते है, डीग हाकते है और शस्त्रो से भयभीत होकर भाग जाते है किन्तु जो वहाँ वीरतापूर्वक लडते है वे ही वीर सज्ञा मे सुशोभित होते है। इसी प्रकार सच्चा प्रेमी तो वही है जो प्रेम मार्ग की बाधाओ से भयभीत नही होता अपितु अन्त तक अपने प्रेम की रक्षा करता है।

विशेष— १ दृष्टान्त (बिना समतावाचक शब्द के जहाँ बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से समानता हो), वृत्यनुप्रास अलकार तथा 'भावै' जैसे स्वाभाविक प्रयोगो ने भाषा का शृगार किया है।

पद ३२

उद्धव ने गोपियो से कहा कि तुम प्रेमबावली होकर व्यर्थ यह विरह वेदना भोगती हो। गोपिया उत्तर देती है—

हे उद्धव! तुम अपने ही घर मे बैठकर बडी-चढी बाते छौकने वालो मे से हो, यदि कुछ अपनी दृष्टि को विस्तार कर देखो तो दूसरो की वेदना का भी अनुभव हो। हे मूर्ख मधुप! तुम कभी किसी प्रिय के विरह का अनुभव नही कर पाये हो इसीलिए इस वेदना को तुम क्या जानो ('जाके पैर न फटी बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई')। सिंह अपना आहार न मिलने पर भूखा मर सकता है किन्तु वह घास नही चर सकता। इसी प्रकार हम भी कृष्ण को प्राप्त न करने पर मर भले ही जाँय किन्तु तुम्हारे योग को नही अपना सकती।

जिन कानो ने अमृतमयी वशी की स्वर-लहरी का रसास्वादन किया है अब उन्हे योग-वचनो के विष से पीडित न करो । हे उद्धव ! तुम हमे योग का क्या पाठ दे सकोगे, हमे तो श्री कृष्ण के अतिरिक्त अन्यत्र कही आश्रय ही नही है । उद्धव ने कहा था कि इस भवसागर को पार करने के लिए योग नौका के समान है, सूर कहते है कि जिस प्रेम के माहात्म्य से गोपियो को ससार उथली सरिता के समान लगा हो उसके लिए वे योग की नौका लेकर क्या करे । उन्हे तो प्रेम का सम्बल ही इस विश्वसागर को पार करने के लिए पर्याप्त है ।

विशेष— १. अलकार—अन्त्यानुप्रास । २ द्वितीय पक्ति से तुलना कीजिए—

"अल्लाह करे आप भी आशिक बने किसी के ।"

३ समस्त पद की सम्मिलित पुकार यही है कि—

'Love knows no substitute"

पद ३३

उद्धव निरन्तर गोपियो को ज्ञान का उपदेश देते है और मनसा-वाचा-कर्मणा यह सिद्ध करने का प्रयास करते है कि योग को अपनाने मे ही तुम्हारा मगल है किन्तु गोपियाँ उत्तर देती है—

हे उद्धव ! अब हमारा कल्याण केवल श्रीकृष्ण की मनोहर मुख छबि देखने से ही हो सकता है । यद्यपि आपने विविध प्रकार से हमे योग की शिक्षा देने का प्रयत्न किया है तथापि हमे ज्ञान मार्ग मे कोई श्रेष्ठता दृष्टिगत नहीं होती, फिर भला हम इसे किस प्रकार अपनावे । आपने अपने ब्रह्म को शून्य एवं आकाश के समान विस्तृत बताया है, इस आकाश जैसे विस्तृत ब्रह्म को हम किस प्रकार अपना हृदय आराध्य बनावे (क्योकि उनके सम्मुख 'निरालम्ब मन चकृत धावै' की कठिनाई है) । हमारा तो हृदय केवल एक ही है और हमारे उपास्य श्री कृष्ण का मनमोहन झाँकी वाला स्वरूप भी एक है, हम उस रूप से भृगकीट न्याय के अनुसार तादात्म्य प्राप्त कर चुकी है, अर्थात् प्रेम मे एक प्राण दो तन से भी आगे की सीमा पर पहुँच चुकी है । सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने उद्धव से कहा कि हे विद्वर ! हम आप से शपथ

देकर पूछती है कि जब व्रज के लोग श्रीकृष्ग प्रेम मे तद्रूप हो गये हो तो वे इस योग को किस प्रकार अपनायेंगे ?

विशेष—१ अलकार—उपमा । २ '**भृगकीट**'—यह उपमा वेदान्तियो की है जिसके अनुसार ज्ञाता ज्ञेय को भृगी नाम के कीट के समान अपने समान ही बना लेता है । इस कीट विशेष के विषय मे प्रसिद्ध है कि भृगी किसी कीट के चारो ओर घूमता रहता है और भृगी को ध्यानस्थ होकर देखने से कीट भी भृग हो जाता है । यही वेदान्तियो का भृंग-कीट न्याय कहलाता है । ३ गोपिया कृष्ण के जिस प्रेमसागर मे धँस चुकी है उससे निकल नही सकती, तुलना कीजिए—

"प्रीति-पयोनिधि में धँसि कै हँसि कै कढिबो हँसी खेल नहि है ।'

पद ३४.

श्रीकृष्ण से गोपियो का जो प्रेम ब्रज की वन-वीथियो, एवं लता-कुंजो मे उनके शैशव के प्रभात से ही पल्लवित होता आ रहा था उद्धव उसे निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देकर भुलवाना चाहते थे किन्तु गोपिकाएँ इस बाल-सखा के प्रेम को कैसे भुला देती, इसी मनोदशा का वर्णन कवि ने किया है ।

हे मधुप ! कृष्ण से हमारी बाल्यावस्था की प्रगाढ प्रीति का जो दृढ बधन है उसे कैसे तोड दे । यह भी समय का ही फेर है कि जिन लीलाओ का सुख-लाभ हमने प्राप्त किया था उन्ही कृष्ण की प्रेममयी कीर्ति-मालाओ की स्मृति से अब मन मे भीतर ही भीतर एक टीस उठती है । नदकुमार श्रीकृष्ण की वह चपल, अनुपम गति तथा वह चित्ताकर्षक लावण्यमयी दृष्टि की भगिमा तथा उनका सस्मित मद मद ध्वनि से गायन (वशीवादन) एव इन सबके साथ-साथ उनका नटवर वेष धारण करके अनेक हास-परिहास-मयी क्रीडाएँ आज स्मृति पटल पर आकर व्याकुल बना देती है । गोपिका कहती है कि मैं उन्ही नदलाल के चरणो की शपथ खाकर कहती हूं कि उनका प्रेषित यह योग सदेश विष के समान दुखदायी है । सूर कहते हैं कि गोपी ने कहा कि मुझे श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी का स्वरूप पल भर के लिए सोते जागते—अहर्निश भी विस्मृत नही होता ।

विशेष—अलकार—वृत्यनुप्रास (पाचवी पक्ति मे) तथा उपमालकार है ।

पद ३५

गोपियाँ उद्धव से योग के लिए अनेक दृष्टातो द्वारा अपनी अपात्रता प्रकट करती कहती है—

हे उद्धव तुम्हारी इन योग की ऊटपटाग बातो को सुनने को कौन तत्पर होगी ? वे भ्रमर के माध्यम से उद्धव पर आक्रोश प्रकट कसती है कि हम अहीर जैसी निम्न जाति मे उत्पन्न नारियाँ है, हमको यह योग साधना किस प्रकार शोभा दे सकती है ? जो हम योग की अनधिकारिणियो को उसका पाठ पढाता है उसका प्रयत्न तो ठीक वैसा ही है जैसे कोई कर्णहीन युवति को कर्णभूषण, नेत्रविहीन को काजल, तथा नकटी को नथ से सुसज्जित देखने का विफल प्रयास करे। यदि गजी खोपडी वाली माँग-पट्टिका युक्त केश-विन्यास करना चाहे तो क्या यह सम्भव है ? कोढी के अगो पर केशर का अगराग लगाने का उपयोग कुछ नही होता तथा इसी प्रकार यदि कोई पति अपनी बहरी पत्नी से परामर्श करे तो उत्तर पाना किस प्रकार सम्भव है । भाव यह है कि जिस प्रकार कथित पात्र उपर्युक्त वस्तुओ के सर्वथा अनुपयुक्त है उसी प्रकार हम योग के नितान्त अयोग्य है ।

सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने उद्धव से फिर विनम्र होकर कहा कि श्रीकृष्ण की कुशल-क्षेम का जो सदेश तुमने हम तक पहुँचाया वह हम अत्यत समादरपूर्वक स्वीकार करती है किन्तु तुम जो विष से भरे हुए नारियल के समान योग सन्देश लाये हो, इसको दूर से हमारा करवद्ध प्रणाम है, हम इसे स्वीकार करने मे असमर्थ है ।

विशेष—१ **अलंकार**—मालोपमा। २ अन्तिमपक्ति मे मुहावरे का प्रयोग है । ३ अन्तिम चरण मे प्रयुक्त '**जो 'तुम ·· लीन्हे**" मे 'जो तुम' का अर्थ योग सदेश से लेने मे अर्थ की आत्मा तक नही पहुँचा जाता। गोपियाँ योग को भी किंचित् प्रोत्साहन नही देती , अत कृष्ण का कुशल सन्देश ही उन्हे शिरसा स्वीकार हो सकता है एव अन्तिम पक्ति मे विष-नरियर से तात्पर्य योग से ही है ।

विह्वलता का अनुभव करके तो उन्हे शीघ्र आ जाना चाहिए। उन्हे वहाँ मथुरा मे राज्य-कार्य कुछ नही है, वहाँ तो वे अपने आनन्दोल्लास के लिए यहाँ से ऊबकर चले गये है। भला वे भगवान् जो निर्जनाकाश मे गरुड पर यात्रा करते है हमारी वेदना का अनुभव कैसे कर सकते है ? अब उनके यहाँ से जाने पर उनके प्रेम की कलई इसी प्रकार खुल गई है जिस प्रकार खट्टे आम के लगाने से कलई छुट जाती है। भाव यह है कि अब वे हमसे प्रेम नही करते अपने समस्त विगत प्रीति-व्यवहार को वे विस्मृत कर चुके हैं। सूर कहते है कि गोपागनाएँ कहती है कि हम इस पर और कुढ मरती है कि उद्धव ! तुम उनका पक्ष (हिमायत) लेते हो।

विशेष—१. अलकार—अत्यानुप्रास, परिकराकुर (जहाँ साभिप्राय शब्द प्रयोग हो) एव उपमा अलकार है। २. मुहावरो का समस्त पद मे प्रचुर प्रयोग है। ३ 'पीवत भामी'—पूज्य शुक्ल जी ने इसका अर्थ अपनी पाद-टिप्पडियो मे "किसी बात को पी जाना, साफ इकार करना दिया है किन्तु ब्रज मे यह मुहावरा हिमायत लेने के अर्थ मे ही प्रयुक्त होता है।

पद ३८

गोपियाँ श्री कृष्ण, उद्धव एव अक्रूर के काले रग को लेकर व्यंग्य करती है—

हे उद्धव ! हमारी बात का बुरा मत मानना, क्योकि हम एक तथ्य का उद्घाटन ही कर रही है। वस्तुतः तन (और मन) से श्याम होने मे तुम्हारा कोई दोष नही है, प्रतीत होता है कि वह मथुरा काजल की कोठरी है जो भी वहाँ से आता है काला ही होता है—

"काजर की कोठरी में कैसोहु सयानो धँसै
एक लीक काजर की पइयै है पै पइयै है ॥"

देखो तुम काले, अक्रूर काले और यह वहाँ से आया घूमता हुआ भ्रमर भी काला है। इन सब कालो के बीच मे कमल के समान नेत्र वाले मनोहर श्री कृष्ण चन्द्र जी और भी अधिक शोभित होते होगे। तुम सब के सब मानो नील के मटके से निकाल कर यमुना के जल से प्रक्षालित किये गये हो, धुलने से नीलिमा छुट कर कालिमा ही कालिमा रह गई हो (उपर्युक्त समस्त वर्णित

कृष्ण, उद्धव और अक्रूर तथा भ्रमर मे नीलिमा युक्त श्याम रग माना गया है इसीलिए वे नील मटके से निकाले बताये है) सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि इसी कारण से यमुना का जल भी श्याम हो गया है। अन्ततोगत्वा काले के समस्त गुण विलक्षण होते है।

विशेष— १ अलकार हेतूत्प्रेक्षा एव तद्गुण ("छांडि अपनो गुन जहाँ, औरन को गुन लेत। अलकार तद्गुण तहाँ, वरनै कवि करि हेत) २ समस्त कृष्ण काव्य मे 'काले रग' को लेकर बडा व्यग्य किया गया है, यथा—सूर के समान 'रत्नाकर' ने भी ब्रज की टकसाल के समस्त सिक्को को खुट्टल घोषित कर दिया है —

" मधुपुर वारे सब एकै ढार ढारे हो "

किन्तु सूर की विशेषता यह है कि अन्य कवियो ने जहाँ केवल वर्ण मात्र पर व्यग्य किया है, सूर काले के अन्तर मे भी काला गुण बताना चाहते है (सूर स्याम गुन न्यारे)।

पद ३९

उद्धव ने गोपियो से कहा कि तुम्हारे लिए योग का सदेश श्री कृष्ण द्वारा प्रेषित सदेश है, कम से कम तुम ब्रजनाथ के सम्बन्ध से ही इसे स्वीकार कर लो। गोपिकाएँ इसी बात का उत्तर देती है—

सब अपने-अपने हित सम्पादन की चिन्ता करते है। हे रस लोभी भ्रमर! तुम अपनी बकवास बन्द करो। क्यो कृष्ण की दुहाई देकर अपना योग पढाने का प्रयत्न कर रहे हो ? हम तुमसे और उन श्रीकृष्ण—दोनो से भली-भाँति परिचित है। जिन्होने तुम्हे भेजा है यदि उनका और भी कोई सदेश हो तो कह दो। तुम दोनो बडे बुद्धिमान् हो जो अबला नारियो के लिए योग का विधान बताते हो। भाव यह है कि तुम्हारी बुद्धि कहाँ चरने गई है। युवतियाँ तो योग की पात्र नही है। जो हमे इसी ज्ञान के प्रहार से मारना था तो मुरली-धर ने रासक्रीडा का आनदमय विधान क्यो किया था ? अब हमारे मन मे यह बात घर कर गई है कि जो कुछ होना होगा वह तो होगा ही फिर क्यो प्रीति का बधन तोड़े —

"होई है जो राम रचि राखा।"

हे उद्धव ! अब कृष्ण के इस दीर्घ वियोग मे हमारा प्रेमाभिमान और उनके पुनरागमन की आशा के मिट जाने से चित्त के उल्लास समाप्त हो गये है। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि जो कुछ भी हो चुका है ठीक है किन्तु इस गोकुल के एक मात्र आश्रय भगवान नदनदन ही है, अत अब हमारे मन मे उनके मिलनादि की कोई चिन्ता नही है ।

विशेष— १ सूर के समान रत्नाकर की गोपियो ने भी बेचारे उद्धव को चुप करने की फटकार लगाई है—

"चुप रहौ ऊधौ सूधो पथ मथुरा कौ गहौ ।"

२ अन्तिम पक्ति मे पुष्टिमार्गीय भक्त के अनुकूल 'शिशुामर्जारवत्' समर्पण भाव गोपियो मे दृष्टिगत होता है ।

पद ४०

प्रस्तुत पद मे गोपियो की कृष्ण-प्रेम अनन्यता एव योग-साधना को न अपनाने की विवशता गोपियों की वचन-वक्रता से प्रकट होती है—

उद्धव ! तुमने जो योग-सदेश आकर सुनाया है, हम इसे लेती किन्तु क्या करे, विवशता यह है कि श्री कृष्ण की प्रीति का बधन छुडाये नही छुटता । हम नदनन्दन के प्रीति रस मे सराबोर है, हमारा हृदय किसी प्रकार भी उनसे मिलना चाहता है । जब हमारा नेह-बधन श्री कृष्ण से इतना प्रगाढ है तो आप की यह योग साधना अत्यत लाभकारी होने पर भी हमारे किस प्रयोजन की है ? हो सकता है कि आपके योग व्रत को धारण कर लेने से मुक्ति की प्राप्ति हो जाय किन्तु उस मुक्ति मे कृष्ण के प्रेम रस का अलौकिक आनद कहा ? पारस पत्थर अपने स्पर्श से लोहे को बारह-बानि का श्रेष्ठ स्वर्ण तो बना देगा किन्तु उसमे क्चनरूप धारण कर लेने के पश्चात वह ललक कहा जिसके उल्लास मे वह अपने प्रिय, चुम्बक, का आलिगन करता है। भाव यह है कि आपके योग द्वारा मुक्ति प्राप्त कर लेने पर हममे कृष्ण प्रेम की यह लालसा कहाँ शेष रह जायगी । सूर कहते है गोपियो ने कहा कि जो निराकार, शुष्क, निर्गुण वेद आदि शास्त्रो की परिधि मे भी नही आता अर्थात् जो वेदविज्ञ है वे भी उसे 'नेति नेति' कहते है, उस ब्रह्म से कृष्ण प्रेमी होते हुए किस प्रकार स्नेह-

सम्बध स्थापित किया जा सकता है, निर्गुण ब्रह्म की साधना हम नही अपना सकती ।

विशेष— १ अलकार— छेकानुप्रास एव अन्त्यानुप्रास तथा दृष्टान्त । २ यहा भी गोपिकाएँ 'सायुज्य' नही 'सान्निध्य' की कामना करती है ।

पद ४१.

प्रेममयी गोपिकाएँ कृष्ण-लीलाओ मे अपनी अनुरक्ति का वर्णन उद्धव से करती है—

हम तो कृष्ण की प्रेमयुक्त ललित क्रीडाओ के लिए लालायित है । हम विरह-पीडित आपके निर्गुण की साधना के उपदेश को किस साहस पर सुने? इससे अधिक उद्धव तुमसे क्या कहा जाय कि आप मे इतनी भी योग्यता नही यह देख सके कि योग-साधना का पात्र कौन है ? हम आपके पैर पकडकर, अत्यत अनुनयपूर्वक पूछती है कि उस मथुरा के क्या समस्त निवासी तुम जैसे ही मूर्ख है ? जो आप हमे अपने योग के उपकरण प्रदान करना चाहते है तो नेत्रो के लिए काजल, शृगार के लिए आभूषण एव शरीर पर धारण करने के लिए साडी (जो समस्त युवतियो के शृगार साधन है) आदि आप ले लीजिए और तब नारियो को योग साधना की दण्ड, कमण्डल, विभूति एव अधारी आदि वस्तुएँ प्रदान कीजिए । जिस प्रकार आप नारी नही बन सकते उसी प्रकार हम योग साधना को नही अपना सकती । उद्धव के लिए प्रवृत्तिमार्गी बनना कठिन है एव गोपियो के लिए निवृत्ति-मार्ग अपनाना असम्भव है । सूर कहते है कि गोपी-प्रेम की ऐसी अनन्यता देखकर उद्धव मन मे सोचते है कि श्रीकृष्ण ने मुझे यहाँ व्रज मे निश्चय ही प्रेम का पाठ पढने भेजा है ।

विशेष— १ अलकार— तृतीय पक्ति मे 'यमक' है । २ पुष्टिमार्गीय भक्त के अनुकूल गोपियो की 'लीला-रुचि' का वर्णन है ।

पद ४२

गोपियाँ श्रीकृष्ण मे अपनी अनुरक्ता दिखाते हुए कहती है—

हमारे नेत्र बनवारी की मोहिनी मूर्ति का रूप-सुधा पान के अभिलाषी है । उस रूप-माधुरी के रस की आस्वादक होने पर इन योग की शुष्क बातो को

सुनकर ये किस प्रकार तृप्त हो सकती है । उद्धव के आगमन के पूर्व जब ये उनकी आगमन-वेला की प्रति पल प्रतीक्षा करती थी तब इतनी सतप्त नही हुई किन्तु अब इस योग-सदेश से अत्यत पीडित और दुखी हो गई है । अब इन नेत्रो को दौने मे दूध पीते हुए अपनी सुन्दर झाँकी एक बार पुन दिखा दीजिए । सूर कहते है कि उद्धव इन्हे योग का पाठ पढाने का व्यर्थ प्रयास कर रहे है । ये गोपियाँ तो शुष्क नदियाँ है, इन पर आप हठपूर्वक नौका किस प्रकार चला सकते हैं अर्थात् जिस प्रकार सूखी सरिताओ मे नौका चलाना असम्भव है, उसी प्रकार गोपिकाओ को योग सिखाना ।

विशेष—१ अलकार—अन्त्यानुप्रास तथा अन्योक्ति । २ तृतीय पक्ति से तुलना कीजिए—

"जब सौ तुम आवन औध बदी,
तब से अँखिया मग मापति है ।"—घनानन्द]

पद ४३

गोपिया उद्धव से कृष्ण के लिए उपालम्भ भरा सदेश कहती है जिसमे काले रग को लेकर उन्होने व्यंग्य किया है ।

हे उद्धव ! तुम श्रीकृष्ण से जाकर कहो कि हम गोपियो के समाचार ले आए है । उनसे हमारी ओर से कह देना कि जो सर्वथा ही मूर्ख होगी वही आपके द्वारा प्रेषित योगोपासना के सन्देश को स्वीकार कर सकती है । आपके समस्त व्यवहार छलपूर्ण है, आपका नाम—कृष्ण—भी काला अर्थात् छलनायुक्त है, नाभ ही नही आपका वर्ण भी काला है जिससे तुम अग-अग से दोषयुक्त हो और तो और तुम्हारे समस्त मित्रादि भी काले है (उद्धव, अक्रूर भी काले थे) । जिसका समस्त वातावरण ही काला हो उससे इष्ट की आशा कैसे की जा सकती है ? यदि कृष्ण वर्ण वाले सज्जन होते तो वसुदेव लडकी के बदले लडका चुराकर ले जाने का छलपूर्ण कार्य क्योकर करते ? हम जैसी कोमलागी गोपिकाओ के लिए योग साधना और कुब्जा जैसी कुटिला के लिए भोग के आनदपूर्ण मार्ग की व्यवस्था को कौन बुद्धि सगत बता सकता है ? सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि जिन नद और माता यशोदा ने दुलारपूर्वक उनका पालन-पोषण भविष्य सुख के विश्वास से किया था

वे ही अब उनके लिए पश्चात्ताप कर रहे है तो फिर हमारी तो गणना ही क्या है ? तात्पर्य यह है कि कृष्ण को कम से कम उन वृद्ध माता-पिता के स्नेह का तो अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

विशेष—अत्यानुप्रास अलकार तथा 'जोग' और 'भोग' मे सुन्दर पद-मैत्री है।

पद ४४

गोपियाँ उद्धव के तर्कों की खिल्ली उडाती हुई कह रही है—

हे उद्धव ! आपका गुणानुवाद करने की सामर्थ्य हममे कहाँ ? जो आपका अगम्य, अदृश्य, तथा अपार ब्रह्म है, उसकी साधना मे हमारा चित्त प्रवृत्त नही हो सकता। आपने उसके विषय मे ऐसी बाते कही हे जो व्रज के लिए सर्वथा नवीन है, जो हमारी मान्यताओ और विश्वासो से इतर है। कैसा कौतुक है कि आप उसे ऐसा जल बताते है जो बीचिहीन है। आप जगत् को ऐसा बताते है जो बिना दीवार के शून्य मे चित्रित चित्र है। जिस ब्रह्म को आप अत्यत निपुण भी बताते है और साथ ही यह भी कहते है कि वह चित्त-धारी चेतन नही है। कैसी विरोधात्मक सगति है। जो अरूप है, जिसका मुख नही है, जो अशरीरी है, जिसके न मित्र है न सहायक—जिसमे कोई भी गुण नही है उस गुणविहीन (निर्गुण) मे भला हमारा प्रेम, हे सखि ! कैसे हो सकता हे। हमारे हृदय मे तो श्रीकृष्ण की ही मनमोहिनी छवि बसकर रह गई है, हमारा रोम-रोम उसी स्मृति से ओत-प्रोत है। सूरदास जी कहते है कि मै उनकी बलिहारी जाता हूँ जिन गोपियो को नन्दनन्दन इतने प्रिय है।

विशेष—१ अलकार—अत्यानुप्रास एव वृत्त्यनुप्रास। २ तृतीय पक्ति मे उन्ही उदाहरणो,—'जल बिनु **तरग चतुराई**', का उल्लेख हुआ है जिनकी ज्ञान-वादी दुहाई दिया करते है।

पद ४५.

गोपियाँ कृष्ण को स्त्री सुलभ उपालम्भ देती हुई कहती है—

हे भ्रमर ! (परोक्षरूप से उद्धव ही) जब आज कृष्ण का हमसे स्नेह नही रह गया है तो वे गोपीवल्लभ कहाने का मिथ्यादम्भ क्यो करते है ?

और यदि वे गोपीनाथ ही कहाते है तो इस ब्रजभूमि मे क्यो नही आते। झूठी मित्रता के आश्वासन देकर वे हमे व्यर्थ मे समाज मे कलकित कर रहे है अर्थात् उनका हमसे प्रेम भी नही है और समाज हमे उनकी पत्नी बताता है। यदि श्रीकृष्ण कुबडी कुब्जा पर अनुरक्त है तो वे अपना नाम 'कुब्जानाथ' क्यो नही रख लेते ? जिस प्रकार हाथी अपना कार्य सिद्ध करने के लिए और दात रखता है तथा प्रदर्शनार्थ दूसरे, उसी प्रकार अब कृष्ण हमे आँखे दिखा रहे है (जब उनका स्वार्थ सिद्ध हो गया है)। सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि योग के निर्गुण के उपदेश के लिए तो हमे चुन रखा है और वे अन्यत्र (कुब्जा के यहाँ) रमण करते है—कैसा छलपूर्ण व्यवहार है।

काव्य सौंदर्य—१ अलकार 'गोपीनाथ' मे परिकर, अन्तिम चरण के पूर्वार्द्ध मे दृष्टान्त एव उत्तरार्द्ध मे स्वभावोक्ति अलकार है। २ "मपन की पहचानि'—मुहावरे का प्रयोग अत्यत सुन्दर है। ३ कृष्ण को 'गोपीनाथ' से 'कुब्जानाथ' कहाने के सदेश की व्यजना अन्य कवियो ने भी की है। बगाल के प्रसिद्ध कवि चण्डीदास की पक्तिया देखिये—

"यतेक तोमारे पिरीत करुक ते मन पिरीत हबे ना।
राधानाथ बिने कुब्जार नाथ केह त तोमारे कबे ना॥"

पद ४६

गोपियाँ कृष्ण पर व्यग्य करती कहती है कि—

हे मथुरापति महाराज ! अब तुम्हे हमारा स्मरण क्यो कर होना होगा? आप बडे स्वार्थी है, सदैव स्वार्थ-साधन मे निरत रहते हो। उसी प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप हमसे भी अल्पसमय के लिए, जब तक आपकी स्वार्थ-साधना हो सकती थी तभी तक, प्रेम किया और अब हमे विस्मृत कर दिया है। उस समय तो हम सब भोली भाली गोपिकाएँ आपकी वशी के सम्मोहन से आप के प्रेम के वशीभूत हो गईं, उस छलपूर्ण कृत्य को न समझ सकी थी। अब हमारे मन की गति ऐसी हो गई कि जिस प्रकार सागर का पक्षी इधर-उधर से निराश होकर अपने आश्रय के लिए जहाजो का ही आश्रय लेता है। भाव यह है कि आज मन ससार के समस्त आकर्षणो से विरक्त होकर कृष्ण प्रेम मे ही लगता है। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि वह प्रेम सूत्र तो आपने

उसी दिन विच्छिन्न कर दिया जिस दिन मथुरा के लिए अक्रूर के साथ प्रयाण किया था अब तो व्यर्थ मे ही आप गोपीनाथ कहलाकर हमे लोकापवाद के अपयश का भागी बना रहे हो।

विशेष—१. अलकार अत्यानुप्रास एव उपमा। २ 'कपट की छाजन'—मुहावरे का सुन्दर प्रयोग है। ३. विरह मे वियुक्त प्रिय को इस बात की बडी आकाक्षा रहती है कि प्रेमी भी हमारा ध्यान करता होगा या नही—यह प्रेम की मनोवैज्ञानिकता है। नरेन्द्र शर्मा अपने एक गीत मे कहते है—

"क्या तुम्हे भी कभी आता है हमारा ध्यान,
खींचता आँचल तुम्हारा ले लेकर हमारा नाम।"

४ 'सुरति'— सूर के समय मे यद्यपि नाथो आदि का प्रचार अधिक नही रह गया था तथापि उनकी शब्दावली के प्रति कवि का मोह अब भी था। 'सुरति'= ध्यान—स्मरण— के ही रूप मे प्रयुक्त है।

पद ४७

गोपियाँ परस्पर कहती है—

हे सखियो ! देखो तो इस पत्रिका पर (जिसे उद्धव लाये है) नदनदन की मुद्रा अकित है। भाव यह है कि इस पत्रिका के माध्यम से उन्होने हमारे लिए योग-सदेश भेजा है। उद्धव महाराज इस योग का उपदेश सर्वत्र दे रहे है, जिस पर दृष्टिपात करते ही योग साधना के भय से ज्वर चढ आता है। आज कृष्ण द्वारा प्रतिपादित इस नवीन प्रेम-पथ की प्रस्थापना प्रत्येक ब्रज-वासी के यहाँ हो रही है। अब कृष्ण के ऊपर कुब्जा का शासन है, तभी उसका इतना घमण्ड है। उसी कुब्जा रानी के आदेश से उद्धव जी हमे योग-साधना तथा अगम्य ब्रह्म के निरन्तर जप का उपदेश दे रहे है। सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि इस प्रेम वियुक्त योग सदेश को सुनकर कौन पाप की भागी नही होगी ?

पद ४८

गोपियाँ उद्धव को फटकारती हुई कह रही है —

हे उद्धव ! आप हमे बार बार क्या उपदेश दे रहे है ! जिस प्राणधन कृष्ण को तुम दूर बताते हो वह तो हमारे सदा समीप है। जब हम प्रातः काल

शयन से उठकर देखती है तो पहले की ही भाँति हम श्री कृष्ण को घर भर मे माखन खाते देखती हैं। आप जिस निर्गुण की चर्चा हमसे करते है, वह आपके ही दृष्टिकोण से घट-घट बासी है, हमसे तो वह बहुत दूर है। हमारे तो प्राण-धन यशोदा पुत्र श्री कृष्ण ही है जो सदा ही हमारे हृदय मे बसे रहने के कारण हमारे समीप है। वे अब भी पहले के समान अपनी बाल मण्डली के साथ दधि आदि को चुराकर उसको मित्रो सहित खाते फिरते हैं। सूर कहते है कि उद्धव को चुप गरदन लटकाये देखकर गोपियाँ कहती है कि अब हमारी प्रेम-रीति को सुनकर आप क्यो शान्त हो गये, अब अपने निर्गुण का प्रवचन क्यो नही करते ?

पद ४९.

गोपियाँ निर्गुण का विरोध करती हुई कहती हैं—

हे सखि ! अपने गुणवान् गोपाल लाल को उस गुणहीन (निर्गुण) ब्रह्म के बदले मे देने से हमे क्या लाभ है ? उद्धव अपनी इन मीठी-मीठी बातो से निर्गुण के द्वारा समस्त सुखो और मुक्ति का प्रलोभन देकर धर्म और अधर्म के विवेक को जगाया चाहते है। किन्तु उनकी ये समस्त बाते निर्गुण ब्रह्म के समान ही आधारहीन हैं। तनिक हृदय मे विचार कर तो देखो कि मनमोदको से किसकी बुभुक्षा तृप्त हुई है ('मनमोदक नही भूख बुताई''— तुलसी)। सूरदास जी कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि नन्दनन्दन ब्रज चन्द को छोडकर निर्गुण को अपनाने का भुस फटकने जैसा व्यर्थ का कार्य कौन करे अर्थात् निर्गुण ब्रह्म की साधना करने से कोई लाभ नही निकलेगा।

पद ५०

गोपियो का उद्धव से कृष्ण-चर्चा चलाने के लिए अत्यत आकुल-व्याकुल प्रार्थना है—

हे उद्धव ! तुम हम से श्री कृष्ण के ही कथा प्रसग चलाओ। अपनी इस ज्ञान की अमूल्य चर्चा का मथुरा ले जाकर ही कीर्तिगान करना। वहाँ नगर की चतुर नारियाँ अपने स्वभाव एव वचनानुसार ही इसका अच्छा मूल्याकन करेंगी। गूढ व्यग्य यह है कि नगर की स्त्रियो का ही यह स्वभाव है कि आज

एक को प्रेम करती है, कल दूसरे को। हे श्री कृष्ण के प्रिय मित्र ! यदि तुम्हारे हृदय मे किंचित् भी दया तो इन अत्यत तृषित-दुखित नेत्रो को एक बार पुन नद-नन्दन की मोहिनी छवि दिखला दो। हे अलि ! चाहे कोई कोटि कोटि प्रयत्न कर ले तो भी विहृणियो को प्रेमी के कथा-प्रसग के अतिरिक्त अन्य कोई प्रसग रुचिकर नही लग सकता। सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि मछली की प्राण-रक्षा का एकमात्र उपाय जल है, अर्थात् उसी प्रकार हम तडपती हुई गोपिकाओ के एकमात्र प्राणाधार श्री कृष्ण ही है ।

विशेष— अलकार— अन्त्यानुप्रास और अन्योक्ति।

पद ५१

गोपिकाएँ श्रीकृष्ण के सयोग के समय की रसरीति की अनिर्वचनीयता बताकर कृष्ण-प्रेम की अनन्यता प्रतिपादित करती कहती है—

हे मधुकर ! हम नन्दनन्दन की सौन्दर्यमयी मनमोहिनी छवि का कैसे वर्णन करे ? मेरे मन मे उस समय की प्रेमक्रीडाओ के अनेक रहस्य है किन्तु उनका वर्णन किस प्रकार करूँ ? वाणी नेत्रो के अनुभवो से परिचित नही। जिन नेत्रों ने उस लीला माधुरी का दर्शन किया है वे वाणी-विहीन है और वाणी को उस प्रेम-क्रीडा-विलास का अनुभव नही है। वाक्शक्ति के अभाव मे ये आँखे जब उस सगुण (गुणवान्) श्रीकृष्ण, जो हमारे प्रियतम है, की लीलाओं का ध्यान करती है तो अश्रुरूप मे इनमे प्रेमजल उमड आता है। अब हृदय मे बारम्बार यही पश्चात्तापपूर्ण सन्ताप होता है कि काश ! विधि के विधान पर भी हमारा वश होता (जिससे श्री कृष्ण से वियोग का योग ही हम न होने देती)। सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि हम अपने अगो की बियोग-व्याकुल दशा को इस मूर्ख (पसुहि) भ्रमर को कैसे समझावे ?

विशेष—१ अलकार—अत्यानुप्रास। २. 'गिरा अनयन, नयन बिनु बानी' वाली तुलसी की समस्या जिस प्रकार सूर के सम्मुख रही है, उसी प्रकार अन्य कवियो के भी—

"बयाने हुस्ने सनम हो तो कैसे हो जाहिर।
जबाँ के आँख नही आँख के जबां नही ॥"

उपनिषद् मे भी ऐसा ही कथन है—

"न शक्यते वर्णयितु गिरा तदा स्वय तदन्त करणेन गृह्यते ।"

पद ५२

गोपियाँ कृष्ण मे अपना अनन्य अनुराग प्रकट करती कहती है—

हे उद्धव ! हमारे लिए श्री कृष्ण हारिल पक्षी की कभी न छूटने वाली लकडी सदृश है । हमने अपने हृदय मे मनसा, वाचा, कर्मणा यह दृढ निश्चय कर लिया है कि हम कृष्ण प्रेम मे ही अनुरक्त रहेगी । हमे सोते और जागते तथा स्वप्न और प्रत्यक्ष मे अर्थात् अहर्निश कृष्ण के नाम की ही रट लगी रहती है । हे मधुप ! तुम्हारा योगोपदेश सुनते ही ऐसा कटु लगता है जैसी कडवी-ककडी मुँह से लगते ही । जिस निर्गुण के विषय मे इससे पूर्व न कभी कुछ देखा, न सुना और न कोई आचरण किया उसी रोग को आप हमारे लिए पाल लाये है । सूर कहते है कि गोपिकाएँ कहती है यह निर्गुण की योग-साधना तो आप उन्हे सिखाइये जिनके मन चकई (एक प्रकार का लट्टू) के समान घूमने वाले, भ्रमरवृत्ति बाले, है ।

विशेष—१ अलकार—अत्यानुप्रास, वृत्यनुप्रास एव उपमालकार । २. प्रेम की अनन्यता के लिए 'हारिल की लकडी' कवियो का प्रिय उपमान रहा है, यथा—

"काहे को करत हठ हारिल की लकरी"—मतिराम ।

पद ५३

गोपियाँ उद्धव के निरन्तर योगोपदेश पर आक्रोश प्रकट करती हुई कहती है—

आप हमे बारम्बार मौन का उपदेश क्यो दे रहे है ? हे भ्रमर ! तुम्हारे योगोपदेश के ये असह्य वचन विरहणियो के लिए उसी प्रकार पीडा जनक है जिस प्रकार जले पर नमक । शृगी (योगियो का एक वाद्य) बजाना, शरीर पर विभूति रमाना, मृगछाला का प्रयोग तथा मुद्राओ की माला आदि एव प्राणयाम जैसे योगसाधना के उपकरण तो योगियो के लिए ही उपयुक्त है । हम असहाय अहीर जैसी निम्न श्रेणी की स्त्रियो के लिए हे धूर्त मधुप ! यह व्यवस्था कहाँ तक उपयुक्त है ? तुम्हे यह भी ज्ञान नही कि घर अर्थात्

वैराग्य की व्यवस्था किसके लिए है ? यह योगोपदेश तुम उन्ही कुब्जा महारानी को ले जाकर दो जो आज सब प्रकार से सौभाग्यशाली है। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि हमने तो कही आज तक सुतली मे माला के मोती पिरोते कोई देखा नहीं अर्थात् हम योग के लिए सर्वथा अयोग्य हैं।

विशेष—१. अलकार—अत्यानुप्रास, छेकानुप्रास ('अबला अहीर) एव उपमा। २ प्रथम चरण की द्वितीय पक्ति मे 'जरे पर नोन' मुहावरे एव अन्तिम पक्ति मे लोकोक्ति का प्रयोग है।

पद ५४

गोपियों को प्रेमविहीन योग स्वीकार्य नही, इस मनोभाव की अभिव्यक्ति प्रस्तुत पद मे की गई है।

हे उद्धव इस प्रेमशून्य योग की चर्चा चलाने से कोई प्रयोजन सिद्ध नही हो सकता। दुखियो से कठोर वाणी का प्रयोग करने से कोई क्या पायेगा ? आप कृष्ण वियोग मे दीन हम गोपिकाओ को इन योग के उपदेशो से दुखी करके क्या पाओगे ? जिन नेत्रो से हमने राजीव नयन भगवान् श्री कृष्ण की रूप-छबि का पान किया है उन्ही को तुम बद करने के लिए अर्थात् ध्यान करने के लिए कहते हो—इसमे कौन सी बुद्धिमानी है ? हे मधुकर ! जिस योग के अन्तर्गत प्राणवल्लभ कृष्ण की प्रेमभावना नही, उसमे हमारे लिए क्या आकर्षण है। हम तुम्हारे मुख से तुम्हारे मित्र और अपने स्वामी भगवान् नद-नदन की बाते सुनना चाहते हैं, तुम सज्जन व्यक्ति की भाति ('साधु होय') उन्ही के गुणो का गान करो। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि गुणहीन ब्रह्म (निर्गुण) के गुणो का कथन तुम स्थान-स्थान पर करते फिरते हो किन्तु हमारे प्राणनिधान प्राणो के प्राण अत्यन्त प्रिय श्री कृष्ण के गुणो को भी कही प्रतिष्ठित करते हो ? भाव यह है कि तुम व्यर्थ निर्गुण का कथन करते हो, श्री कृष्ण का गुणगान करो।

विशेष—१ अलकार छेकानुप्रास।

पद ५५

गोपिया उद्धव को योगोपदेश बन्द करने का आदेश देती हुई कहती है—

हे मधुप ! व्यर्थ दूसरो की बातो का प्रसग मत चलाओ (निर्गुण पथ

गोपियो के लिए दूसरे का ही है) । इस ब्रजभूमि मे इन योग की बातो को न कोई कहता है और न सुनता है । तुम्हारा यहाँ कृष्ण के सखा के रूप मे जो मान था वह इस उपदेश से कम होता जा रहा है । हे उद्धव ! हम आपके मुख से यह समाचार सुनने के अभिलाषी है कि कृष्ण ने गोप-कुल की विरह-व्यथा को किस प्रकार विस्मृत कर रखा है । मथुरा मे जाकर उनका साथ अच्छे व्यक्तियों से हुआ है जिसके परिणाम स्वरूप हमे योगसाधना का उपदेश देने की सूझ आई । आपने भी उनकी पहचान भले आदमियो से कराई । व्यग्य यह है कि कितने बुद्धिशून्य व्यक्ति से कृष्ण का ससर्ग हुआ है जो यह नही सोच सकते कि गोपियाँ योग के लिए अनुपयुक्त है । आप जिस निर्गुण की कथा को सुन्दर बता रहे हो यह हमे कडवी लगती है जो हृदय मे खारा-पन उत्पन्न कर देती है । सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि निर्गुण का उपदेश इस विरह-विकल अवस्था मे उसी प्रकार अन्यायपूर्ण है जिस प्रकार कोई मल्लाह, नाव के डूब जाने पर, डूबने वालो से अपना पारिश्रमिक मागे ।

काव्य-सौन्दर्य— १ अलंकार अत्यानुप्रास एव लोकोक्ति । २ अन्तिम पक्ति मे वाग्वैदग्ध्य देखते ही बनता है ।

पद ५६

गोपियाँ उद्धव के कथन का खण्डन उद्धव के ही व्यवहार और कथनी के अन्तर को बताकर करती है—

हे सखि ! इस ब्रजभूमि मे उद्धव की इस निर्गुण शिक्षा को कौन सुनेगा ? हे भ्रमर ! जिसके कार्य और व्यवहार मे सगति न हो उसका विश्वास कोई किस आधार पर करे ? तुम हमारे थोडे से ही कथन से मन्तव्य समझ जाओ, हम आपकी शिक्षा स्वीकार नही कर सकती । आप स्वय तो प्रियतम कृष्ण के अमृतस्वरूप रस मे हृदय को आपूरित रखते हैं और हमसे कहते है कि वह प्रेम नीरस है । इस सुलभ आनददायी प्रेमरस से हमे वियुक्त कराकर निर्गुण साधना की शिक्षा ऐसी है जैसे कोई प्राप्त जल को छोडकर शून्य मे कुआ खोदकर स्नान का विधान करे । आप जैसे ज्ञानी और योगी है यह हमे भली भाँति ज्ञात है । व्यंग्य यह है कि यदि आप पूर्ण-योगी और ज्ञानी हैं तो मथुरा

मे कृष्ण के संसर्ग मे रहते हुए लौकिक आनद क्यो भोगते है ? किसी के चरित्र को तो उसके बाह्य लक्षणो से ही जाना जाता है। यदि किसी ग्राम मे धान अधिक हुआ होगा तो उसके बाहर धान का पयाल ही पयाल दृष्टिगत होगा। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि अधिक विस्तार पूर्वक कहने से किसी वस्तु का रस नही रहता ("रस गोप्यम्") अत हमसे अधिक न कहलाकर वास्तविकता को ढकी ही रहने दो क्योकि गूलर को फोडने से उसमे से कीडे ही कीडे निकल पडते है अर्थात् यदि हमने और अधिक बाते कही तो आपकी पोल खुल जायगी।

काव्य-सौन्दर्य—१ अलकार अत्यानुप्रास, छेकानुप्रास, लोकोक्ति एव स्वभावोक्ति।

पद ५७.

कृष्ण द्वारा प्रेषित उद्धव जब गोकुल मे गोपिकाओ को उनके प्रियतम नदनन्दन की पत्रिका देते है, तब उसको देखकर ब्रजबालाओ की जो स्थिति हुई उसी का वर्णन कवि ने किया है—

कृष्ण द्वारा लिखित अक्षरो को देखकर गोपियाँ प्रिय की सम्बध भावना से पत्रिका को बारम्बार भाव-विह्वल होकर हृदय से लगा लेती है. (हृदय से लगाकर मानो प्रिय-परिरम्भण का सुख ही उन्हे प्राप्त हो जाता है) एव विभोरता मे उनके अश्रु चू पडते है। अश्रु एव स्याही मिलकर वह पत्रिका श्यामवर्ण की हो गई। श्याम वर्ण की ही क्या मानो वह 'श्याम' अर्थात् कृष्ण ही हो गई। भाव यह है कि एकदम पत्रिका देखकर श्याम की स्मृति साकार हो गई। आगे गोपियाँ प्रिय-सामीप्य-सुख का वर्णन करती कहती है कि जब तक इस गोकुल मे ब्रजचन्द कृष्ण के साथ रही तब कभी भी थोडा भी किसी प्रकार का कष्ट न हुआ। हे उद्धव ! तुमसे उस समय की प्रिय मजुल बाते क्या सुनावे—

"कहै तो कहाँ लौं कहै, कहै पुनि कौन सी उठानि ते"—'रत्नाकर'

वह भी समय था जब हम गोपबालाएँ उनके वेणुनाद पर सम्मोहित हो, आमन्त्रण पाकर आती थी एव अनेक लीलाओ का रस पान कर वापिस घरो को जाती थी, तब हम कितनी प्रमुदित होती थी। उस समय हम

वनवारी, मुरली मनोहर, के प्रेम के आगे किसी को नही बदती थी और अहर्निश रास-रस मे विभोर रहती थीं। सूर कहते है कि गोपियाँ विह्वल भाव से उस समय कह उठी—हे बालापन के मित्र! सहचर! प्राण-वल्लभ कृष्ण! तुम कब मिलोगे?

काव्य-सौन्दर्य—१. विप्रलम्भ शृगार का पूर्ण निर्वाह अपने समस्त अगो महित हुआ है। आलम्बन कृष्ण, आश्रय गोपियाँ, उद्दीपन पत्रिका एव 'स्मृति' सचारी है। २ तद्गुण, यमक, परिकर, एव अत्यानुप्रास अलकार एव द्वितीय चरण की प्रथम पक्ति मे मुहावरे का सुन्दर प्रयोग है। ३ विरह मे पत्रिका का वर्णन प्राय सब ही कवियो ने किया है, कुछ उदाहरण देखिए—

(क) **"कारे कारे आखर लिखे जु कारे कागर,**
सु न्यारे करि बाँचै कौन जाँचै चित्त भग मे।"

× × ×

स्याम रग ह्वै करि समान्यो स्याम रग मे।"—'देव'

(ख) **"विरहिन पाती पीउ की लई लाख अभिलाष।**
पढन न पायी छुवत ही ह्वै गयो कागद राख॥"

(ग) **"सूखी जाति स्याही लेखनी कै नैकु डक लागै,**
अंक लागै कागद बररि बरि जात है।"—'रत्नाकर'

४ पद के अन्तिम चरण के अन्त मे 'बाल-सगाती' शब्द सूचित करता है कि 'सूर के स्याम' की प्रीति 'प्रथम दृष्टि प्रेम' (Love at first sight) नहीं, वह अत्यत स्वाभाविक—सहज-प्रसूत है।

पद ५८

लोकोक्ति है—

"जैसे ओढे कामली, तैसे ओढ़े खेस।
जैसे कन्ता घर रहे, तैसे रहे बिदेश।"

इसी प्रकार गोपियाँ अपने असूया भाव को व्यक्त करती हुई कहती है—

हे मधुप! हमे तो सयोग और वियोग दोनो ही दशाओ मे समान ही परिणाम प्राप्त हुआ। जब श्री कृष्ण ब्रज मे थे तब उनके अधरामृत पान का सौभाग्य प्राय वशी को ही प्राप्त होता था। अब वियोगावस्था मे कुब्जा सपत्नी के समान उस रस की अधिकारिणी बनी हुई है। तुम हमे व्यर्थ ही

यह योग का उपदेश देकर विभूति रमाने को कह रहे हो। हम तो स्वय योगी है —

"योगी सो वियोग-भोग-भोगी कहा कम है"

हममे से किसी को आपने शृगार प्रसाधन करते, मॉग को कुसुमो से सुसज्जित करते देखा है ? जो आप हमे कानो मे मुद्रा, कटि मे मेखला, शीश पर जटा एव आधारी आदि— उपकरणो को धारण करने के लिए कह रहे है तो क्या आपने हममे से किसी को सुन्दर कर्णाभूषण एव तनसुख के वस्त्र की सुन्दर साडी धारण करते देखा है, अर्थात् हम तो स्वय योगियो के समान सौन्दर्य आदि से विरक्त रहती है । हम तो इस कठिन वियोग मे अहर्निश श्री कृष्ण का ही ध्यान करती रहती है। तुम शीघ्र ही मथुरा के लिए प्रयाण करो जहाँ योग के ज्ञान का सम्मान होगा अथवा तुम शीघ्र ही उस मथुरा के लिए प्रयाण करो जहा योग सदेश भेजने वाले श्री कृष्ण है और उनसे कहो कि गोपियाँ रात-दिन तुम्हारा ही ध्यान करती है । इस ब्रज मे तो वे प्रियतम कृष्ण नित्य अपने मनोहर रूप मे सर्वत्र रमण करते है अर्थात् पल भर को भी हमे विस्मृत नही होते। इस अवस्था मे चाहे तुम सूप बेचने वालो के समान उच्च स्वर मे निर्गुण का कितना ही विज्ञापन द्वार-द्वार करते फिरो किन्तु हमारी अनन्य निष्ठा कृष्ण मे ही रहेगी ।

विशेष—'तनमुख की सारी' एव 'लेहु धर सूप' मे सूर का देश-काल ज्ञान परिलक्षित होता है और सिद्ध होता है कि तनसुख की छटा निहारने वाला महाकवि जन्माध न था।

पद ५९.

गोपिया अब तक बेचारे उद्धव को अनेक प्रकार की खरी-खोटी सुना चुकी है, उसी पर पश्चात्ताप और खेद प्रकट करती कहती हैं—

हे उद्धव ! तुम हमारी बातो का बुरा न मानना। अब हमे कठोर वचन कहते डर लगता है। वस्तुत. वियोग मे हमारी बुद्धि स्थिर नही है और बुद्धि का विवेक न रहने से मर्यादा का, शिष्टता का ध्यान नही रहता । अपने मन म अत्यन्त व्यथित होने पर कोई किसी को यदि भला-बुरा कह देता है तो उस पर पश्चात्ताप होता ही है। फिर हम कृष्ण से प्रेम करती है, यह कोई

पाप तो है नही। तुम भी तो हमारी ही स्थिति मे हो क्योकि तुम जो कुछ सम्मान प्राप्त करते हो वह कृष्णाश्रित होने के कारण से और कृष्ण के सखा होने के कारण से ही तो है। तुम्हारा चित्त भी तो श्री कृष्ण के चरण-कमलो के प्रेम मे ही दिन रात अनुरक्त रहता है। सूर कहते है कि गोपियो ने उनसे पूछा कि जब आप इतने कृष्णाश्रित है तो 'कृष्ण प्रेम से श्रेष्ठ योग साधना है'—यह आपके मुख से किस प्रकार उच्चरित होता है।

विशेष—अलकार- अत्यानुप्रास।

पद ६०

कृष्ण प्रेम को न छोडने की अपनी विवशता गोपियाँ उद्धव को बताती है —

हे भ्रमर (उद्धव)! हमने रात दिन अपनी शक्ति भर अपने चित्त क कृष्ण की प्रीति से विमुख करने का प्रयत्न किया किन्तु फिर भी यह ब्रजचन्द के ध्यान के बिना नही रहता। हमने अनेक इतर कथा-प्रसग चला कर उनमे इसे रमाने का प्रयत्न किया, कानो मे कृष्ण का कोई सन्देश हमने नही पडने दिया, मुख से कृष्ण की चर्चा तक नही चलाई और अपने आसुओ को भी रोका किन्तु सब उपाय व्यर्थ गये। हमने अपने को कठोर बनाकर देख लिया किन्तु मन का यह दृढ निश्चय है कि सब सुख त्याज्य है, भले ही करोडो स्वर्गो के सुख प्रस्तुत किये जाय किन्तु वे कृष्ण प्रेम की समता कहाँ प्राप्त कर सकते है? समुद्र मे उडान भरने वाला पक्षी यत्र-तत्र भटक कर जिस प्रकार जहाज पर ही आश्रय पाता है, उसी प्रकार हमारा मन इस भवसागर मे एक मात्र कृष्ण का ही आश्रय लेकर उन्ही का गुण गान करता है। जो मन की लगन हृदय से हटती नही उसी के कारण हृदय उत्तरोत्तर व्यथा पाता है। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि यह मन इस शरीर का परित्याग भी नही कर सकता क्योकि वह केवल एक बार प्रिय छबि का दर्शन भर करना चाहता है।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास एव उपमा।

पद ६१

गोपिया कृष्ण प्रेम मे अपनी अनन्यता प्रकट करती हुई, भ्रमरवृत्ति का

विरोध करती कहती है—

हे मधुमत्त भ्रमर ! तू चुप बैठा रह। हमे हमारे प्रियतम ब्रजचन्द कृष्ण ही बने रहे। तुम्हारे इस (गुणहीन) निर्गुण को लेकर कौन सा प्रयोजन सिद्ध करेगी ? हे भ्रमर ! (यहाँ परोक्ष रूप मे कृष्ण से तार्त्पर्य है) तुम पराग के रस मे इस प्रकार लिप्त रहते हो कि नीचो के समान अपने शरीर की भी सुध बुध खो देते हो अर्थात् कुब्जा-रस मे पूर्णरूपेण लिप्त हो सब कुछ भूले बैठे हो। तुम बार-बार मद्यप के समान इस मदिरा का पान करते हो—इस बीभत्सता का वर्णन न करना ही अच्छा है। तुम्हारा यह व्यवहार है कि कुछ क्षणो के लिए सबको अपने वशीभूत किये रहते हो और इसीलिए तुम्हारी यह भ्रान्ति है कि हमे अन्य सुमनो के समान, जो थोडी देर तुम्हें रसपान करा देते है, समझते हो। जितने भी काले—भ्रमर, कृष्ण, उद्धव—हैं उन सबका ऐसा ही व्यवहार है। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि हमने सर्वात्मना सर्वस्व, अत्यन्त सुन्दर प्रियतम राजीवनयन श्री कृष्ण को, जो यशोदा और नद के वात्सल्य के आधार है, ही समर्पित कर दिया है, अब हम तुम्हारे निर्गुण की साधना किस प्रकार करे।

काव्य-सौन्दर्य—१. अलकार—'मधुमतवारे' मे परिकराकुर (जहा विशेप अभिप्राय के साथ विशेष्य या विशेष्यो का कथन) है तथा अन्तिम पक्ति मे लोकोक्ति का सुन्दर प्रयोग है। २ "**घरी पहर बिलमावत**" से तुलना कीजिए—

"रस रहते रहते रहते है,

कलियों पर अलियो के फेरे।"—'प्रसाद'

पद ६२.

प्रस्तुत पद मे प्रवृत्ति और निवृत्ति का विश्लेषण करके सगुण भक्ति मार्ग के ऋजुपन का कथन गोपियाँ करती है—

उद्धव ! तुम हमारा कृष्ण प्रेम का सरल मार्ग क्यो रोकना चाहते हो ? तुम इस निर्गुण के शूल से कृष्ण-भक्ति के राजपथ के सीधे मार्ग को क्यो बाधामय बना रहे हो—

"अति सूधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेकु सयानप बाँक नही।"—घनानन्द

तुम जो इस कुटिलता को अपना रहे हो इससे प्रकट है कि या तो तुम्हे कुब्जा रानी ने सिखा-पढाकर भेजा है अथवा श्रीकृष्ण ने ही अपनी प्रीति छुडाने के लिए यह उपक्रम किया है। अच्छा आप वेद, पुराण, स्मृति आदि समस्त शास्त्र ग्रथो को देख जाओ उनमे कही भी स्त्रियो के लिए योग साधना का विधान नही है। तुम कृष्ण की दुहाई देकर हमे इस निर्गुण को अपनाने के लिए बाध्य करना चाहते हो, हम उनका कैसे विश्वास करे उन्हे तो छूछी छाछ और दूध का भी अन्तर ज्ञात नही अर्थात् हम दूध सदृश को छोडकर मट्ठा के समान गुणहीन कुब्जा को कृष्ण अपना रहे हैं। (सूर कहते है) वास्तविक बात तो यह है कि हमारे प्राणो के मूलधन श्रीकृष्ण को तो अक्रूर पहले ले गये थे, उद्धव तो अब उस मूलधन का ब्याज लेने आए है। भाव यह है कि उद्धव के आने का प्रयोजन कृष्ण प्रेम की स्मृति की रही सही मधुरिमा को नष्ट करना है।

विशेष—१ अलकार—रूपकातिशयोक्ति, लोकोक्ति एव अन्त्यानुप्रास। २ अन्तिम पक्ति मे शब्द-मैत्री एव वर्ण मैत्री दर्शनीय है।

पद ६३

गोपियाँ कहती है—

हमारी विरह-व्यथा को दूर करने के लिए सब लोग बातो से ही समझाते है किन्तु वह उपाय कोई नही बताता जिससे प्रियतम नदनन्दन से मिलन हो सके। यद्यपि कृष्ण से साक्षात्कार के लिए हमने अनेक प्रयत्न किये किन्तु वे फिर भी अन्यत्र ही रमण करते रहे। इस उपेक्षा पर भी हमारे नेत्रो को अन्य किसी का दर्शन रुचिकर नही। हमारी जिह्वा अहर्निश उन्ही के नाम की रट लगाये रहती है। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि आप उनके प्रेम के कारण हमे चाहे कुछ भी कहे किन्तु कृष्ण मे हमारी प्रीति दृढ है।

विशेष—अलकार—छेकानुप्रास।

पद ६४

गोपियाँ उद्धव से निर्गुण से सम्बन्धित प्रश्नो की झडी लगा कर बेचारे की बोलती बन्द कर देती है—

मधुप ! हम तुमसे परिहास नही करती वरन् शपथपूर्वक पूछती है— हमे समझाओ कि तुम्हारा वह निर्गुण किस देश का निवासी है, इसका पिता कौन है, इसकी माता का क्या नाम है, इनकी पत्नी कौन है और कौन है इनकी दासी ? कैसा इसका वर्ण और स्वरूप है और कौन कौन से रस उसको रुचिकर है ? इन सब बातो के सही सही उत्तर हमे दो, यदि तनिक भी झूठ बोले तो दण्ड पाओगे। इस प्रश्नावली को सुनते ही उद्धव को मौन के अतिरिक्त कुछ नही सूझा मानो ज्ञान का बखान करने वाली समस्त बुद्धि नष्ट हो गई हो।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास एव छेकानुप्रास।

पद ६५

गोपियाँ निर्गुण को अपनाने मे अपनी विवशता बताती है—

हमारे हृदय कृष्ण प्रेम से आपूर्ण है, उसमे किसी अन्य की प्रीति के लिए स्थान नही है। श्री कृष्ण के रहते हुए हृदय मे अन्य किसी की प्रीति का विचार आ ही नही सकता। हृदय मे कृष्ण मूर्ति इस प्रकार बस गई है कि चलते फिरते, कोई वस्तु देखते, दिन मे जागते हुए और रात्रि मे सोते हुए कभी भी वह क्षण भर के लिए भी विस्मृत नही होती। हे उद्धव ! तुम हमे लौकिक लाभ बताते हुए अनेक कथा प्रसगो द्वारा निर्गुण के अपनाने के लिए कहते हो किन्तु हमारे शरीर तो प्रेम से परिपूर्ण घट के समान है उनमे निर्गुण का विशाल सिंधु किस प्रकार समा सकता है ? छोटी सी गागर मे सागर किस प्रकार आ सकता है ? सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि जिन श्याम वर्ण श्रीकृष्ण के मुख-कमल पर सुन्दर मुस्कान की छटा विराजमान है ऐसे छविमान् के दर्शन की अभिलाषा से हमारे नेत्र प्यासे मर रहे हैं। भाव यह है कि कृष्ण-दर्शन की तीव्र आकाक्षा है।

विशेष— १. अलकार— छेकानुप्रास व रूपक।

१ प्रथम चरण से तुलना कीजिए—

'प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय ?
भरी सराय रहीम लखि, आप पथिक फिर जाय ।।"

पद ६६

गोपियाँ कृष्ण प्रेम मे अनन्यता व्यक्त करती कहती है—

समस्त गोकुलवासी कृष्ण प्रेमानुरक्त है। कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी आराध्य से हमारा परिचय है ही नही, अन्य का तो नामोच्चारण भी यहा व्यभिचार समझा जाता है। तुमने व्यर्थ ही इस नगले मे आकर अपने जोग की गठरी उतारी—इसका यहाँ कोई मूल्य नही। थोडी दूर और आगे चलकर काशी मे यदि तुम इसे बेचते तो यह बहुत महगी बिक जाती, क्योकि वही इसके पारखी है। हमारा गोप और गोपिकाओ का वर्ग कृष्ण प्रेम मे दृढ है। मुरली-मनोहर ने जो रसयुक्त प्रेम क्रीडा हमारे साथ की है, उनको विस्मृत करना असम्भव है। तुम कहते हो कि निर्गुण की साधना से मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी किन्तु उसका हमारे लिए कोई महत्व नही चाहे धर्म, अर्थ काम एव मोक्ष चारो पदार्थ उसके साथ सहज प्राप्त हो। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि हम तो अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण की मनमोहक मूर्ति पर ही बलिहार जाती है—वे ही हमारे परम आराध्य है।

पद ६७.

गोपिया निर्गुण का उपहास करती हुई उद्धव की खिल्ली उडाती है। वे परस्पर कहती है—

अरी पगली! तू उद्धव से क्या बक रही है ? ये कृष्ण के वे ही अनन्य मित्र है जिनके विषय मे बहुत चर्चा सुना करती थी। व्यग्यार्थ यह है कि ये तो वैसे तो कृष्ण के अनन्य मित्र होने का दम भरते है किन्तु यहा उनकी जड काट रहे है। यह तेरी समझ मे बात आयी या नही कि ये हमे योगोपदेश देने आये है। दूसरी गोपी सखी की इस बात को सुनकर उद्धव को और भी बनाते हुए कहती है कि हे सखि ! तू क्या कह रही है, मुझे तेरे इस कथन पर विश्वास नही हो रहा है। फिर वही पहली सखी कहती है कि तू इस बात पर अविश्वास मत कर। जो सज्जन होते है वे ही सत्कार्य कर

सकते है ये उद्धव तो पूर्ण कपट और कुटिलता के भण्डार हैं। मै सत्य कहती हूँ कि तू यह बिलकुल निश्चय जान ले कि ये कृष्ण के मित्र नही है। कृष्ण तो रास के अनन्य-अनुरागी है और यह योग का दृढ प्रचारक दोनो की सगति कैसे हो सकती है। इसकी बातो से तो योग और प्रेम मे महान् अन्तर दृष्टिगोचर होता है। (सूर कहते है कि सखी ने कहा) तुम सब इस कपटी का कृष्ण के मित्र होने का विश्वास कर क्यो बावली, मतिहीन बन रही हो।

पद ६८

लोक-भाषा मे दूत शब्द का व्यवहार ऐसे व्यक्ति के लिए किया जाता है जो थोडा बहुत नमक मिर्च लगाते फिरते है। गोपियाँ उद्धव को भी इसी कोटि मे खीच लाती है। एक गोपी कहती है—

ऐसे ही लोग दूत की सज्ञा से अभिहित किये जाते है। ये कटु वाणी कहते है जिससे दूसरो का हृदय दु ख पाता है। इस प्रकार के व्यवहार से ये अपना सम्मान भी खो देते है, मुझे तो यही आश्चर्य है कि ये इस व्यवहार से क्या लाभ ग्रहण करते है ? अब तक ये बुरी सगति मे ही रहे है जिसके प्रभाव से ये नारियो को निर्गुण का ज्ञान सिखाने का प्रयास कर रहे है, अन्यथा स्त्रियो के लिए कही भी यह व्यवस्था नही है। आप तो आपादचूड निर्लज्ज है ही दूसरो को भी वैसा ही बनाने का प्रयास करते है। इस स्थिति मे भी यह गौरव के साथ योगोपदेश दे रहे है। सूर कहते है कि आगे गोपी ने कहा कि ऐसी हीन स्थिति मे भी ये अपने सिद्धान्त की प्रशसा ही करते है, इस हार मे भी वे अपनी जीत ही मानते है—कैसी बेहयाई है।

पद ६९

गोपियाँ उद्धव की हठवादिता पर व्यग्य करती कहती है —

कोई अपना स्वभाव नही छोड सकता, जो जिस स्वभाव का है उसी का रहता है। कुत्ते की पूँछ को सीधे करने के चाहे कोई करोडो उपाय कर ले किन्तु वह सीधी नही हो सकती। कौआ जन्म लेते ही अभक्ष्य वस्तुओ को खाना प्रारम्भ कर देता है, उसका वह स्वभाव छूटता नही। काले रंग की कमली को कितना धोयें किन्तु उसकी कालिख नही जा सकती। जिस प्रकार काटने

से सर्प का पेट नही भरता किन्तु फिर भी वह अपना कुटिल कार्य नही छोडता, उसी प्रकार चाहे उद्धव के कथन को हम माने या न माने ये अपनी बकवास नही छोड सकते। (सूर कहते है) इनके योगोपदेश से चाहे दूसरे पर कैसी भी बीती हो—पर यह अपनी आदत नही छोडेगे।

विशेष—१ अलकार—अत्यानुप्रास, अर्थान्तरन्यास तथा उदाहरणमाला। २. "धोये रग ·········कमरी"—से तुलना कीजिए—

"सूरदास प्रभु कारी कामरी चढै न दूजो रग।"—सूर

पद ७०

गोपियाँ उद्धव को बताती हैं कि वे किस शर्त पर उनके निर्गुण-ब्रह्म की आराधना स्वीकार कर सकती है—

हे उद्धव ! हम तुम्हारी निर्गुण-साधना को इस शर्त पर स्वीकार कर सकती हैं कि तुम हमे अपने आराध्य को मुकुट और पीताम्बर धारण करे हुए दिखा दो। उसे अपनाने से चाहे हमे पाप भी लगे किन्तु हम तुम्हे आश्वस्त करती है कि हम सब गोपिकाए उसका जाप करेगी। कृष्ण को भुलाकर आप हमे भूत के समान अरूप ब्रह्म को बता रहे है—ऐसे आराध्य मे आग लगा दो। जिन गोपियो के मुख ने सर्वदा ही अमृत तुल्य कृष्ण अधरामृत का पान किया है वे विष पान के सदृश निर्गुण को क्योकर अपनायेगी। (सूर कहते हैं कि) हम समस्त ब्रजयुवतियाँ कृष्ण के आनदस्वरूप, (एक अग) प्रेमरूप पर ही अनुरक्त है।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास।

पद ७१

निर्गुण को स्वीकार करने मे गोपियाँ अपने नेत्रो की विवशता बताती है—

हे उद्धव ! तुम्हारे इस निर्गुण-कथन को सुनते ही हमारे नेत्र यहा से पलायन कर गये। जब से उन्होने तुम्हारे मुख से यह कटु सन्देश सुना, तभी से रोते हुए यहाँ से अन्यत्र ढुलक गये। ये श्यामवर्ण घटाओ को भी देखकर छिप जाते हैं क्योकि उनसे कृष्ण के साथ की गई क्रीडाओ की सुधि हो आती

है। जब से आप ने ब्रज भूमि मे प्रवेश किया है तब से ये हमारा भी विश्वास नही करते। यदि इनका व्यवहार ऐसा न होता तो हम आपके योगमार्ग के अनुकूल अवश्य आचरण करती किन्तु ये नेत्र तो छिप ही गये। भाव यह है कि हमारे नेत्र सर्वदा कृष्ण स्मृति मे लीन बन्द रहते है। सूरदास कहते है कि गोपियो ने कहा कि हमने चाहे तुम्हे अपनी स्थिति कितनी ही स्पष्ट क्यो न कर दी हो किन्तु आप निर्गुण को न अपनाने मे दोष हमारा ही बताओगे।

विशेष— अलकार—अत्यानुप्रास।

पद ७२

गोपियाँ उद्धव से कहती है —

हमने अपने नेत्रो से श्री कृष्ण की वह मनमोहिनी छवि निहारी है। उस रूप दर्शन से इस ससार मे हमारे जन्म का प्रयोजन सफल सिद्ध हो गया। हमारे मन को सुन्दर लगने वाले खजन के समान कमनीय चचल वे नेत्र कमल सदृश और मृग तथा मछली के सुन्दर नेत्रो के समान थे जो अपने स्वरूप मे श्वेत, श्याम और रक्तिम वर्ण के थे। कानो मे सुन्दर रत्नयुक्त कर्णाभूषण की आकर्षक आभा कपोलो पर पडकर मनमोहक लगती थी। उसकी शोभा ऐसी प्रतीत होती थी मानो सूर्य दर्पण मे इस अद्भुत सौन्दर्य को खोजने की चेष्टा कर रहा हो। उनके अधरो पर मुरली राजती थी और मन को चचल कर देने वाली तिरछी भौहे करके जब वे त्रिभगी मुद्रा मे खडे होते थे और उनके वक्षस्थल पर जो मुक्तमाल रहती थी वह ऐसी लगा करती थी मानो नीले पर्वत से गगा निकलकर पृथ्वी की ओर जा रही हो। इसके अतिरिक्त भी उसकी सुन्दर वेशभूषाएँ और स्वरूप बनते थे किन्तु उन सबका वर्णन कहा तक किया जाय। उनके अ ग-प्रत्यग पर केशर युक्त अंगराग का लेप रहता था। (सूर कहते है कि) इस शोभा को देखते ही बनता था, वाणी उसको अभिव्यक्त करने मे असमर्थ है क्योकि देखते तो नेत्र हैं (जिनके पास वाणी नही) और वर्णन वाणी करती है जिसे इस छवि के दर्शन का अनुभव नही।

काव्य-सौन्दर्य—१ अलकार—अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा। २ 'रसलीन' को भी आँखो मे वे ही रग प्रिय है जो सूर की गोपियो को—

"अमिय हलाहल मद भरे, सेत स्याम रतनार।"

३. अन्तिम पक्ति से तुलना कीजिए—

"गिरा अनयन, नयन बिनु बानी ।"—तुलसी

× +

"बयान हुस्ने सनम हो तो कैसे हो जाहिर।
जबाँ के आंख नही, आख के जबां नहीं ॥"

पद ७३.

गोपियाँ कृष्ण प्रेम मे अपनी अनन्यता प्रतिपादित करती हुई उद्धव मे कहती है—

हमारे नेत्रो मे सर्वदा श्रीकृष्ण का ही ध्यान बना रहता है। इसलिए हमारे लिए यह निर्गुण का उपदेश व्यर्थ ही है। इसका प्रचार वही कीजिए जहाँ इसके पारखी ज्ञानी हो। दुख की मारी हम गोपिकाए अपनी हस्तरेखा देखकर विधि के विधान को स्वीकार करती हुई कृष्ण के आगमन की अवधि को गिनती रहती है। इस दयनीय स्थिति मे आपके ये योग के कटु उपदेश मानो हमारे प्राणो का अन्त ही करेगे। उनकी मुख की रूप-माधुरी पर करोडो चन्द्रमाओ की कान्ति एव कर्णाभरण की छवि पर कोटि-कोटि सूर्यो एव समस्त शरीर की छवि पर कोटि-कोटि कामदेवो का सौन्दर्य दान करके न्योछावर कर चुकी है। भ्रकुटी की बकिम शोभा को करोडो धनुषो की शोभा नहीं पहुँच सकती और उनकी चितवन तीर के समान है— समग्र रूप से उनकी तिरछी चितवन पर करोडो कमलो की शोभा न्यौछावर है एव उनके कटाक्ष बाण के समान हृदय मे लगने वाले है। उनकी शख के समान सुन्दर गर्दन मे रत्नहार शोभित है तथा वक्षस्थल पर मणि विराजमान है। उनकी प्रलम्ब भुजाएँ अत्यत दयावान् है, जो दुखियो की रक्षा करते है एव उनके पाणिपद्म अमृतनिधि है जिनसे असहाय आश्रय पाते है। कृष्ण-वर्ण शरीर पर पीताम्बर की मनमोहक छवि अवर्णनीय है। उसकी शोभा ऐसी है मानो नीले मेघो मे चपला नृत्य करती हुई शोभित हो। रास के प्रेमी गोपाल से मिलकर हम उनके मधुर अधरामृत का पान करती थी। सूरदास जी वर्णन करते हैं कि गोपियाँ कहती है कि ऐसे माधुर्यमय सौन्दर्यवान् कृष्ण को छोडकर हमारा रक्षक अन्य कौन हो सकता है ?

विशेष— १ अलकार, अत्थानुप्रास, छेकानुप्रास, सागरूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा, प्रतीप, स्मरण आदि । २ 'सूर काव्य रीतिकाल का प्रेरणा स्रोत है' इसकी झलक यहाँ देखी जा सकती है ।

पद ७४

गोपियाँ उद्धव के निर्गुण उपदेश पर व्यग्य करती हुई परस्पर कहती है—

हे सखियो ! उद्धव अत्यत सुन्दर उपदेश देने आए है । इस अमृत वाणी को सुनकर सब सत्सग का सुयश प्राप्त कर ले । आप कहते है कि वस्त्राभरणो का त्याग कर दो और आभूषण, गृहस्थ तथा अन्य सासारिक प्रेम—सब ही से विरक्त हो जाओ एव शीश पर जटा, समस्त शरीर पर विभूति लगाकर अपने पति श्री कृष्ण से विरक्त हो जाओ । इस प्रकार अपने इस वचन से युवतियो को प्रिय-पीडा से व्यथित करते हो । इन्ही कुटिल उपदेशो के बाण समान वचनो से इनका शरीर बिल्कुल काला, पिजरे के समान हो गया है । अब ये इतने ढीठ हो गए है कि हृदय मे तनिक भी भय नही रह गया है —निस ोच होकर निर्गुण प्रचार करते है । सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि जिसको जन्म से जो लत पड जाती है वह छूटती नही है एव इसमे न वह सद्असद् का विचार करता है । जिस प्रकार सर्प काटता है तो उससे उसके मुख मे अमृत नही पहुँचता किन्तु फिर भी वह अपना प्रकृत स्वभाव नही छोडता ।

विशेष— १ अलकार—उत्प्रेक्षा एव अर्थान्तरन्यास ।

पद ७५

कृष्ण की निष्ठुरता के प्रति गोपियो का उपालम्भ है , वे कहती है—

कृष्ण ने हमे विस्मृत कर दिया । उनका यह व्यवहार प्रेम करके गले मे कटार भोक देने के समान है । वे हमारे साथ ऐसा ही व्यवहार कर रहे है जैसे कसाई बकरे आदि को पहले तो स्वार्थवश खिला पिलाकर खूब हृष्ट-पुष्ट करता है किन्तु उसके मोटे हो जाने पर उसका वध कर देता है । भाव यह है कि उनका स्वार्थ सिद्ध हो गया इसीलिए वे हमारी उपेक्षा कर रहे है । हमारे लिए तो कृष्ण वस्तुत चिडिया पकडने वाले शिकारी के समान ही सिद्ध हुए । जिस प्रकार शिकारी चुग्गा लगा कर चिडियो को आकर्षित करता है ·

उसी प्रकार कृष्ण ने मधुर् वशी स्वर के आकर्षण का चुगा लगाकर मयूर-पखो की टट्टी मे हम भोली भाली गोपिकाओ को चिडियो के समान फँसा लिया। चिडिया पकड कर शिकारी उसे म जूषा मे बन्द रखता है जिसमे वह तडफती रहती है, इमी प्रकार कृष्ण हमे तडफती छोड कर मथुरा चले गये और हमारी कुशलता आदि का समाचार भी नही लिया। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि नित नवोदित प्रेम प्रसूनित मनोवाछाओ के कल्पतरु मे फिर कभी कोई नवीन शाखा न फूटी, उनके रास-रस की क्रीडाओ का सुख हमे किचित् भी नही मिल पाया।

विशेष— छेकानुप्रास, उपमा, सागरूपक आदि अलकारो का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

पद ७६

कृष्ण की पत्रिका का वर्णन कवि ने किया है—

कोई भी ब्रजवासी कृष्ण द्वारा प्रेषित पत्रिका को पढने मे समर्थ नही है। श्रीकृष्ण ने इस परम दु खदायक वियोग की छुरी को क्यो लिख भेजा ? विवशता यही है कि इसे पढने के सारे प्रयास विफल सिद्ध होते है। पत्रिका का कागज अत्यत कोमल है। दूसरी ओर, हमारे नेत्र प्रेम जल से परिपूर्ण है तथा हाथ की अगुलिया विरह ताप से अत्यत तप्त है। तप्त अगुलियो से पढने के लिए यदि इसे उठाये तो यह जल जायेगी, नेत्रो से ही देखने मात्र का प्रयत्न करने पर यह अश्रु-जल से भीग कर गल जायेगी। कामदेव के कठोर-कणो का प्रहार करने वाले अक्षरो को कौन समझ सकता है ? इस पत्रिका को पढकर ही क्या करेगी, हम तो श्रीकृष्ण की मुखछवि के आधार पर ही जीती है और उन्ही के चरणो की दिन रात आराधना करतीर हती है।

विशेष—१ अलकार—अत्यानुप्रास, लुप्तोपमा (जहाँ उपमा के चारो धर्मो—उपमेय, उपमान, साधारण धर्म एव वाचक शब्द—मे से किसी का लोप हो, यहाँ वाचक लुप्तोमा है। २ द्वितीय चरण के उत्तरार्द्ध मे अक्रमत्व दोष है, क्योकि पहले पत्रिका के जलने तब भीगने का वर्णन है। ३. तुलना कीजिए— –

"विरहिन पाती पीउ की, लई लाख 'अभिलाष ।
पढन न पाई छुवत ही, ह्वैगो कागद राख ।।"

४ अन्य तुलनाओ के लिए पद सख्या ५७ का विशेष देखिए ।

पद ७७

निर्गुण का खण्डन और सगुण का प्रतिपादन करती हुई गोपिकाएं उद्धव से व्यग्यपूर्वक कहती है—

तुमने उद्धव, अपने इस युक्तिधन को सस्ते बाजार मे ला उतारा है । जान पडता है कि तुम मुहूर्त आदि का विचार करके भी नही चले इसीलिए इस निकृष्ट स्थान मे आ गये । सम्भवतः तुम्हारे पास यही एकमात्र धन है अर्थात् तुम निर्गुण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही जानते । अपने इस एकमात्र धन को तुम अन्यत्र ही बेचने ले जाओ अथवा वही ले जाओ जहाँ विष-बेल कुब्जा है । हमारे ब्रज मे इसके लिए कौन प्रयत्न करेगा—वह मुक्ति तो हमारे चरणो की दासी है । हम सब सखियाँ तो इसी मत की पोषक है, आपकी बात की समर्थक कोई भी नही है, अत आप इस अनमोल धन को द्वार-द्वार क्यो लिये फिरते हो ? (सूर वर्णन करते है) हमारे यहाँ सर्वत्र ही गिरि को धारण करने वाले सौन्दर्य शाली उन कृष्ण का ही एकमात्र प्रेम है जिनके स्कन्धो मे हमने भुजा डाल कर प्रेमयुक्त रसक्रीडामय आलिगन किये है ।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास, छेकानुप्रास ।

पद ७८

उद्धव ने अपने योगसाधना के उपदेश मे जिन जिन उपकरणो और सिद्धान्तो का उल्लेख किया, गोपियाँ उन सबकी अवस्थिति सगुण भक्ति के आलम्बन कृष्ण प्रेम मे ही बताती है—

हे मधुप ! हमने योग आदि की नही अपितु इस गोकुल के प्राणवल्लभ कृष्ण की ही आराधना की है । मनसा-वाचा-कर्मणा ब्रजचन्द से ही पतिव्रत धर्म निभाकर प्रेम द्वारा योग और तप को प्राप्त किया है—

'विरहिन के सहजैं सधैं, योग, भक्ति और ज्ञान ।"

इस योग साधना के समान ही हमने भी माता-पिता एव अन्य बाधवो की प्रीति के बधन को विच्छिन्न कर वेदविहित मार्ग का उल्लघन कर

सुख-दुख को एक समान समझ कर योगियो के समान 'समअवस्था' प्राप्त कर ली है। मानापमान को एक समान समझकर हमने हृदय मे पूर्ण सतोष प्राप्त किया तथा इस प्रकार चचल मन को स्थिर कर लिया। लज्जाशीलता को आसन बनाकर अर्थात् त्यागकर, कुलशील की मर्यादा को तथा अन्य सासारिक बधनो को प्रणाम कर दिया है। अपने अपयश के पवन को पीकर प्रेम के लिए यह वासना को नष्ट करने वाला प्राणायाम किया। गुरुजनो के विरोध को चारो ओर से योगियो की पचाग्नि के समान सहन किया और योगियो के समान ही हमने सूर्य को ठडा देखा अर्थात् आपत्तियो को कुछ न समझा। अपयश के धूएँ को यत्र-तत्र पीया एव अन्य अपयश को भी कानो से अनसुना कर दिया—यह भी योगियो के समान ही था। योगियो के समान हमने भी सहज समाधि लगायी जिसमे हमे अपने शरीर की भी सुधि न रही और मन ही मन प्रिय का दर्शन किया जिस प्रकार योगी परम ज्योति को दिन रात जगाता है, उसी प्रकार प्रिय की स्मृति रूपी उस ज्योति को हम हृदय मे जगाए रहती है। हमने उनकी भ्रूलता के ध्यान से ही त्रिकुटी मे ज्योति का दर्शन किया है तथा उनके नेत्रों की छवि को एकटक देखकर त्राटक की साधना की है (त्रिकुटी मे त्राटक का दर्शन—एक योगिक प्रक्रिया)। उनकी स्मितमय आभा से युक्त कर्णाभूषण और मुखरूप सूर्य चन्द्र के दर्शन किए तथा मधुरभाषी मुरली की स्वर-लहरी के रूप मे योगियो के अनहद नाद की सिद्धि प्राप्त की है। रसनिर्भरण के समान ही उनके सुन्दर वचनो की सरस्वती बरसती थी और उनके पद-पद्मो मे स्थान ही हमारे लिए मोक्ष था। हमे यह प्रेम का मन्त्र कामदेव जैसे गुरु ने दिया था जिससे सर्वदा ही कृष्ण का ध्यान रहता है। सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि फिर भला हम किसी अन्य को अर्थात् तुम को गुरु बनाकर इस शुष्क ज्ञानोपदेश को क्यो सुने—हम तो प्रेम के द्वारा समस्त उद्देश्य पूर्ण कर चुकी।

विशेष—१. योगियो के प्रत्येक कार्य से अपनी प्रेम-रीति की तुलना करके गोपिकाओ ने उद्धव को पूर्ण परास्त कर दिया। सागरूपक के प्रयोग की सफलता दर्शनीय है। २ सूर के समय भी नाथ-सम्प्रदाय के अवशेष

शेष थे, इसका प्रमाण इस पद मे आयी योगियो की सम्पूर्ण शब्दावली एव सिद्धात है ।

पद ७६.

उद्धव प्रति गोपियो का कथन—

हे उद्धव ! तुम निश्शक होकर जो कुछ बकना चाहते हो बक डालो। ज्ञात होता है कि तुम पर किसी ने जादू चला दिया है जिसके कारण तुम पागल के समान सम्पूर्ण दिन प्रलाप करते रहते हो। जिस निर्गुण की तुम निरन्तर चर्चा करते हो उसे हममे से किसी ने स्वीकार भी किया है ? तुम्हारा समस्त योगोपदेश अप्रयोजनीय रहा—सबने उसकी उपेक्षा कर दी। तुम्हारा समस्त प्रवचन इसी प्रकार उड गया जिस प्रकार आँधी मे वायु भुस को उडा ले जाती है। तुम इस ज्ञान-प्रचार का श्रम व्यर्थ ही यहाँ कर रहे हो, यहाँ कौन तुम्हारी सुनता है। तुम्हारा समस्त उपदेश अरण्य रोदन के समान निरर्थक है। (सूर कहते है) इतनी उपेक्षा पर भी कुछ समझ नही पाते, तुम बिलकुल ही मतिहीन हो।

विशेष—लोकोक्ति एव मुहावरो का प्रचुर प्रयोग है।

पद ८०

प्रस्तुत पद मे काले रग को लेकर गोपियों ने उद्धव की बोलती बन्द की है—

अब हम भली भाँति वस्तु-स्थिति से परिचित हो गई हे। जिन श्री उद्धव जी से कृष्ण के मित्र होने के नाते हृदय मे बडी बडी अभिलाषाएँ और आशाएं थी वे भी जाती रही। वे अक्रूर और ये उद्धव, सखि, दोनो ही एक जैसे है। उन अक्रूर जी महाराज ने तो हमारे साथ वह क्रूर व्यवहार किया कि कृष्ण को ही ले गये और ये उद्धव उनकी स्मृति के रत्न को छुडवाकर उसके बदले मिट्टी देना चाहते है। जितने भी ये मथुरा वासी यहाँ आते हैं वे सब एक ही शाखा के खट्टे फलो के समान है जो देखने मे बडे भोले और ऊपर से स्निग्ध किन्तु हृदय मे पत्थर के समान कठोर है। सूर कहते है कि दूसरी सखी बोली कि हे सखि! मैं तो तुझे पहले से ही बता रही हूँ कि ये श्यामवर्ण के कभी भी अपने नही

होते। भले ही इन्हे काटकर कोई शीश समर्पित करे अथात् इनके साथ कितना ही अच्छा व्यवहार करे पर ये अपना स्वार्थ सिद्ध किये बिना बाज़ नही आते।

काव्य सौन्दर्य —'काले' को लेकर समस्त कृष्ण साहित्य मे व्यग्य की एक अद्भुत वर्णन-छटा रही है। तुलना के लिए पिछले पद देखिये।

पद ८१

गोपियाँ उद्धव से कृष्ण मे अपनी अनन्य निष्ठा बताती कहती है—

हे मधुप ! हमारे और श्रीकृष्ण के प्रेमसम्बध मे क्या अब योगोपदेश ही शेष रह गया है ? तुमने व्यर्थ मे क्यो बक-बक लगा रखी है, यहाँ से दूर क्यो नही हो जाते। जब हमने कृष्ण के साथ अनेक प्रेम-क्रीडाएँ की थी, तब तुम क्या सो गये थे, अर्थात् क्या तुम्हे हमारी रगरेलियो का ज्ञान नही—उनके स्मृति-सुख मे हम योग किस प्रकार-ग्रहण का सकेगी। इसलिए तू हमे निर्गुण ब्रह्म का यह जो उपदेश दे रहा है, वह हमे रुचिकर नही। अपने उपदेश से तुम हमे निर्गुणमार्गी बनाने का वैसा ही विफल प्रयास कर रहे हो जैसा कोई कच्चे धागे से किसी के शरीर को बाँधना अथवा कमल तन्तुओ से मदमस्त हाथी को पकडने का प्रयास करे। भाव यह है कि हमारा कृष्ण प्रेम दृढ है। सूर वर्णन करते हैं कि गोपियो ने कहा कि इसे लेजाकर तुम उन्ही कृष्ण को दे देना जिन्होने इसे हमारे पास भेजा था। जब कभी हमे आवश्यकता होगी तो हम इस योग को किसी आने जाने वाले के हाथ मँगवा लेगी।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास, उपमा एव स्वभावोक्ति।

पद ८२.

उद्धव जब गोपियो के मना करने पर भी बारम्बार निर्गुण चर्चा चलाये जाते है तो उनका उपहास करने के लिए एक अपनी सखी (राधा) से कहने लगी —

हे सखि ! नन्दलाल ने अपना रूप तुमसे वापिस माँगा है। उनके उस मनोहर रूप को तुम यहाँ आत्मसात् करके बैठ गई वहा उसके अभाव मे कृष्ण नीरूप होकर रह गये (उद्धव ने अभी-अभी कृष्ण को नीरूप, निर्गुण आदि

बताया था)। भाव यह भी है कि कृष्ण ने तुमसे अपनी प्रीति वापिस माँगी है क्योकि इससे उन्हे भी वहाँ कष्ट होता है। सखी (राधा) भी इसका उत्तर उसी व्यग्य शैली मे देती कहती है कि हे सखि ! मेरा स्वच्छ मन और नेत्र अर्थात् नेत्रो का आलम्बन कृष्ण रूप, भी तो कृष्ण ही ले गये है, अथवा हे सखि ! मेरा भोला मन भी तो वे चचल मनोहर दृष्टि वाले (लोचन शब्द से यह भाव) ले गये है, उसे तो वापिस किया नही और हमसे अपना रूप माँगकर निर्लज्जता से प्रतिशोध लेने आये है। अपना स्वार्थ सिद्ध कर अर्थात् रूप रस पान कर हमे उद्धव के द्वारा कूपमडूक की सज्ञा से अभिहित करा रहे है। इसमे राजा और भिखारी (राजा=कृष्ण, भिखारी=स्वय गोपिया) की क्या बात है, आदान-प्रदान मे तो सब समान है। भाव यह है कि कृष्ण यदि अपना रूप चाहते है तो हमारा 'मन' हमे लौटा दे।

काव्य सौंदर्य— १. अलकार—अत्यानुप्रास, परिवृत्ति, उत्प्रेक्षा, आदि। 'धारि कर सूप' मुहावरे का प्रयोग सुन्दर है। २ अन्तिम चरण के पूर्वार्द्ध मे 'अपनो काज सवारि सूर' मे कृष्ण की भ्रमरवृत्ति पर व्यग्य उपालम्भ है। इसी प्रकार प्रसाद जी ने कहा है—

"सुमन सुम कली बने रह जाओ,
ये भौरे चंचल रस लोभी, इन्हे न पास बुलाओ।"

३. इसी प्रकार का सुन्दर वर्णन एक उर्दू कवि ने किया है—

"चुराई गर किसी की चीज तो क्या आप की हो ली।
हमारा दिल हमें दे दो, हटो बस दिल्लगी हो ली।।"

पद ८३.

दु.ख की स्थिति मे अन्य स्त्रियो से अपनी तुलना करना, नारी स्वभाव है। गोपियाँ भी इसी स्त्रीजनोचित प्रकृति वश परस्पर कहती हैं—

मनमोहन से तो अच्छे सीता के पति राम थे। वे सीता के वियोग मे, उसकी खोज मे अपने भाई लक्ष्मण के साथ वन-वन फिरे एव विशाल समुद्र अंगुल भर के गढे के समान पार कर दिया। वहा जाकर रावण को मारा, लका जला दी एव प्रेयसी का राक्षसो से भयभीत मुख देखा। कैसे स्तुत्य प्रयत्न उन्होने सीता के लिए किये। उन्होने (राम ने) वियोगिनी सीता के

पास निर्गुण के ज्ञान को लिख कर किसी दूत को प्रेषित नही किया जिससे सीता को दुःख होता। इस व्यवहार को देख कर उन कुब्जा प्रेमी के प्रेम का क्या विश्वास किया जाय ? उन रसक्रीडाओ के समय कृष्ण की इस निर्मम कठोरता का ध्यान तक नही किया। करती भी कैसे, प्रेम का नशा ही ऐसा है। जैसे मदिरापान करने वाला चषक पर चषक खाली किये जाता है, उसे अपने शरीर की भी सुधि नही रहती। वह क्या उन्होने कम कृपा की है कि हमारी सुधि कर के हमे यह कष्टदायी योग सदेश लिख कर भेज दिया है, हे सखि ! तू उनका यह कृपा पत्र तो देख। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि वे मक्खन लोभी अथवा वे नित्य नवेली के इच्छुक प्रेम की गहराई और अनन्यता को क्या समझ पायेगे।

विशेष—१. अलकार—अत्यानुप्रास एव 'नवनीता' मे श्लेष। २ अन्तिम पक्ति मे भागवत का प्रभाव परिलक्षित होता है। ३ द्वितीय चरण के पूर्वार्द्ध मे दुष्क्रमत्व दोष है।

पद ८४

"जो मै ऐसा जानती प्रीत करे दुख होय।
नगर ढ़िंढोरा पीटती प्रीत करे नहि कोय ॥" —मीरा

जैसी ही भावना गोपियाँ प्रस्तुत पद मे प्रकट करती है—

हमने निष्ठुर कृष्ण से प्रेम किया तो दुख क्यो न होता ? कठोर-हृदय से प्रेम करके तो दुःख ही प्राप्त हो सकता है। वे अपने छलपूर्ण प्रीति-व्यवहारो से भ्रमित करके हमारा चित्त हरण करके ले गये। कृष्ण के प्रेम ने हमे मानो ससार मे काल के मुख से निकाल लिया था। किन्तु इस वियोग मे पुनः उसी मे ढकेल कर हमे व्यथित किया है। अब उस प्रेम के अभाव मे आखे रोते-रोते टेसू के समान लाल हो गई है किन्तु यह सब उस कच्ची प्रीति-रीति के लिए व्यर्थ है। गोपी कहती है कि इस समय मेरी वेदना को वही जान सकता है जिसे प्रिय वियोग का अनुभव हो। सूर वर्णन करते हैं कि इस प्रकार कहकर गोपिका हृदय-विदारक रुदन कर उठी।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास एव लोकोक्ति।

पद ८५.

प्रिय के अभाव मे समस्त सुखदायक उपकरण भी दुखदायक हो जाते हैं। उन स्मृति-उपकरणो से प्रिय के सामीप्य की इच्छा और भी प्रबल हो उठती है। गोपियो की इसी मनोदशा का चित्रण प्रस्तुत पद मे है—

प्रियतम गोपाल के अभाव मे रसयुक्त क्रीडाओ के आगार-कुज भी आज हमारे लिए शत्रु हो गये हैं। सयोग के समय ये ब्रज की लताएँ अत्यन्त सुखकारी अनुभव होती थी और ये ही अब प्रचण्ड अग्नि की लपटो के समूह के सदृश लगती हैं। यमुना का स्वच्छन्द प्रवाह, कोकिल की मधुर स्वरलहरी, कमलो का प्रफुल्ल विकास, मधुपो का कलगान—आज सब व्यर्थ है। शीतल पवन, कपूर और अमृतमयी चन्द्रकिरणें—समस्त शीतल उपकरण आज सूर्य की किरणो के समान भूने डाल रहे है। हे उद्धव ! नदलाल से कहना कि विरह-कटार काट के हमारी धज्जिया उडा रही है सूरदास कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि प्राणवल्लभ कृष्ण की बाट जोहते ये आँखे गुँजा के समान लालवर्ण की हो गई हैं।

विशेष—१ अलकार—छेकानुप्रास, अत्यानुप्रास, उपमा, आदि।

२. अन्तिम चरण के पूर्वार्द्ध से तुलना कीजिए—

"**विरह रेत कंचन तन लावा**"—जायसी।

३. पद्माकर ने भी सयोग के सुखदायी उपकरणो का ऐसा ही वर्णन किया है—

"ऊधो यह सूधो सो सदेसो कहि दीजो भले,
हरि सो, हमारे ह्याँ न फूले बन-कुँज हैं।
किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन की,
डारन पै डोलत अगारन के पुज हैं॥"

पद ८६.

गोपियो के हृदय मे कृष्ण को संदेश प्रेषित करने की न जाने कितनी कितनी अभिलाषाएँ थी। वे चाहती थी कि कोई उनके सन्देश का माध्यम हो सके किन्तु जब उद्धव इस माध्यम के रूप मे उपस्थित हुए तो वे उनसे कुछ कह न सकी क्योकि उनके योग-सदेश से वे वैसे ही व्यथित थीं। अतः

कृष्ण को सन्देश प्रेषित करने मे उनके सम्मुख एक भारी कठिनाई थी—इसी का वर्णन प्रस्तुत पद मे है ।

अब हम प्रिय के लिए सन्देश किस प्रकार कहे ? योग के कटु-सन्देश को सुनकर शरीर मृत्यु को प्राप्त होना चाहता है किन्तु नेत्र इस पर पहरा लगाये हुए है । भला इस प्रकार ये नेत्र इस नश्वर शरीर की रक्षा कब तक कर सकेगे ? भाव यह है कि समस्त शरीर को देखने से तो गोपियाँ मृतप्राय लगती है किन्तु नेत्रो की ज्योति से ही उनके जीवित होने का अनुमान लगाया जा सकता है । पर यह विश्वास भी नेत्र कब तक दिला सकते है । कृष्ण को सन्देश देने के लिए हृदय मे भाव आते है, अत्यन्त कठिनाई से प्रयत्न करके उनका पल्लवन कर कहने का साहस करती हूँ किन्तु जैसे ही वे विचार अभिव्यजित हुआ चाहते है वैसे ही उद्धव की ओर निहारकर वाणी मौन हो जाती है और मै अपनी सुधबुध खो देती हूँ । सुधबुध खो देने का कारण यह है कि उद्धव कृष्ण की निष्ठुरता के साक्षात् प्रदर्शन है । हे सखियो ! तुम चतुरा हो कोई ऐसा उपाय सुझाओ जो प्रिय का दर्शन हो सके । किन्तु अन्य कोई उपाय इसमे सहायक दृष्टिगत नही होता, अत अब तो इस कृष्ण-सखा उद्धव की ही अभ्यर्थना करनी पडेगी जिससे वह प्रिय का दर्शन करा दे ।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास ।

पद ८७

यह पद गोपियो की उस समय की मनोदशा की अभिव्यक्ति करता है, जब उद्धव ब्रज से लौट कर मथुरा पहुँच जाते है । गोपिकाएँ सर्वथा निराश और दुःखमग्न हो गईं, क्योकि प्रिय मिलन की अब कोई सम्भावना शेष न रह गई थी । गोपिका कहती है—

ब्रज मे कृष्ण के आगमन की वह चर्चा पुन चली ही नही । पथिक को सम्बोधन देकर कहती है कि एक बार श्री कृष्ण ने उद्धव को योग-सदेश युक्त पत्रिका लेकर अवश्य भेजा था किन्तु उसके पश्चात् उन्होने हमारी कोई सुधि नही ली । हे उदार पथिक ! मै तुम्हारे पैर पकड कर अनुनय करती हूँ कि तुम मथुरा मे वृन्दावन विहारी श्री कृष्ण के पास जाओ । उनके

द्वार पर जाकर तुम यह पुकार लगाना कि ब्रज मे यमुना के अन्दर पुन. कालिय नाग आ गया है (विरह ही यह नाग है)। इस पुकार को सुनकर वे हमारी रक्षार्थ यहाँ आ जायेगे यह विश्वास हमे कृष्ण के पूर्व कृत्य और प्रेमपूर्ण व्यवहार के आधार पर ही है। यदि हम किसी ऊँचे पेड पर लगे पुष्प की इच्छा करती थी, वे हमे अपनी गोद मे लेकर शाखा झुकवा लेते थे—कैसा सुखद समय था वह ? (इसी स्मृति के माध्यम से आलिगन की स्मृति उन्हे आती है) किन्तु आज स्थिति विपरीत है अब तो सखि ! हम जैसी उनकी न जाने कितनी प्रियतमाएँ है। सूरदास जी कहते है कि इस पुरातन प्रेम-रीति के रस रहस्यो का स्मरण कर करके राधा का हृदय वेदना-व्याकुल हो गया।

काव्य-सौन्दर्य— १ अलकार— अत्यानुप्रास। २ स्मृति सचारी का वर्णन हुआ है। ३ अन्तिम चरण के पूर्वार्द्ध में पुष्टि मार्ग का 'अशाशी भाव' परिलक्षित होता है।

पद ८८

प्रियतम कृष्ण के गुण-रूप का ध्यान रखती हुई गोपियाँ उद्धव के निर्गुण का खण्डन करती कहती है—

अच्छा उद्धव तुम ही बताओ कि मैं अपने इन नेत्रों को किस प्रकार प्रबोध दूँ ? ये तुम्हारे योग के कठोर वचनो को सुनकर प्रभु के गुणो का ध्यान करके और भी अधिक व्यथित होते है। ये हमारे नेत्र कृष्ण के सुन्दर मुख को चन्द्रमा मानकर कुमुद और चकोर के समान उन्ही के आश्रित रहते है। उस श्यामल माधुर्य मूर्ति को ये मेघतुल्य मानकर स्वय चातक और मोर के समान उसके लिए तृषाकुल है। उनके चरण कमलो के अभिलाषी ये नेत्र भ्रमर और हस के समान है। प्रिय गमन की सुन्दर गति जल के मदिर मन्थर प्रवाह की भाति है जिसके लिए ये नेत्र मछली के समान पिपासु है। उनके मुकुट मे सुशोभित सूर्यसदृश मणि के प्रेमी ये चक्रवाक पक्षी के समान है। उनकी मुरली पर सम्मोहित होने वाले ये मृग है। इस प्रकार उनके समस्त शरीर की माधुर्यमयी छवि पर ये किसी न किसी रूप मे आसक्त है। उस सौन्दर्यनिधि के अभाव मे इन्हे समस्त ससार का सौन्दर्य निस्सार लगता है। सूरदास वर्णन करते है कि

गोपियो ने कहा कि नदलाल श्री कृष्ण तो पूर्णरूपेण सौन्दर्यागार थे—'उनके अभाव मे ये नेत्र कैसे रहे ?

विशेष— अलकार—, समस्त पद मे रूपक का सुन्दर प्रयोग है ।

पद ८९

विरह-काव्य मे पत्रिका प्रेषण का भी मुख्य स्थान है । पत्र पर पत्र भेजे जाते है, उत्तर पर उत्तर दिये जाते है — प्रेमियो का यह अवान्तर क्रम चलता रहता है । गोपियो ने भी पत्र पर पत्र लिखे किन्तु कोई उत्तर न मिला अब वे परस्पर कहती है —

हमारे सदेशो की अधिकता से मथुरा के कुए भी अट गये होगे । जो भी पथिक यहाँ से गया उसी को हमने सदेश दिया था । सम्भवतः इसी भय से अब इस मार्ग से पथिक नही जाते । उन यात्रियो के न आने के दो ही कारण हो सकते है या तो वे कृष्ण ने समझा बुझाकर सन्देश के उत्तर न देने के लिए बाध्य कर दिये है अथवा वे कृष्ण तक पहुँच भी न पाये हो बीच मे ही मर गये हो । वे अपने समाचार तो भेजते ही नही, हमारे दूतो को भी वही रोक लेते है एव न पत्र ही प्रेषित करते है । पत्र न भेजने का कारण सम्भवत यह हो कि मथुरा मे स्याही समाप्त हो गई हो, कागज भी जल गये हो और दावानल से लेखनी के रूप मे प्रयुक्त होने वाले सरकण्डे भी जल गये हो । ऐसी अवस्था मे पत्रिका वे किस प्रकार लिखते ? इन सब बातो को भी छोडो जो कुब्जा-प्रेम मे अधा हो गया हो वह कैसे पत्र-लेखन का अवकाश निकाले ।

काव्य-सौन्दर्य— १ अलकार— अतिशयोक्ति, रूपक, अत्यानुप्रास एवं काव्यलिग (जहाँ कार्य का कारण बता दिया जाता है) २ पत्रो की अधिकता को बताने के भी अपने अपने ढग है, नेहरू जी ने "World History" में इन्दिरा गाँधी को लिखे गये एक पत्र मे लिखा है—

"I wrote you mountains of letters"

३ अन्तिम चरण से तुलना कीजिए—

"कनक मोल कागद भयौ, मसि भई मानिक मोल ।
कलम भई कै लाख की, जो न लिखे दो बोल ॥"

पद ६०

गोपियाँ कृष्ण की निष्ठुरता के प्रति उपालम्भ देती है—

हे मधुप ! नदलाल मुरली मनोहर से हमारा प्रेम क्या है ? क्योकि हम तो उनसे मनसा-वाचा-कर्मणा प्रेम करती है और वे हमारी उपेक्षा करते है। यह प्रेम तो हो ही गया है किन्तु उनकी प्रेम-रीति तो जल, सूर्य एव मेघ के समान निष्ठुर है जिस प्रकार इन तीनो के प्रेमी मछली, कमल और चातक दुख पाते है वैसी ही गति हमारी हो रही है। मछली जल के अभाव में ही तडफती रहती है, कमल सूर्य के दर्शनाभाव मे ही जलकर मर जाता है और चातक स्वाति मेघ की दयादृष्टि के अभाव मे 'पी-पी' की पुकार करके ही अपना जीवन नष्ट कर लेता है। ये समस्त कथित प्रेमी अपने प्रेम मे असफल सिद्ध होते है किन्तु फिर भी अपनी प्रेम लगन को नही छोडते। उसी प्रकार जिस प्रकार शूरवीर युद्धभूमि मे शीश कट जाने पर भी अपने धड से लडते रहते है। इस प्रकार प्रेम-युद्ध मे हारकर भी उनकी विजय ही होती है क्योकि वे अपने प्रेम के लिए अमर है। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि प्रयत्न पूर्वक प्रेम के विशाल समुद्र को बालू की दीवारो के बाँध मे बाधना असम्भव है। अर्थात् प्रेम के अनन्य आवेग को प्रिय की उपेक्षा कम नही कर सकती।

विशेष— अलकार— अत्यानुप्रास, यथासख्य, उपमा ('कबध युद्ध ज्यो,) तथा निदर्शनालङ्कार है। २ 'बारुहि की भीति' मुहावरे का सुन्दर प्रयोग है।

पद ६१

कृष्ण की निर्ममता के प्रति व्यग्य करती हुई गोपिकाएँ उद्धव से कहती हैं—

इन छल पूर्ण मथुरा निवासियो का कौन विश्वास करे ? इनके हृदयस्थ भावो और व्यवहार मे बडा अन्तर है एव ये पत्रिका तो केवल मान प्रदर्शनार्थ भेजते हैं। कृष्ण ने हमारे साथ कोयल के शिशुओ जैसा स्वार्थपूर्ण व्यवहार किया। कौए कोयल के बच्चो का प्रेम सहित चुग्गा खिला-खिलाकर पालन पोषण करते हैं किन्तु जैसे ही वसन्तागन पर कोयल कूकती है तो कोयल के वे कौओ द्वारा पालित बच्चे अपने कुल मे जा मिलते हैं। इसी प्रकार कृष्ण

यहाँ नन्द यशोदा द्वारा शैशव से ही पालित हुए और हमारी प्रीति-रीति के द्वारा आनदित किये गये किन्तु अब वे अपने माता पिता के पास पहुँच गये है। जिस प्रकार भ्रमर सुमन का रसपान कर फिर उसकी सुधि तक नही लेता उसी प्रकार कृष्ण ने हमारे प्रेम-रस का पूर्णत पान करके अब पूछा तक नही। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि इन काले वर्ण वालो से तो चित्त लगाना ही न चाहिए, ये अन्तत धोखा ही देते है।

विशेष— अंत्यानुप्रास तथा अर्थान्तिरन्यास अलकार (जहाँ सामान्य कथन की विशेष से अथवा विशेष कथन की सामान्य से पुष्टि करायी जाय) है।

पद ६२

कृष्ण मथुरा जाकर राजकाज मे दक्ष होकर राजनीति के कूटपडित तो अवश्य हो गये किन्तु राजनीति का प्रमुख लक्ष्य प्रजा सुख बताकर गोपियाँ अपनी सुधि लेने की बात प्रकारान्तर से कहती है—

अब तो कृष्ण जी राजनीति के कूट नीतिज्ञ हो गये हैं। उन नीति चतुर का जो सदेश यह मधुकर कह रहा है, सखियो ! भला वह क्योकर समझ मे आ सकता है। थे तो वे पहले से ही चट किन्तु अब प्रेम के मिथ्या प्रदर्शन मे विशेष दक्ष हो गये है। उनकी विशाल बुद्धि का अनुमान तो उसी दिन हो गया था जिस दिन उन्होने नारियो के लिए योगोपदेश का सदेश भेजा था। भाव यह है कि अनधिकारी और योग के अनुपयुक्त अबलाओ को निर्गुण की भावना का उपदेश ही उनकी बुद्धि का दिवालियापन बता रहा है। पर-हित के लिए भागे-भागे फिरने वाले वे और ही लोग थे जो सज्जन थे किन्तु ये उद्धव परहित-साधक नही, ये तो व्यर्थ ही इधर-उधर घूम रहे है। कृष्ण ने हमारे जो चित्त चलते-चलते चुरा लिये वे तो अब तक नही लौटाये फिर उनके निर्गुण की आराधना किस मन से करे ? कैसा विरोध है—बिना मन के योग साधना हो नही सकती। भला वे अपनी राज-नीति का पालन किस प्रकार करते होगे जो दूसरो को ही बिना मन के साधना करवा कर रीति-विरोधी बना रहे है ? सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि राजधर्म का पालन तो वही है जहाँ प्रजा को न सताया जाए। किन्तु यहाँ हम उनके

इस प्रेम-विमुख व्यवहार से व्यथित है—त्रस्त है । इससे सिद्ध है कि कृष्ण राजनीति का भी ठीक-ठीक सचालन नही कर रहे है ।

विशेष— १ अलकार—अंत्यानुप्रास । २ हरि ने गोपियो के चित्त को चुरा लिया, चित्त एक ही था उसके अभाव मे निर्गुण की आराधना कैसे करे ? यही कठिनाई 'भारतेन्दु' जी की गोपियो के सम्मुख है—

"ऊधौ जो अनेक मन होते
तो इक श्याम सुन्दर को देते, इक लै जोग सँजोते ।"

३ सूर और तुलसी की सुराज्य की एक सी ही मान्यता है—अन्तिम पक्ति से तुलना कीजिए —

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी ।
सो नृप नरक अवस अधिकारी ॥"

पद ९३

गोपियाँ अपने ऊपर योग की प्रतिक्रिया का वर्णन करती है—

हे सखि ! इस योगसाधना के शुष्क उपदेश को सुनकर मेरे शरीर मे अग्नि के समान दाहक प्रभाव हुआ । यद्यपि हम विरहानल से भीतर ही भीतर उद्धव के आगमन के पूर्व सुलग रही थी किन्तु इस योग के द्वारा उस सुलगती अग्नि मे फूँक लग गयी और वह प्रज्वलित हो उठी । उद्धव ! हमारे लिये योगसाधना का कठिन विधान और उस कुबडी कुब्जा के लिए भोग की व्यवस्था —यह विपरीत ज्ञान तुम्हे किसने सिखाया है ? सिंह हाथी के मास को छोडकर घास खाता है यह तुम्हे किसने बता दिया ? अर्थात् हम कृष्ण-प्रेम को छोडकर निर्गुण को नही अपना सकती । जो हमारे भाग्य मे होना होगा वह तो होगा ही, विधि के विधान मे क्या वश ? हमे इसकी चिन्ता नही कि वियोग होगा अथवा सयोग । हम तो एक मात्र प्रभु की कृपा-कोर की अभिलाषी है जिससे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती है ।

काव्य-सौन्दर्य—१ अलकार—उदाहरण, अत्यानुप्रास ।

अन्तिम पक्ति मे वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्गानुसार 'पुष्टि' का महत्व प्रतिपादित किया गया है ।

पद ६४

उद्धव से गोपियो ने कहा कि अब हमारी समझ मे तुम्हारे ज्ञानोपदेश का उद्देश्य आ गया। तुम्हारी पोल इस प्रकार है—

उद्धव अब तुम्हारी निर्गुण के ज्ञान की चर्चा का रहस्य प्रकट हुआ। कृष्ण केवल यहाँ लज्जावश नही आ रहे है, योग-चर्चा अपने न आने की लज्जा को ही मिटाने के लिए है। लज्जा का कारण राज्य कार्य मे असफलता प्रतिपादित करती हुई गोपिकाएँ कहती है कि अन्तत कृष्ण बेचारे नीचजन्मा अहीर है, वे राज्य जैसे उच्च कुलीनो के कार्य क्या जानें। हम सब मूर्खा हैं, कुब्जा जैसी सुन्दरी ही उनको एक मात्र बुद्धिमती मिल पायी जिससे उन्होने प्रेम सम्बन्ध जोडा है किन्तु अपने इस कृत्य पर पश्चात्ताप उन्हे भी है, इसी कारण वे बेचारे खिसियाने से होकर लज्जावश यहाँ आते भी नही किन्तु उनको लज्जा से गडने की आवश्यकता नही! तुम्हे आश्वस्त करती है कि तुम प्रियतम कृष्ण की बाह पकडकर ले आओ अर्थात् उनकी इच्छा न होते हुए भी लिवा लाओ, हम उन्हे पहले के समान ही अपना लेगी। चाहे वे लाख नवीन विवाह रचाये, तथा इस कुब्जा जैसी दस और प्रेमिकाएँ बना ले किन्तु फिर भी वे हमारे ही रहेगे ("वे तो हैं हमारे ही, हमारे ही हमारे ही रहेगे"—रत्नाकर")। (लगता है कि ऐसा कहने पर कोई सखी मुस्करा जाती है तो पहली गोपिका उसको वर्जित करती कहती है) हे सखि! अभी से कुछ मत कह, शान्त रह, तनिक कृष्ण को ब्रज मे पहले आ जाने दो। जब यहाँ उनसे साक्षात्कार हो जाये तो उनका स्वागत अच्छी तरह परिहासपूर्वक करना।

काव्य-सौन्दर्य—१. अलकार—छेकानुप्रास। २. गोपियाँ यहाँ अभिलषित नायिकाओ के समान है। साथ ही 'विब्बोक' हाव का भी चित्रण हुआ है। ३. समस्त पद मे भक्त के 'मनोराज्य' (भक्ति का एक सोपान) का वर्णन है। ४. "ब्याहौ ········· हमार" से तुलना कीजिए—

"राधा कृष्ण सब ही तो कहैं, कूबरी कृष्ण कहै नहि कोऊ।"

+ + +

"यतेक तोमारे पिरीत करुक तेमन पिरीत हबे ना।
राधा नाथ बिने कुबजार नाथ कहे त तोमारे कबे ना॥"

—'चण्डीदास'

पद ६५

कृष्ण को भुलाने मे गोपिया अपनी विवशता उद्धव को बता रही है—

हमारे हृदय मे माखन चोरी जैसी क्रीडाओ को करने वाले नट नागर बस गए है। तुम्हारे निर्गुण को अगीकार करने के लिए हम उन बाँके-बिहारी को हृदय से निकाल भी देती पर क्या करे वे त्रिभगी लाल तिरछे होकर हृदय मे अटक कर रह गये है। तुम जो उन्हे बार बार निकृष्ट, अहीर जैसी निम्न श्रेणी की जाति का बताते हो उससे हमारा प्रेम कम नही होता। वे अहीर होते हुए भी हमसे विस्मृत नही किये जाते। वहाँ मथुरा जाकर वे भले ही यदुवशियो के उच्चकुल के सदस्य हो गये हो किन्तु हमारे लिए तो वे अब भी पूर्ववत् है। अर्थात् हमे उनकी वही पुरानी स्मृतियाँ व्यथित करती है। उद्धव ने कहा कि वे कृष्ण तुमसे किसी प्रकार भी अनुराग नही रखते, वे तो वसुदेव और देवकी के आत्मज है, इसका प्रत्युत्तर देती हुई गोपिकाएँ कहती है कि हमारा परिचय वसुदेव और देवकी नामधारियो से नही। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि उन छविस्वरूप प्रियतम को देखे बिना हमे ससार निस्सार लगता है।

पद ६६

गोपियाँ निर्गुण का खण्डन कर कृष्ण मे अपना अनन्य अनुराग बताती है—

हम अपने गोपाल को उद्धव के निर्गुण के बदले मे कैसे दे दे? उद्धव चाहे कितनी भी मीठी बातें बनाकर बहकाने का प्रयत्न क्यो न करें हम श्रीकृष्ण के प्रेम को नही छोड सकती। उद्धव हमको निर्गुण के अपनाये जाने पर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष—सभी की प्राप्ति बताते है। ये उस व्यापक को अपनी समाधि द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करते है जिसे वेदादि 'नेति'—'नेति' कहकर स्मरण करते है। यह कहना भी भ्रमपूर्ण है कि उसे चित्त मे ही देखा जा सकता है। सूरदास कहते है कि गोपियो ने कहा कि हे भ्रमर!

निर्गुण चाहे कैसा भी अच्छा क्यो न हो किन्तु उसके लिए कृष्ण-प्रेम का परित्याग कौन कर सकता है ? अर्थात कोई भी नही ।

विशेष—अलंकार—अत्यानुप्रास ।

पद ९७

कृष्ण के वियोग मे गोपियो के नेत्रो की अवस्था का वर्णन कवि करता है—

अपने प्रियतम कृष्ण के वियोग मे गोपियो के ये नेत्र ऐसे हो गये कि एक भी उपमान उनके सम्मुख नही ठहर पाता। समस्त कवि नेत्रो के उपमान व्यर्थ ही देते आये है किन्तु बुद्धिमत्तापूर्वक किसी ने नही दिया। नेत्रो को चकोर कहा गया है किन्तु ये चकोर भी नही क्योकि बिना मुख-चन्द्र के दर्शन के ये अब तक जीवित है। ये भ्रमर भी नही है अन्यथा कृष्ण के कमलकोष के समान सुन्दर मुख से बिछुडकर ये व्यर्थ मे क्यो पडे रहते, वही उडकर न पहुँच जाते ? यदि ये मन को आकर्षित करने वाले खजन पक्षी के समान सुन्दर है तो कभी भी इस सुलभता से वश मे नहीं होते। न ये भागने का प्रयास करते है, और कामदेव के हाथो मे बरबस पड जाते है। यदि ये नेत्र मृग के समान सुन्दर बताये जाते है तो उद्धव जैसे शिकारी को देख कर भी यह क्यों नही भागते है ? उनको शिकारी जानकर भी ये ऐसे वन मे क्यो नही घुस कर अदृश्य हो जाते जहा अन्य कोई आ ही नही सकता। ब्रजलोचन श्रीकृष्ण के अभाव मे ये नेत्र कैसे व्यथित है ? प्रत्येक क्षण दुख बढता जाता है सूर कहते है कि वस्तुत मछलियो का ही एक उपमान नेत्रो के योग्य है, मछली भी सर्वदा जलयुक्त रहती है और नेत्र भी सदैव अश्रुपूर्ण रहते है। इस प्रकार दोनो से जल पल भर के लिए भी अलग नही रहता।

विशेष—रूपक तथा व्यतिरेक (जहाँ उपमेय को बढाकर उपमान को घटाया जाता है)।

पद ९८

योग का उपदेश न मानने का कारण गोपियाँ अपने नेत्रो की विवशता बताती हुई उद्धव से कहती है—

कृष्ण की छवि देखकर पुनर्दर्शन की आशा से इन नेत्रो ने पलक गिराना भी छोड दिया। वियोग में गोपियो को लोकलाज का कुछ ध्यान ही नही,

इसी बात को वे स्वय प्रकारान्तर से इस प्रकार कहती है कि इन नेत्रो की पुत-लियाँ मानो नगी ही रह रही है अर्थात् हम घू घट तक नही करती। घूँघट पट का परित्याग कर ये नेत्र कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा मे ब्रज की गलियों मे टकटकी लगाये रहते है जो प्रियदर्शन लालसा मे उनकी सहज समाधि के समान है। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि जब हम आपके उप-देश पर सुबुद्धि पूर्वक विचार करती है तो हृदय मे उसके महत्व को स्वीकार करती है किन्तु उसका आचरण इसीलिए नही कर सकती कि ये हमारे हठी नेत्र प्रिय की रूपमाधुरी पर ही आसक्त है, अन्यत्र इन्हे कुछ रुचिकर ही नही लगता।

विशेष— तुलना कीजिए—

"भई सखी ये अँखिया बिगरैल।' —'भारतेन्दु'

पद ९९

वियोगिनियो के लिए प्रकृति के सुखदायक उपकरण भी प्रिय-अभाव मे दु.खदायक हो जाते है। सुखकर चन्द्र-ज्योत्स्ना विरहिणी के लिए विशेष दु ख-दायक है क्योकि उसमे प्रिय के सामीप्य की इच्छा और तीव्र हो उठती है। इसी भाव-दशा का वर्णन सूर के कवि ने किया है —

नायिका ने रात्रि को व्यतीत करने के लिए वीणा-वादन प्रारम्भ किया किन्तु अब वह कहती है कि इस वीणा को बजाना छोड दूँ क्योकि इसके स्वर-सचार से विमोहित होकर चन्द्रमा के रथ मे जुते हुए मृग रुक जाते है और चन्द्रमा अस्त होकर रात्रि व्यतीत नही होती जिससे मेरी व्यथा बढ़ जाती है। इस प्रेम पाश मे पडना ही अत्यत दु खदायी है ('चाह नही, निबाह, मुश्किल है') यह प्रेम-व्यथा जिसको होती है वही इसकी पीडा को जान सकता है। भाव यह है कि प्रेम अत्यत कठिन व्यापार है। हे सखि ! जब से कमल समान नेत्र वाले कृष्ण से वियोग हुआ, तब ही से नेत्रो का निरन्तर अश्रु-प्रवाह चल रहा है एव इस पर भी यह तथा कथित शीतल चन्द्रमा मुझे अग्नि के समान दग्ध कर रहा है, फिर मैं धैर्य धारण किस प्रकार करूँ ? सूर वर्णन करते है कि गोपिका भाव-विह्वल होकर कहती है कि आपके दर्शनाभाव मे वियोग-

शमन के अन्य समस्त प्रयास निरर्थक है। आपका दर्शन ही इसकी शान्ति का एक मात्र उपाय है।

काव्य-सौन्दर्य— अलकार— समस्त पद मे अतिशयोक्ति का प्रयोग है। साथ ही उपमा, अ त्यानुप्रास आदि अलकार तथा मुहावरे व लोकोक्ति का प्रयोग दर्शनीय है। २ 'अज्ञेय' जी ने भी कहा है—

"चन्द्रमा की चाँदनी सोने नहीं देती
लीन है मन किन्तु तन की व्यथा यह खोने नहीं देती।"

इस प्रकार के चन्द्रोपालम्भो की साहित्य मे कुछ कमी नही हैं, **'पद्माकर'** जी का 'चन्द्र' तो 'कसाई' ही हो गया है—

"ऐरे मतिमन्द चन्द ! आवत न तोहि लाज,
ह्वै कै द्विजराज काज करत कसाई के।।"

३ महाकवि जायसी से तुलना कीजिए—

"गहै बीन मकु रैन बिहाई। ससि बाहन तहँ रहे ओनाई।।
पुनि धनि सिंह डरेहै लागै, ऐसेहि बिथा रैन सब जागै।।"

पद १००

कृष्ण के वियोग मे राधा की अवस्था का चित्रण कवि करता है—

वृषभानुलली राधा अत्यत मलिन और दुखी है। उसने अपनी साडी को इसलिए नही धुलवाया है कि कृष्ण के साथ रति-क्रीढा मे, आलिगन करते समय वह स्वेद से भीग चुकी है (अब भी वह उससे आलिगन का सुख मानती है) साडी के धुल जाने पर उसका महत्व समाप्त हो जायेगा। वह सर्वदा मुख नीचे लटकाये रहती है जिससे उसकी आकृति पराजित जुआरी के समान बनी रहती है। बिखरे हुए अस्त-व्यस्त केश एव कुम्हलाए हुए मुख से वह पाले से मारी कमलिनी के सदृश है। श्री कृष्ण द्वारा प्रेषित इस योग सदेश को सुनकर वह एकदम भर सी गई। एक तो वह वियोग से व्यथित थी ही, दूसरे उस पर भ्रमर के कठोर वचनो का प्रहार— ऐसी विषम अवस्था मे वह कैसे जीवित रहे। सूर कहते है कि एक राधा ही क्यो, समस्त ब्रजयुवतियाँ कृष्ण के प्रेम मे इसी प्रकार वेदना को सहते हुए जी रही है।

विशेष—१. अलकार—अत्यानुप्रास, मालोपमा। २ 'सुरति दुखिता' नायिका के रूप मे राधा का वर्णन हुआ है।

पद १०१

यहाँ गोपियाँ उसे भाग्यशाली मानती है जिसने किसी से प्रेम नही किया क्योकि उसे यह विरह-व्यथा नही भोगनी पडती—

उद्धव ! तुम निःसदेह बडे भाग्यवान् हो क्योकि तुम प्रीति की डोरी मे नही बधे हो, आपका किसी से अनुराग नही है। जिस प्रकार कमल-पत्र जल के भीतर रहते हुए भी पानी का स्पर्श तक नही करता (पद्मपत्रमिवाम्भसा न्याय) उसी प्रकार तुम भी इसी ससार मे प्रेम-प्रपचो से दूर रहते हो। जिस प्रकार तेल के चिकने घडे को पानी मे डाल देने पर उस पर पानी की बूद भी नही जमती उसी प्रकार तुम ससार मे रहने हुए भी रागो से विरक्त हो। तुमने तो प्रेम सरिता मे कभी प्रवेश ही नही किया—

"प्रीति पयोनिधि मे धसिके हसिकै कढ़वो कछु खेल नही फिर"

और न तुम्हारी दृष्टि किसी रूप माधुरी मे भटकी है। किन्तु यह व्यवहार हमारे योग्य नही है, (सूर कहते है) हम तो असहाय भोली युवतियाँ है जो प्रियतम नन्दनन्दन की सौन्दर्य छबि पर उसी प्रकार आसक्त है जिस प्रकार चीटी गुड पर।

विशेष—अलकार, उपमा, रूपक, अत्यानुप्रास।

पद १०२

गोपियाँ निर्गुण का खण्डन करती कहती है—

हे उद्धव ! अब हमारा मन और किसी से अनुराग नही कर सकता। यहाँ तो पहले से ही श्याम का रग चढ चुका है अर्थात् कृष्ण से प्रेम हो चुका है उसे चाहे आप कितने ही धोने का प्रयत्न करे पर भला काला रग कहाँ छुटता है—

"सूरदास प्रभु कारी कामरी चढ़ै न दूजौ रग।"

इसलिए कृष्ण को यह उचित है कि वे हमसे योग के छलपूर्ण उपदेश दूर ही रखे और वे वही व्यवहार करे जो अभीष्ट है अर्थात् हमसे मिलने का

उपाय करे। हे भ्रमर (उद्धव)! योग हमे उसी प्रकार घृणित लगता है जैसे तुझे चंपा का फूल। हमारे हाथ की रेखा कैसे मिट सकती है जिसमे कृष्ण से प्रेम का सयोग है। उन प्रियतम से मिलने के अब क्या उपाय किये जाय। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि उद्धव आप हमे कृष्ण के सौदर्य मय मुख के दर्शन कराये जिसके आधार पर जीवन धारण कर सके।

विशेष—१ उपमा अलकार। २ द्वितीय चरण की द्वितीय पक्ति से तुलना कीजिए—

> **"चपा तो में तीन गुण, रूप रग और वास।**
> **अवगुण तो में एक है, भौंर न फटकै पास॥"**

पद १०३.

गोपियो का उद्धव प्रति कथन है—

हे उद्धव! न तो हम यथार्थ रूप मे वियोगिनियाँ है और न आप श्रीकृष्ण के प्रेमी दास अथवा दूत। हम तो सच्ची वियोगिनिया इसलिए नही कि हमारे प्राण हमारे शरीर मे विद्यमान है—चाहे वे नाम मात्र को ही सही, है तो। आप इसीलिए उनके सच्चे दूत नही है कि कृष्ण के स्थान पर शून्य अर्थात् निर्गुण का प्रतिपादन करते है। आदर्श प्रेमी तो मछली है जो जल से विलग होते ही मरण दशा को पहुँच जाती है। तुम्हारे कर्त्तव्य का आदर्श पपीहा जो अपने स्वामी मेघ के प्रति अपनी निष्ठा को नही त्यागता और प्यास से छटपटाता रहता है। सच्चा प्रेम तो राजा दशरथ का है जिन्होने अपने प्रिय-पुत्र के वन गमनोपरान्त प्राण त्याग दिये। सूर वर्णन करते हैं कि गोपियो ने कहा कि यद्यपि हमने लोकापवाद को तिलाजली देकर प्रियतम कृष्ण से अनन्य प्रेम करने का व्रत लिया था किन्तु उनके वियोग मे जीवित रहकर व्यर्थ ही ससार मे प्रेम को कलकित किया।

विशेष—अलकार—अन्त्यानुप्रास, उदाहरणमाला।

पद १०४.

गोपियाँ उद्धव को योग-कथन से निरन्तर वर्जित करती रही है, **जब** वे चुप नही होते तो अब की बार बहुत फटकार लगायी—

हे उद्धव ! यदि हमारी और अपनी कुशलता चाहते हो तो जो जोग का प्रवचन तुम अब तक कर चुके हो, उसे पुन मत कहना। यदि तुम हमे जीवित रखना चाहते हो तो कृपा करके मौन रहिये। तुम हमारे इस कथन को परिहास समझ रहे हो किन्तु तुम्हारी कटु-योग-वाणी से हमारे हृदय पर चोट पडती है। इस दुःसह जीवन से तो यह अच्छा है कि हम काशी करवट लेकर अपने को समाप्त कर देती। जब हरि ने मथुरा की ओर गमन करके यह योग सदेश प्रेषित किया तो हमारा शरीर उससे भस्म ही हो गया अब तो तुम केवल यहाँ श्मशान की राख टटोल रहे हो। भाव यह है कि आपके योग को धारण करने के लिए तो यह समझिए कि हमारा जीवन है ही नही। सूर कहते है कि गोपियो ने प्रेमातुर होकर उद्धव से कहा कि या तो तुम हमे उस माधुर्यमूर्ति के ब्रज मे दर्शन करा दो, अन्यथा हमे अपने साथ ले चलो जिससे हम वहाँ उनका दर्शन कर सके। अब यदि हम यहाँ रह गईं तो हमारा मरण निश्चित है और उसका पाप तुम्हारे सिर लगेगा। इसलिए तुम कृष्ण से हमारी भेट कराकर अपने उत्तरदायित्व से उऋण हो जाओ।

विशेष—१. वियोग की दशम अवस्था—मरण—का यहाँ चित्रण काव्योपयुक्त रूप मे हुआ है (मरण का केवल सकेत दिया जाता है)।

पद १०५

गोपियाँ कहती है कि उद्धव आप निर्गुण-साधना मे हमारा उपकार बताते है, कृपया पहले कुछ अपना तो उपकार कर लो—

हे उद्धव तुम हमारे उपकार की बात पीछे सोचना, पहले कुछ अपने को ठीक रखने का उपाय तो कर लो। हम तो तुम्हारे हित की बात बताती हैं पर तुम्हे बुरी लगती है, इसीलिए तुम निरुद्देश्य अपनी बजा रहे हो। हम हृदय से आपका हित-चिन्तन करती हुई कहती है कि तुम अपना कुछ उपचार करवाओ। यह तुम्हारा प्रलाप ठीक नही है, कहना कुछ चाहते हो, कह कुछ जाते हो। तुम अब भी चुप नही हो रहे हो तो हम तुमसे क्या कहे, हम तो शान्त हो जाती है। उचित परामर्श तो सज्जन व्यक्ति को ही दिया जाता है, तुमसे तो हम हार मान चुकी है। तुम्हारी इसी कुप्रवृत्ति के कारण से

श्रीकृष्ण ने तुम्हे अपना भार समझते हुए इधर भेज दिया है। तुम इन्ही पैरो से अर्थात् तत्क्षण मथुरा लौट जाओ, तुम्हारे तो यह सन्निपात सा रोग लग गया है। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि किसी अच्छे वैद्य से जाकर चिकित्सा कराओ तुमतो इस रोग से मरणासन्न हो रहे हो।

विशेष—मुहावरो का प्रयोग दर्शनीय है।

पद १०६

कुब्जा को लक्ष्य कर गोपियाँ उद्धव से कहती है—

हे उद्धव ! जो जिसके भाग्य मे होता है वही उसे प्राप्त होता है। यह हमारा भाग्य ही तो है कि कृष्ण ने उस कुबडी कुब्जा को तो राजरानी बना दिया और हमे योग का यह वैराग्यपूर्ण सन्देश भेज रहे है। आज अभाग्य से समस्त ब्रज-बालाएं जो उनके प्रेम की वास्तविक अधिकारी थी वियोग-विकल हैं और वह दासी सौभाग्यपूर्ण प्रेयसी के पद का उपभोग कर रही है। किन्तु हे सखि ! कृष्ण और कुब्जा का सयोग कितना सुन्दर है जैसे हस और काग की जोडी। अर्थात् कैसा अनमेल सयोग है, हस के समान सुन्दर कृष्ण के कोई हँसिनी होनी चाहिए थी न कि कौए सदृश कुरूप वह कुब्जा। यह कृष्ण के प्रेम का ही परिणाम है कि उस दासी के यहाँ भी राग-रग पूर्ण उत्सव हो रहा है। वह हँस-हँस कर, अत्यत प्रफुल्लता से, प्रियतम कृष्ण के साथ बारहमासी और फाग (ब्रज के लोक गान पूर्ण नृत्य) खेल रही हैं। आप हमारे यहाँ प्रेम के मधुर फलयुक्त बाग को काट कर योग की यह कडवी बेल लगाया चाहते हो। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि बुद्धिमान् लोग गन्ने को छोडकर उसके अगौले को नही चूसते। भाव यह है कि हमारा सगुण आपके निर्गुण की तुलना मे अत्यंत श्रेष्ठ है—हम उस हीन निर्गुण (गुणहीन) को क्योकर ग्रहण करे।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास, रूपक एव अन्तिम चरण की प्रथम पंक्ति मे परिवृत्ति ("जहाँ अधिक अरु न्यून को लीबो दीबो होय")।

पद १०७

कवियो द्वारा श्री कृष्ण के अग-प्रत्यग के लिये जितने भी उपमान प्रयुक्त हुए हैं, गोपिया उनकी उपयुक्तता अपने ढग से बता रही है—

हे उद्धव ! अब हम यह भली-भाति समझ गई है कि विभिन्न कवियो ने नदलाल श्री कृष्ण के अग-प्रत्यग के सौन्दर्य को व्यजित करने के लिए जितने भी उपमान दिये है, ये सब पूर्णरूपेण उचित हैं। उनकी घु घराली केशराशि की उपमा भ्रमर से अत्यन्त सार्थक है, वह कुटिल मधुकर अपनी गुन-गुन गु जन करती वाणी से मालती के चारो ओर चक्कर काट-काट कर उसे अपने वश मे कर उसका मधुपान करता है किन्तु वह स्वार्थी छलिया जब मालती को पूर्ण मधुहीन जान लेता है तो उसे छोडकर अन्यत्र जाने मे तनिक भी विलम्ब नही करता। उसी प्रकार कृष्ण ने हम मालती सदृश भोली ब्रजबालाओ को अपनी मधुर वाणी से आकृष्ट कर लिया और प्रेममयी अनेक रसक्रीडाएँ करके, अपना स्वार्थसिद्ध हो जाने पर हमे छोडकर चलते बने, कैसा छलपूर्ण व्यवहार था। उनके मुख की उपमा चन्द्रमा से दी गई है, वह भी अत्यन्त उपयुक्त है। कुमुदिनी चन्द्रमा की ओर सर्वदा आशापूर्ण दृष्टि लगाये रहती है, यदि कोई उसे दूसरी और खीचे तो भी वह चन्द्रोन्मुख ही हो जाती है किन्तु वह निर्मम प्रेमी चन्द्रमा उससे प्रेम नही करता। उस प्रेम का प्रतिफल यह देता है कि स्वय 'हिमकर' होते हुए भी अन्त मे उस अनन्त अनुरागमयी प्रेमिका का हिम, पाला, डालकर सर्वनाश कर देता है (हिम पडन का कारण चन्द्रमा ही है)। उसी प्रकार कृष्ण ने हमारे से निष्ठुर व्यवहार किया है। जिस मुख चन्द्र को देखकर हम जीवन धारण करती थी उसी मुख ने अपने योग सन्देश से हमारी आशाओ पर यह तुषारापात किया है। कृष्ण के सम्पूर्ण शरीर की उपमा कवियो ने घनश्याम दी, वह भी युक्ति युक्त है। मेघ का कैसा निष्ठुर व्यवहार होता है ? उसका प्रेमी चातक रात दिन अपनी आर्त पुकार से उसका स्मरण करता है, मेघ नाम की दुहाई देते-देते उसकी वाणी भी क्षीण हो जाती है किन्तु (सूर कहते है कि) वह निर्मम, मन्दबुद्धि प्रिय उसके प्रेम का यह प्रतिदान देता है कि चातक के मुख मे एक बूँद भी जल नही गिरता यद्यपि वह जलधर है। इसी प्रकार कृष्ण के प्रेम मे हम अहर्निश उनकी नाम-रट लगाये रहती हैं किन्तु निष्ठुरता देखिये कि हमे दर्शन भी दुर्लभ है, जबकि वे हमे अपनी रूप छवि दिखा सकते है।

काव्य-सौंदर्य—१ अलकार—काव्यलिंग (जहाँ प्रस्तुत कार्य का कारण बता दिया जाय), परिकरांकुर (जहाँ विशेष अभिप्राय के साथ विशेष्य या विशेष्यो का प्रयोग) 'हेम' मे अत्यानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास एव छेकानुप्रास।

द्वितीय चरण से तुलना कीजिए—

"रस रहते-रहते रहते कलियो पर अलियों के फेरे।"

—'प्रसाद'

३ चातक और मेघ के इस प्रेम का वर्णन तुलसी ने भी पर्याप्त किया है—देखिये 'चातक-चौतीसी'।

पद १०८

गोपियाँ दीन भाव से उद्धव को अपनी असहाय अवस्था बता रही हैं—

हे उद्धव! हम कृष्ण के बिना अत्यत दीन और पूर्ण रूपेण अनाथ हैं। जिस प्रकार मधु-मक्खियो का छत्ता तोड लिये जाने पर वे निरालम्ब हो जाती है वही स्थिति हमारी है। उनके अधरामृत पान की स्मृति कैसी दुख-दायी है, हमने इस प्रीति का बन्धन शैशव से ही उनसे जोडा था। किन्तु उस मधु सदृश सचित सुखाभिलाषा को मधु तोडने वाले शिकारी के समान अक्रूर ले गया। अर्थात् कृष्ण के अक्रूर द्वारा ले जाये जाने पर हमारी समस्त सुख-कामनाएँ विनष्ट हो गईं। कृष्ण को ले जाये जाने पर हमे तन मन की सुधि कहाँ रही थी। अपने को सचेत करने के लिए जब तक हमने हथेलियो से मल कर अपनी आँखे खोली अर्थात् तनिक सी देर मे, अक्रूर कृष्ण को बहुत दूर ले जा चुके थे। जब हम उनका मार्ग अवरुद्ध करने के लिए पीछे-पीछे भागी तो अक्रूर ने रथ भगाकर धूल उडा दी जिससे वे अदृश्य हो गये। सूर कहते है कि गोपिया वर्णन करती है कि हमने उस संयोग समय मे भी सर्वदा कृपणो के समान अपनी सुख भोग कामनाओ को सचित किया किन्तु मन-वाँछित सुख उन प्रियतम से हम कभी न पा सकी (क्योकि लोकापवाद का भय था) और अब तो स्थिति ही बदल गई है। अब तो हम वियोगिनियाँ मात्र रह गई है और प्रभु ने कुब्जा के मुख से कहलवाया योगोपदेश ही हमारे भाग मे लिखा था। अथवा 'जोग' का श्लेषार्थ लेने पर अर्थ इस प्रकार भी

हो सकता है—अब समस्त सुखो का विधान ब्रह्मा ने कुब्जा के सुन्दर (व्यग्य) मुख के लिए ही कर दिया है।

विशेष—अलकार उपमा तथा छेकानुप्रास।

पद १०६

उपदेशक को उपदेश देते समय पात्र, काल, स्थान सभी बातो का ध्यान रखना चाहिए, अन्यथा उसका प्रवचन निरर्थक होता है—"नीकी हू फीकी लगै बिन औसर की बात"—इसी तथ्य को आधार कर गोपियाँ उद्धव को निर्गुणोपदेश से वर्जित करती है—

हे उद्धव ! पहले ब्रज की वियोग-व्याकुल दशा का तो कुछ विचार कर लो, तभी अपनी इस सुन्दर योग कथा का प्रवचन करना। जिस कारण आप को श्याम-सुन्दर ने यहा प्रेषित किया, उस पर भी आपने विचार किया ? वह था विरहिणी ब्रजबालाओ को कृष्ण दर्शन का आश्वासन देकर धैर्य बँधाना किन्तु तुम वियोगिनियो को और भी व्यथित करने वाली यह योग-कथा प्रसारित कर रहे हो। तनिक यह तो विचारो कि विरह, जिसका आधार प्रेम है, और अध्यात्म जिसका आधार विराग है, मे कितना भारी अन्तर है। दोनो दो ध्रुवो के सदृश है। तुम श्री कृष्ण के अनन्य सेवक बताये जाते हो फिर भी तुम कृष्ण का यह वास्तविक मन्तव्य न समझ सके। इस प्रकार योगोपदेश करके तुम वियोगाम्बुधि मे डूबती हुई गोपिकाओ को बारम्बार फेन सा पकडा रहे हो अर्थात निस्सार वस्तु दे रहे हो। इससे हम वियोग मे किस प्रकार धैर्य धारण करे ? वे अत्यन्त सुन्दर मुख छवि वाले कृष्ण हमारे मन से कैसे विस्मृत हो सकते है ? तुम्हारे निर्गुण की योग साधना एव मुक्ति के समस्त आकर्षणो को हम उनके एक गुण वशी की भुवन-मोहिनी तान पर न्यौछावर करती हैं। जिसके हृदय मे रूपनिधि कृष्ण श्यामल मेघमाला के सदृश छाये हो वह निर्गुण गुणहीन का आराधक कैसे बन सकता है। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि वह प्रेम अर्थात् प्रिय की सतत स्मृति (जो भजन ही है) निरर्थक है जिसमे प्रिय के अतिरिक्त अन्य कोई आराध्य अच्छा लगता है।

विशेष— अलंकार स्वभावोक्ति तथा रूपक।

पद ११०

उद्धव ने ब्रह्म को अन्तरवासी बताया था, (निर्गुण साधनानुसार ब्रह्म को घट-घट वासी माना जाता है) किन्तु गोपियाँ प्रियतम कृष्ण को ब्रह्म मानती है और उन्हें अपने भीतर न पाने पर उद्धव से इस प्रकार कहती है—

हे उद्धव ! तुम्हारी योग गाथा हमे किस प्रकार प्रिय लगे ? तुम उन्हें हृदयस्थ बताते हो किन्तु हम उनके वियोग मे बेचैन हो रही है। ये नेत्र अहर्निश उनके दर्शन की कामना से चारो ओर भ्रमित से देखते है । विरह-व्यथा से हमे रात्रि मे नीद तक नही आती । जो कृष्ण हमारे हृदय मे ही है तो इस विरह के असह्य सताप को हृदय से निकल शान्त क्यो नही कर देते ? इसलिए हम आपसे विनम्र अनुनय करती है कि हमे तो तुम हमारी इसी स्थिति मे रहने दो । हृदयस्थ से हमारा साक्षात्कार मत कराओ । हम तो इसी प्रकार अवधि रूपी आकाश के जल के आश्रय पर ही रह लेगी अर्थात् जिस प्रकार चातक प्रतीक्षा की अवधि बीत जाने पर जल की आशा रखता है, उसी प्रकार हम भी वियोगावधि बीत जाने पर प्रियतम कृष्ण के सयोग की आशा रखती है । यदि तुमने हमे इस निर्गुण के अथाह सागर मे डुबो दिया तो फिर खोजने पर भी हमे न पा सकोगे । सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि जिसका जो प्रिय होता है उसका निर्वाह उसी के आधार पर हो सकता है, अन्य अवलम्ब उसके लिए व्यर्थ है । ससार मे इतने सरोवर और सरिताएँ है किन्तु चातक उनका जल ग्रहण नही करता, उसका तो एक मात्र अवलम्ब स्वाति नक्षत्र का जल है ।

विशेष— १ अलकार— अत्यानुप्रास, रूपक, उदाहरण । २ तुलना कीजिए—

"जो है जाको भावता सो ताहि के पास ।"

पद १११

गोपियाँ निर्गुण का खण्डन मुख्यतया इसी आधार पर करती है कि इसका स्थान ब्रज नही अपितु अन्यत्र है । यहाँ भी अत्यत हास-परिहासमयी शैली मे इसी अधिकारी-भेद के आधार पर निर्गुण का खण्डन किया है—

हे उद्धव ! तुमने अपने इस निर्गुण का ब्रज मे बाजार लगाकर भला

प्रदर्शन किया किन्तु तुम्हारी यह गुणहीन निराधार की गठरी यहाँ किसी को भी अच्छी नही लग रही है। तुम इस योग के सौदे को यहा इस दृष्टि से ले आये कि लाभ होगा किन्तु किसी ने भी इसे यहाँ न अपनाया इसलिए इसमें तुम्हे टोटा ही रहा। निर्गुण के अतिरिक्त यहाँ अन्य सब वस्तु मँहगी है। तुम अपने इस सौदे को उस बडी नगरी मथुरा में ले जाकर ही बेचो जहाँ इसके पारखी विद्यमान है। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने निवेदन किवा कि हम तो भोली-भाली गोप-बालाएँ है, इस निर्गुण के बहुमूल्य सौदे को भला क्या जाने ? हाँ ! यदि तुम दूध और दही बेचो तो हाथ के हाथ सबको खरीद ले। यहाँ इसका कोई ग्राहक नही, यह तो हमे ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि तुम्हारे गले ही पड गया है। भाव यह है कि हम प्रेम-मग्न गोपियाँ इस निर्गुण का शुष्क व्यवहार नही करती, हाँ दूध और दही जैसी स्नेह-युक्त वस्तुओ के व्यापार मे हम दक्ष है।

पद ११२.

उद्धव निर्गुण का प्रचार करते हुए सगुण की भक्ति को गोपियो से छुटाना चाहते है किन्तु प्रेमरूप गोपिकाएँ कृष्ण के साथ न जाने कितनी रसयुक्त क्रीडाएँ कर चुकी है जिनको विस्मृत करना उनके लिए असम्भव है। उन्ही रसमयी प्रेम-क्रीडाओ का रहस्योद्घाटन गोपी कर रही है—

हे उद्धव ! आज हम तुमसे एक रहस्यपूर्ण चर्चा करती है तुम इसका प्रसग अन्य किसी के सम्मुख मत चला देना। इस गुप्त रहस्य की चर्चा हमारे और आपके बीच ही रहनी चाहिए कोई तृतीय पक्ष इसे न जान जाय—यही हमारी आपसे विनम्र प्रार्थना है जो स्वीकृत हो जानी चाहिए। एक अवसर पर वृन्दावन मे खेलते खेलते मेरे पैर मे कटक लग गया तो प्रियतम ब्रजचन्द्र ने काँटे से ही मेरे पैर का काँटा रुचिपूर्वक निकाल दिया। इसी प्रकार एक दिन वृन्दावन मे विहार करते समय मैंने यह कहा कि 'भूख लग रही है'। प्रिय मेरे इस कष्ट को किस प्रकार देख सकते थे ? वृक्ष पर पक्के फल देखकर वे तत्क्षण उस पर चढ गये और उन फलो से मेरी भूख शान्त की। ये सब प्रेम-क्रीडाएं, जब वे गोकुल मे रहते थे, चला करती थी। (सूर कहते है) वे सब प्रेम-क्रीड़ाएं जो उन्होने ब्रजभूमि मे की थी

आज उन्हे विस्मृत हो गई है—इसीलिए वे यहाँ आकर हमे दर्शन तक नही देते ।

विशेष—स्मृति सचारी का अत्यत स्वाभाविक वर्णन है ।

पद ११३

गोपियाँ उद्धव से कहती है—

हे भ्रमर ! इस योग की चर्चा को बन्द कर दे । अब प्रियतम श्रीकृष्ण की सुन्दर कथाएँ कह कह कर इस वियोग-आतप्त शरीर को शीतलता पहुँचा । उस गुणहीन की चर्चा सुनकर ब्रजबालाएँ उकता जाती है । भला किसी ने विशाल नदी को कागज की नौका के सहारे पार करते देखा है ? तात्पर्य यह है कि इस विशाल ससार-समुद्र मे निर्गुण कागज की नौका के समान सामर्थ्य-हीन है । हम अपने वस्त्र और शरीर की सामर्थ्यानुसार व्यवहार करती है, उतने ही पाँव फैलाती है जितनी लम्बी 'सौर' है । सूर वर्णन करते हैं कि गोपियो ने कहा कि उस सगुण अर्थात् लीलामय के अभाव मे क्षण भर भी इस प्रकार बीतता है जिस प्रकार एक कल्प ।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास, सभगपद यमक, निदर्शना, एव लोकोक्ति ।

पद ११४

गोपियाँ उद्धव के निर्गुण का खण्डन करती कहती है—

उद्धव ! आप अत्यत चतुर और बुद्धिमान् है । आपको तो यह ज्ञात होना ही चाहिए कि जो पहले से ही श्रीकृष्ण के प्रेम-मार्ग पर अग्रसर हो चुकी हैं, वे दूसरा पथ ग्रहण नही कर सकतीं, भला श्याम रग पर और कोई रग किस प्रकार चढ सकता है जो वस्तु किसी मान्य के दृष्टिकोण से उचित हो, यह आवश्यक नही कि सब उसी के मत को ग्रहण करे । ब्रह्म के सूर्य और चन्द्र दो समान ज्योति वाले नेत्र वेदादि धर्मग्रथो मे बताये गये है किन्तु प्रेमी चकोर ने उन दोनो मे भी अन्तर बना लिया । चन्द्रमा उसका प्रिय है और सूर्य शत्रु । इसी प्रकार जो योग आपको और श्रीकृष्ण चन्द्र को रुचिकर लग रहा है, यह आवश्यक नही कि हम भी उसी को अपनावे । हे महाराज ! आप तो ज्ञान के पूर्ण अवतार हो किन्तु हमे तुम इस प्रेमयुक्त विरह मे ही

निमग्न रहने दो। उद्धव यह तो अपने अपने प्रेम की रीति है। मेडक और मछली दोनो का ही जीवनाधार जल है किन्तु मेडक उससे अलग होकर भी अन्य आश्रय ग्रहण कर, वायु भक्षण द्वारा जीवित रह लेता है। दूसरी ओर, मछलियाँ उससे वियुक्त होते ही प्राण त्याग देती है। सूर कहते है कि गोपियाँ यही कहती है कि हमारे ये भ्रमर समान नेत्र उनकी मुख-कमल छवि का किस दिन मधुपान करके तृप्त होगे ? हमारी यह प्रतिज्ञा है कि हम दूसरे आराध्य की वस्तु योग का स्पर्श तक भी नही कर सकती। हम तो कृष्ण के अनन्य अनुराग मे रगी है।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास, रूपक, श्लेष।

पद ११५

गोपियाँ निर्गुण के खण्डन मे मुख्य तर्क स्थान भेद, अवसर भेद एव अधिकारी भेद से सम्बधित प्रस्तुत करती है। यहाँ भी वे अवसर भेद के आधार पर निर्गुण की योग साधना का खण्डन करती हुई उद्धव से कहती हैं—

उद्धव ! तनिक उधर वन मे तो ध्यान दो, कोकिल कैसी पचम की स्वर-लहरी छेड रही है। इस बसत के सुहावने समय मे भी तुम हमको मुखपर विभूति लगाने का उपदेश देते हो। इस ऋतु मे तो मुख पर अन्य अगराग लगाये जाते है, भस्म नही। हम तो सब कुछ त्याग कर, पत्थर पर समाधिस्थ हो अवश्य ही सिंगी का स्वरघोष करती किन्तु क्या करें ऋतुराज के इस आनददायक समय में नित्य प्रति पपीहे की स्वर-धुनि के माध्यम से कामदेव अपने बाणो से हमें घायल करता है। हम तो प्रेम बावरी सर्वथा भोली, अहीर-बालाएँ हैं, योग तो आप ज्ञानी-नारियो (कुब्जा जैसी) को सिखाइये। तुम कृष्ण को इस निर्गुण के रूप मे बना बना कर हमारे सम्मुख कह रहे हो ? हम पर यह मिथ्या-प्रदर्शन का जादू नहीं चल सकता। भला कोई मामी के सम्मुख नानी के घर को बढा-चढा कर कैसे कह सकता है। वह तो उस घर के समस्त अन्तर्बाह्य से परिचित रहती है। इस योग के पचडे मे क्या रस ? हमें तो श्रीकृष्ण की सुन्दर छवि द्वारा गाये गये गान ही रुचिकर हैं। सूर कहते हैं कि

गोपियो ने कहा कि आपके योग की मुक्ति भला वंशी की माधुर्यमयी स्वर-लहरी की तुलना कैसे कर सकती है।

विशेष—१. अलकार—अत्यानुप्रास, प्रतीप, लोकोक्ति। २. सूर की गोपियाँ 'सायुज्य' नहीं 'सामीप्य' की अभिलाषी हैं—इसकी पुष्टि प्रस्तुत पद मे होती है।

पद ११६

गोपियाँ विभिन्न उदाहरणो द्वारा अपने लिए योग की अग्राह्यता सिद्ध करती कहती है—

हे उद्धव! तुम हमे व्यर्थ निर्गुण का ज्ञान समझा रहे हो क्योकि हम तो अल्पमति और भोली-भाली है, ज्ञानमार्ग की यह ऊहापोह हम न समझ सकेंगी। योग की इन प्रक्रियाओ को हृदयगम करने वाली नगर की चतुर नारियाँ ही होगी। हे उद्धव! हम तुम से पूछती है कि क्या किसी ने स्वर्ण मृग भी देखा है, यदि झूठ सच के लिए भ्रान्तिवश यह दिखाई भी दे गया हो क्या किसी ने बाँधकर उसे अपने अधीन किया है? जल को मथकर किसी ने मक्खन से अपनी मटकी भरी है? दीवार के बिना भी कोई चित्र बना सकता है? चित्र के निर्माण के लिए आधार की तो आवश्यकता है ही। आज तक आकाश को कौन अपनी झोली मे बाँध सका है? अर्थात् उसकी विशालता का माप आज तक किसी न नही किया। भूसे जैसी निस्सार वस्तु को फटक कर भी कभी किसी ने उससे अनाज के दाने प्राप्त किये है? हमको तुम्हारा यह योग सिखाने का कार्य भी उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार उपर्युक्त कथित असम्भव बाते। हम तो भोली-भाली असहाय नारियाँ है, योग के पचडे मे पडना हमारे वश की बात कहाँ? सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि हमारे नेत्रो का स्नेह श्रीकृष्ण के चन्द्र तुल्य सुन्दर मुख से उसी प्रकार हो गया है जिस प्रकार चकोरी का चन्द्रमा से। भाव यह है कि हमारे नेत्र कृष्ण की सौन्दर्य-छवि को निहारने के लिए लालायित है।

विशेष— १ अलकार— छेकानुप्रास, निदर्शना, रूपक,। २ सूर की गोपियो मे भी नद की गोपियो जैसा तर्क कही कही विद्यमान है।

पद ११७.

गोपियाँ अपनी प्रीति की अनन्यता बताते हुए कहती है—

उद्धव ! तुम हमे श्रीकृष्ण के बिना जीवन धारण को कहते हो ! यह तो नितान्त असम्भव है। प्रथम तो कृष्ण ने हमे अपने वियोग से अनाथ ही सा बना दिया, दूसरे योग के इस दुसह उपदेश को विरह मे किस प्रकार सहा जा सकता है। आज कृष्ण के बिना हमारी वही स्थिति हो गई है जो उजडे हुए ग्राम की देवमूर्ति की हो जाती है, जिसे न कोई सम्मान देता है और न कोई उसकी अर्चना करता है। इसी प्रकार उद्धव ! हम गोपिकाएँ प्रियतम कृष्ण के बिना जिस व्यथा को अनुभव कर रही है, उसे हम ही जान सकती है। यद्यपि विरह मे हमारे शरीर कृशकाय हो रहे है तो हृदय मे नदनदन से मिलन की आशा को हम पल्लवित किये हुए है। (सूर कहते है) प्रियतम कृष्ण की मुख-छवि के दर्शनाभाव मे हमारे नेत्र प्यासे मरे जाते है।

विशेष—अलकार—वृत्त्यनुप्रास एव उपमा।

पद ११८

अधिकारी भेद के आधार पर ही गोपिया यहा भी निर्गुण का खण्डन करती है—

हे उद्धव ! निर्गुण की योग साधना का अधिकारी कौन है, क्या यह ज्ञान आपके लिए नही। यदि यह योग का सौदा यहाँ न बिका तो इसे अन्यत्र ले जाओ ! आप व्यर्थ मे चित्त मे दुखी क्यो हो रहे है ? यह तो समस्त वेद और उपनिषदो की घोषणा है कि योग का विधान ज्ञानवान् सयमी महापुरुषो के लिए ही है। हम निम्न श्रेणी की अहीर युवतिया जो ब्रज जैसे निकृष्ट स्थान मे रहती है, इस योग के कठोर विधान को नही निभा सकती। उद्धव ! तुम व्यर्थ मे ही अपना प्रवचन सुना रहे हो यहाँ इसका श्रोता कौन है ? आप किससे कह रहे है ? और कौन इस कथा के मर्म को हृदगयम कर सकता है ? यहा तो सभी ऋजु प्रेम-मार्ग के पथिक है। (सूर वर्णन करते है) यदि हम आपके योग को सुनती और समझती भी तो अब

तो यह सर्वथा असम्भव है क्योकि हमारा मन श्रीकृष्ण के साथ ही चला गया है, केवल शरीर की यह निर्जीव केचुली सी यहा रह गई है जिसमे किसी भी प्रकार की चेतनता है ही नही। अन्यथा अवश्य ही हम आपके योग को अपनाने का प्रयत्न करती ।

विशेष— अलकार— अत्यानुप्रास एव उपमा ।

पद ११६

गोपिया निर्गुण को अपनाने की असमर्थता मे अपने मन की विवशता का कथन करती कहती है—

हे उद्धव ! जो निर्गुण की योग साधना का उपदेश आपने हमे सुनाया है, वह हमने अपनी इच्छा के प्रतिकूल, अत्यत कठिनाई पूर्वक इस मन को समझाया। अनेक प्रयत्न करके उस मन को बलपूर्वक आपके बताये हुए सन्मार्ग तक लाये किन्तु वह भी उसी प्रकार कृष्ण चन्द्र जी पर आ गया जिस प्रकार जहाज का भटकता हुआ पछी इधर उधर चक्कर काटकर जहाज पर ही आ जाता है। आप अपने योग मार्ग को अत्यत हितकारी बताते हो किन्तु हमे तो वही बहुत अहितकर लगा। भला सरोवर और नदी के जल को समिधा मे होम करने से क्या अग्नि तृप्ति पा सकेगी, उसकी तृप्ति के लिए तो घृत समिधा ही आवश्यक है। भाव यह है कि हमारी तृप्ति तुम्हारे इस निर्गुण से नही हो सकती, हमे तो हमारी भावनाओ के आधार सगुण स्वरूप श्री कृष्ण जी ही चाहिएँ। इसलिए अब आप उनके दर्शन का उपाय सुझाइये जिससे हमारे प्राणो मे उत्साह का सचार हो। सूर कहते है कि गोपिकाओ ने कहा कि आप एक बार हमे प्रियतम कृष्ण के दर्शन अवश्य करा दे, चाहे फिर अपना मनोवाछित योग का उपदेश देते रहना।

विशेष—अलकार— अत्यानुप्रास, उपमा एव उदाहरण ।

पद १२०

गोपियाँ उद्धव के योग की खिल्ली उडाती कहती है—

हे उद्धव ! तुम अपने इस बहुमूल्य योग को कही भूल मे छोड मत जाना। देखो सचेत होकर इसे गाँठ मे बाध लो जिससे यह सुरक्षित रहे। यदि कही

गाठ खुलकर मार्ग मे यह गिर गया तो फिर पश्चात्ताप करोगे। ऐसी विलक्षण वस्तु का महत्व आपके अतिरिक्त और कोई नही समझ पा रहा है। ब्रजवासियो के लिए तो यह पूर्ण निष्प्रयोजनीय है, यह तो केवल आप जैसे ज्ञानियो के उपयोग की वस्तु है। श्री कृष्ण महाराज ने दयार्द्र होकर जो बहुमूल्य सामग्री हमे प्रेषित की थी, उसे हम सादर आपको भेट करती है। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि यह तो हमारे लिए विषपूर्ण नारियल के सदृश है, इसे हमारा दूर से ही दण्डवत् है अथवा हम तो इसे कुब्जा के कूबड के समान पूज्य मानकर (व्यग्य ध्वनि) इसकी वन्दना करती है।

विशेष— अलकार—उपमा एव स्वभावोक्ति।

पद १२१

उद्धव गोपियो को प्रेममार्ग की कठिनता बताकर निर्गुण की योगसाधना मे प्रवृत्त करना चाहते है किन्तु गोपियाँ उन कठिनाइयो के होते हुए भी प्रेम-मार्ग को श्रेय मानती है। वे विभिन्न उदाहरणो द्वारा अपने मत की पुष्टि करती है—

उद्धव! प्रेम मे मरण की चिन्ता क्या, प्रेमी वेदना से घबराता नही है—

> **"यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहि।**
> **सीस उतारै भुँई धरै, तब पैठे घर माहि॥"**
>
> —कबीर

प्रेम के ही कारण शलभ दीप-शिखा मे पड अपने अगो को जला लेता है किन्तु वह उससे विमुख नही होता। प्रीति सबन्ध के कारण कबूतर कपोती को खोजता हुआ आकाश मे ऊँचा चढ जाता है, चाहे फिर गिरे भी किन्तु उसे अपने शरीर को सम्भालने की सुधि नही होती। प्रीति के ही कारण भ्रमर केतकी के कुसुम की भाडी मे घुस जाता है और उसके शूलो की नोको को अपने शरीर पर सहन करता है। यदि प्रीति देखना चाहते हो तो दूध और जल को देखो जो एक रस होकर अपने आत्म-भाव—दूध दुग्ध को और जल जल को—जला डालते है। मृग की मधुर स्वर लहरी मे आसक्ति देखी है? जो उस स्वर-लहरी के आनन्द को प्राप्त करने के लिए आखेटक के

बाणो का शिकार होकर मर जाता है। माँ और पुत्र का वात्सल्य-प्रेम कैसा सुखद है कि वह उसके लिए अपना सर्वस्व त्याग कर देती है। सूर वर्णन करते हैं कि गोपियो ने कहा कि इसलिए हम प्रेम-मार्ग की व्यथाओ से पथ-विचलित नही हो सकती। श्री कृष्ण से हमारी प्रीति का बधन किसी प्रकार से भी छूटना असम्भव है।

विशेष— १. अलकार—उदाहरणमाला, अ त्यानुप्रास, छेकानुप्रास, देहली-दीपक (जहाँ उपमेय तथा उपमान दोनो का एक ही धर्मवाची क्रिया से सम्बध स्थापित किया जाता है)।

२. प्रस्तुत पद मे प्रेम की अनन्यता के लिए प्रयुक्त लगभग समस्त प्रसिद्ध कवि-समय आ गये है। ३ तुलना कीजिए—

"आशिकी है बंद आखे कर लुट जाने का नाम।"

पद १२२

जिस प्रकार गोपियो का कृष्ण मे अनुराग है, उसी प्रकार कृष्ण की प्रीति का भी उन्हे अटल विश्वास है— यह दूसरी बात है कि बीच वीच मे उन्होने उस भावना से इतर कुछ मनोभाव अभिव्यक्त किये है, किन्तु अन्तत है वह भी प्रिय के प्रति आत्म निवेदन ही। यहा गोपिकाएँ उद्धव के कृष्ण-दूत होने मे अविश्वास प्रकट करती कहती है।

हे उद्धव! अपनी इस निर्गुण की कथा को बन्द करो, हम आपके छल-पूर्ण व्यवहार से परिचित है। तुम्हे श्री कृष्ण ने योग का सदेश देकर अन्यत्र भेजा होगा और तुम बीच मे ही मार्ग भूल कर आ गये हो। तुम भोले, निरीह ब्रजवासियो से योग-चर्चा कर रहे हो, यह भी नही जानते कि किस से कैसी बाते करना उपयुक्त है। तुम तो अपनी तरह के एक ही मूर्ख हो जो इतना ज्ञानोपदेश करने पर भी स्वय व्यवहार-ज्ञान तक नहीं रखते। जो आपने हमसे निर्गुण-चर्चा की तनिक बुद्धिमता पूर्वक उस पर अपने मन मे तो विचार करो। कहा तो योग की सर्वथा नग्न दशा और कहा लज्जाशीला युवतियाँ। तुम्हारी बुद्धि को हो क्या गया? सूर कहते है कि गोपियो ने उद्धव को और भी बनाते कहा कि अच्छा तुम सत्य-सत्य अपनी सौगध खा कर एक बात हमे बता दो। जब श्री कृष्ण ने आपको यहा भेजा था तो वे मुस्कराये तो नही थे? भाव यह

है कि यदि वे उस समय मुस्कराये होगे तो उनका उद्देश्य हमे योगोपदेश देना नही अपितु आपको ही मूर्ख बनाना रहा होगा ।

काव्य-सौन्दर्य—१ अलकार—स्वभावोक्ति । २ सूर काव्य की मनोवैज्ञानिकता तथा वाग्वैदग्ध्य यहाँ देखते ही बनती है ।

पद १२३

गोपियाँ उद्धव को बनाती हुई कहती है—

हे उद्धव ! सच सच बताओ क्या आप वास्तव मे कृष्ण के मित्र ही हो ? तुम्हारी उखडी-उखडी बातो से तो लगता है कि तुम उनके मित्र वित्र नही हो । अन्यत्र कही जा रहे होगे, मार्ग के बीच मे से ही उनके मित्र का झूठा वेष बनाकर आ गये हो । जैसी जैसी ऊटपटाँग बाते तुमने यहा कही है यदि तुम अन्य किसी स्थान पर कहते तो तुम्हे ऐसा दण्ड मिलता कि अपनी कही बातो पर पश्चात्ताप करते । यदि तुम किसी और से इस प्रकार पति को छोडकर अन्याश्रय ग्रहण कर लेने की बात कहते तो बहुत मार खानी पडती । अब भी कुशलता इसी मे है कि इसी क्षण मथुरा को लौट जाओ, कहा से यह योग का पचडा उठा लाये ? सूर कहते है कि गोपियो की यह अनन्य अनुरागमयी वाणी सुनकर उद्धव की बोलती बन्द हो गई, वह हतप्रभ सा हो कर रह गया ।

विशेष—अलकार स्वभावोक्ति एव वक्रोक्ति ।

पद १२४

गोपी वचन उद्धव प्रति—

हे उद्धव ! आप ब्रज की इस विरहाकुल दशा को देख कर मथुरा जा रहे हो । अत आपसे हमारा यह विनम्र अनुनय है कि प्रियतम कृष्ण से इस विरह के द्वारा दिये गये सताप को यथावत् कह देना । उनसे आप कहना कि वियोग के कारण गोकुलवासियो को नेत्रो से कुछ नही दिखाई देता एव कानो से कुछ सुनाई भी नही देता है । ब्रजवल्लभ के बिना सब अश्रुओ की बाढ मे डूबते जा रहे है और सामान्य वार्तालाप भी श्रवणो को असह्य लगता है । यदि आपको आना है तो शीघ्र आ जाइये जिससे हमारे प्राण जो अब वियोग मे निकलने को तत्पर है, पुन. शरीर मे प्रवेश कर सके ।

अन्यथा सूर के स्वामी अर्थात् कृष्ण ! विलम्ब से आपके मिलने का कोई लाभ नही रहेगा ("का वर्षा जब कृषि सुखाने") क्योकि फिर हम जीवित न रह सकेगी।

विशेष —१ अलकार अत्युक्ति। २ इसी प्रकार पद्माकर की गोपियो ने उद्धव से निवेदन किया है—

"**ऊधो यह ऊधम जताई दीजौ मोहन को**
ब्रज को सुवासो भयो अगिन अवासो है।"

पद १२५

गोपियाँ उद्धव से कहती है—

हे उद्धव ! तुम शीघ्र ही मथुरा को चले जाओ। तुम अपने इस बहु-मूल्य योग को सहेजकर रख लो और मथुरा ले जाकर ही इसे बेचना जिससे कुछ लाभ होगा। हम इसे इसलिए नही अपना सकती कि हम तो विरहिणी युवतियाँ है, हमारा मार्ग प्रेम का मार्ग है, हमारा तो एकमात्र आधार श्री कृष्ण जी ही है। इस धन को तो आपको वही बेचना चाहिए जहा मूल पूँजी भी निकल आये और तुम कुछ लाभ प्राप्त कर सको। यदि यह योग का सौदा यहाँ ब्रज मे नही बिक सका है तो इसे नागरी नारियो मे ले जाकर बेच देना। अर्थात् निर्गुण के शुष्क स्वरूप को वही ग्रहण कर सकती है, हम तो स्नेह-युक्त सगुण स्वरूप की आराधक है। वे चतुर नगर की स्त्रिया इसे एक दम सुनते ही ग्रहण कर लेगी।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास ।

पद १२६

उद्धव से गोपिकाएँ कहती है—

उद्धव ! तुम्हारे इस योगोपदेश का कुछ-कुछ रहस्य अब हमारी समझ मे आया है। आप जो हमारे लिए योग का यह बहुमूल्य सौदा लाये हो यह आपने भला ही किया। व्यग्य ध्वनि यह है कि यह आपने अच्छा नही किया हम तो पहले से ही कृष्ण के वियोग मे जल रही थी, दूसरे आपके इस योग सदेश को सुनकर हम और भी भयभीत हो गई। अब तुम महाराज यहा से सादर प्रयाण करो, जले पर नमक मत छिडको, तुम्हे तो देखते ही भय

लगता है। नदनन्दन ने तो तुम्हे यह हमारे योग्य सदेश-पत्रिका इसीलिए दी थी कि तुम अत्यन्त चतुर और बुद्धिमान हो किन्तु तुम यहाँ जो व्यवहार कर रहे हो इससे उनकी आशा निराशा मे परिणत हो रही है। सूर कहते है कि गोपिया योग के सन्देश को सुनकर भय से दहल गई।

विशेष — लोकोक्ति, अन्त्यानुप्रास एवं 'जोग-पाती' मे श्लेष अलकार है।

पद १२७

उद्धव प्रति गोपी कथन—

हे उद्धव! हमने तुम्हारी योग-वाणी सुन ली! धन्य हो तुम! कृष्ण की कुशलता क्या लाये, तुमने यहा घर घर मे गडबड मचा दी। दूसरी सखी कहती है, हे सखि! तु इसे बकने भी दे, यह इस योग की चर्चा करके हमारी क्या हानि कर सकेगा। स्वय ही उसका कथन राख के समान उड जायगा। हमने तो इन्हे आते ही पहचान लिया था कि ये किस प्रकार के कपटपूर्ण आचरण वाले है। जिनकी आलोचना के विषय मे एक भी शब्द कहने मे सकोच का अनुभव होता था ये तो बडे ही अमूल्य गुण वाले निकले अर्थात् बडे निकम्मे निकले। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि हम इनकी लच्छेदार बातो की बकवाद से परिचित है।

विशेष—अलकार—अन्त्यानुप्रास।

पद १२८

गोपियाँ उद्धव को कृष्ण मे अनन्यता बताती कहती है—

उद्धव! तुम इस प्रकार से योग की बाते मत कहे जाओ। जिस प्रकार सन्निपात के रोगी की बक छूट जाती है और वह ऊट-पटॉग जो मन मे आता है, बकता रहता है, वही दशा आपकी है। तुम निर्गुण को हमारे विरह का उपचार बताते हो किन्तु पहले अपना तो उपचार कर लो तभी औरो को शिक्षा देना। यदि तुम मेरी बात मानो तो स्थिर होकर अपना कोई घर क्यो नही बना लेते? अच्छा हम भी तुम्हारे कहने से कृष्ण को छोड योग अपना लेगी, किन्तु भ्रमर! इतना तो हमे कर दिखाओ कि तुम श्री कृष्ण के चरण कमलो का रस त्यागकर अन्यत्र किसी ग्राम मे निवास करने लगो। सूर

कहते है कि गोपियो ने कहा कि यदि तुम यह कर दोगे तो हम भी क्षण भर मे ही श्री कृष्ण की प्रीति का साथ छोड देगी।

पद १२९

गोपियाँ अधिकारी भेद के आधार पर निर्गुण का खण्डन करती है -

उद्धव ! आप हमे वस्तुत ज्ञानी ही दिखाई पडे। आप स्त्रियो के लिए योगोपदेश लाये है; आपकी बुद्धिमत्ता का पूर्ण दिवाला तो निकल चुका। तुम ज्ञान-ज्ञान की दुहाई देते हो, किन्तु वास्तविक ज्ञान क्या है इसका तुम्हे कुछ पता नही। जिसका रहस्य वेदादि धर्मग्रथ भी न पा सके उस ब्रह्म के विशाल ज्ञान को तुम नेत्र मूद कर त्राटक के फाटक मे देखने का असफल प्रयास करने का उपदेश देते हो यह कहाँ की बुद्धिमत्ता है। (सूर कहते है) उस ज्ञान की प्राप्ति के लिए मन को वश मे करके, सूर्य की ओर मुँह खडे करके प्राणायाम करना पडता है। इस प्रकार योग साधना मे मन का विशेष महत्त्व है किन्तु बेचारी गोपियाँ क्या करे कि उनका मन ही उनके हाथ मे न रहा और श्री कृष्ण के साथ चला गया।

पद १३०

उद्धव से गोपियाँ योग को अपनाने मे अपनी विवशता यही बताती है कि उनका मन उनके पास नही है—

हे उद्धव ! मन पर हमारा अधिकार नही रह गया है। कृष्ण उसे अपने साथ उसी दिन ले गये थे जिस दिन उन्होने रथ द्वारा मथुरा के लिए प्रयाण किया। अन्यथा हम कभी भी आपके योग की उपेक्षा न करती क्योकि आप उसे ब्रज मे अत्यन्त मनोयोगपूर्वक लाये थे। आप से क्या कहे। अपराध तो श्रीकृष्ण का है जिन्होने मन पर अधिकार करके योग का सदेश हमारे लिए प्रेषित किया। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि हम तुम्हारी करोडो शपथ खा कर कहती है कि यदि आज भी हमे हमारा मन मिल जाय अर्थात् उसके आलम्बन श्री कृष्ण मिल जाय तो तुम जिस प्रकार कहोगे, उसी प्रकार आचरण करेगी। यदि कोई हमारे मन को वापिस ला सकता है तो तुम्ही एकमात्र ऐसे हो (तुमते होय तो होय)।

विशेष—अलकार—काव्यलिग, परिवृत्ति।

पद १३१.

योग का खण्डन करते हुए गोपिकाएँ उद्धव से कहती हैं—

हे उद्धव ! हम आपके इस योगोपदेश को सुन कर इसी निष्कर्ष पर पहुँची है कि योग अत्यन्त कठिन है। आपकी इस बात को सुनकर कि यह पथ बहुत सुगम और सरल है, हमे आश्चर्य हो रहा है। जिसकी कोई रूप रेखा नही है, न जिसका कोई वर्ण है उसी निर्गुण की साधना के लिए हमे शिक्षा देते हो। हम तो क्या उस अरूप ज्योति के दर्शन कर पायेगी, आप अपनी बात तो बताओ कि क्या वैसे अरूप स्वरूप के दर्शन आपने भी किए हैं। हमारे सगुण स्वरूप श्री कृष्ण के सम्मुख तो वह सर्वथा हेय है। अच्छा बताओ कि क्या कभी आपका निर्गुण हमारे श्याम की भाति वशी की स्वर लहरी छेडता है एव वह वन-वन गौएँ चराता है। अपने विशाल नेत्रो से भौहे तिरछी कर क्या आपको कभी उन्होने प्रेम-पूर्ण दृष्टि से निहारा है। आपका वह निर्गुण अपने सुन्दर शरीर पर पीताम्बर धारण करके त्रिभगी मुद्रा मे नृत्य के लिए भी कभी प्रस्तुत होता है। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि जिस प्रकार सगुण अपनी लीलाओ से हमे विविध सुख प्रदान करता है, उस प्रकार आपका निर्गुण यह आनद हमे प्रदान नही कर सकता।

पद १३२.

अधिकारी-भेद के आधार पर गोपियाँ निर्गुण का खण्डन करती हैं—

हे उद्धव ! आप हमे हमारे योग्य ही शिक्षा दे। यह तुम्हारा उपदेश जो अग्नि के समान दाहक है हम किस प्रकार ग्रहण करें ? अच्छा आप ही बताओ कि इतनी सारी ब्रजबालाओ मे आपको ऐसी कौन सी दिखाई दी जो आपके इस उपदेश को अपना सके ? यह योगमार्ग तो उनके लिए ही श्रेय है जो योगी और विरक्त है, जो माया के बधनो से सर्वथा असम्पृक्त है। भला जिन्होने सर्वदा से ही अपने शरीर पर कपूर और चन्दन चर्चित अग राग लगाया हो वे इस योग की शुष्क विभूति को शरीर पर क्यो लपेटेगी। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि यदि अधी आँख मे काजल लगा ले तो वह उसको शोभा नही दे सकता। भाव यह है कि यदि

हम योग मार्गी साधना मे प्रवृत्त हो जांय तो वह हमे शोभा नही दे सकता।

विशेष—अलंकार—निदर्शना।

पद १३३

उद्धव से गोपियाँ निर्गुण का खण्डन अधिकारी भेद के आधार पर करती कहती है—

उद्धव ! तुम ऐसी अटपटी बातें क्यो करते हो। आप युवतियो को योग का उपदेश देने आये हो यह तो सर्वथा असगत एवं नीति-विरुद्ध है। जिस प्रकार कोई गायो को हल मे जोतने लगे एव बैल से दूध लेने का प्रयत्न करने लगे ऐसे ही योग का उपदेश हमारे लिए उलटा अर्थात् अनीतिपूर्ण है। चक्रवाक नामक पक्षी चन्द्रमा से कैसे प्रेम कर सकता है क्योकि वह तो सूर्य का ही प्रेमी है और दूसरी ओर चकोर सूर्य से प्रीति सम्बन्ध नही जोड़ सकता क्योकि वह तो चन्द्रमा का प्रेमी है। इसी प्रकार हम योग को नही अपना सकती क्योकि हमारे तो एकमात्र आराध्य श्री कृष्ण चन्द्र है। जो पत्थर जल मे तैर जाय और लकडी तैरने के स्थान मे डूब जाय तो हम आपकी योग-शिक्षा को स्त्री-जाति के लिए नीतिपूर्ण मान लेगी। सूर वर्णन करते है कि गोपियो के मन को तो नदलाल के अग-प्रत्यग के सौन्दर्य ने जीत रखा है।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास।

पद १३४

गोपियाँ यहाँ भी निर्गुण का खण्डन अधिकारी भेद के आधार पर करती है—

हे उद्धव ! पहले तुम अबलाओ की सीमा और सामर्थ्य का विचार कर लो, इसके बाद यह अपनी जोग की गठरी हमारे सामने खोलना अर्थात् तब हमे योग का यह मार्ग ग्रहण करने के लिए कहना। हे उद्धव ! तुम्हारे इस योग और हमारे व्यवहार मे कितना व्यवधान है—इसका भी विचार तनिक करो। जिन केशो का नदनन्दन ने अपने हाथ से तेल आदि से सिंचन करके शृंगार किया, उन्ही सुन्दर सुचिक्कण केशो को आप विभूति लग-

वाकर जटा बनाने का उपदेश देते हो ? जिस-मुख पर कस्तूरी और चन्दन चर्चित अगरागो का लेपन होता था और , जिसे पल-पल मे धो-धो कर सुन्दर रखने का प्रयास किया जाता था, उसी सुन्दर मुख पर तुम राख मलने को कह रहे हो ! यह हमे किस प्रकार रुचिकर लगेगा ? सूर वर्णन करते हैं कि गोपियो ने कहा कि जिन सुन्दर नेत्रो मे काजल लगाकर हम कृष्ण के शीतलकारी सुन्दर मुख की ओर देखकर तृप्ति पाती थी उन्ही नेत्रो को तुम ज्ञान का सूर्य दिखाया चाहते हो इस बात को सुन-सुनकर उनमे खडक अर्थात् वेदना हो रही है ।

विशेष—१ अलकार—वृत्त्यनुप्रास ।

२ 'रत्नाकर' से तुलना कीजिए—

"चोप करि चन्दन चढायौ जिन अंगनिपै
तिनपै बजाइ तूरि धूरि दरिबौ कहौ ।
रस रतनाकर स-नेह निखार्‌यौ जाहि
ता कच कौं हाय जटा-जूट बरिबौ कहौ ।
चद अरविन्द लौं सराह्यौ ब्रजचन्द जाहि
ता मुख कौं काकचंचवत करिबौ कहौ ।
छेदि-छेदि छाती छलनी क बैन बाननि सौं
तामै पुनि ताइ धीर-नीर धरिबौ कहौ ।"

—"उद्धव-शतक"

पद १३५.

गोपिया उद्धव से श्री कृष्ण को मिलाने की अत्यन्त आकुल प्रार्थना करती हैं—

हे उद्धव ! हमे आप ज्ञानान्जन प्रदान करने का कष्ट मत करो, हमे तो इन नेत्रो का अजन अर्थात् कृष्ण का दर्शन प्रदान कराओ । हमे आप श्याम रंग का काजल अर्थात् कृष्ण का दर्शन करा दो जिससे हमारा टूटा हुआ प्रेम् पुन जुड सके । हे भ्रमर ! (परोक्षत उद्धव) हम कृष्ण के वियोग मे अहर्निश व्यथित रहती है जिससे हमें शरीर और गृह की भी चिन्ता नही रहती । जिस प्रकार जल से विलग होकर मछली तडपती है उसी प्रकार हम

भी कृष्ण से वियुक्त होकर वियोग वेदना से व्यथित है। इस विपरीत परि-स्थिति के होते हुए भी हमने कृष्ण के प्रेम को हृदय मे इस प्रकार सहेज कर गाढ बाँध रखा है जिस प्रकार कपूर को सुरक्षित रखने के लिए खड़िया मे युक्त डिबिया मे रखते है। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि हमारी इस असहनीय वियोग-विकलावस्था मे कृष्ण से मिलन कराकर ससार मे परोपकार का यश क्यो नही लेते। अर्थात् आपको कृष्ण से मिलन का उपाय हमे बताना चाहिए।

विशेष — अलकार—छेकानुप्रास, अत्यानुप्रास, उपमा एव वक्रोक्ति।

पद १३६

गोपियाँ प्रारम्भ मे तो उद्धव को बनाती है किन्तु कुब्जा के प्रति असूया भाव जाग्रत् होने पर वे कृष्ण पर व्यग्य करती है—

हे उद्धव ! आपने यहाँ पधार कर बड़ा उपकार किया। आपने इस असीम विरह-वेदना मे योग की ऊटपटाँग चर्चा चलाकर ब्रजवासियो का अच्छा मनोरजन किया। अब हमारे लिए वृन्दावन का सुख निष्प्रयोजन है एव प्रात काल मे दही और चावल का कलेऊ करने मे अब कोई रस नही। अब कृष्ण कुब्जा के प्रेम-पाश मे आबद्ध है जिससे दोनो एक ही स्वर मे बोलते है। अर्थात् कुब्जा और कृष्ण दोनो का मन्तव्य हमे योग का उपदेश देना है। हे कृष्ण ! अब हमारा और तुम्हारा सम्बध समाप्त है, कृपा करके मोर-मुकुट, वशी एव पीताम्बर आदि हमारी सामग्री भिजवा दीजिए—भाव यह है कि दर्शन दीजिए और आप अपनी जटा-जूट, मुद्रा, भस्म एव आधारी—सब वस्तुएँ मँगा लो। तुम गोपियो को यह योगोपदेश देकर बड़ा अन्याय कर रहे हो किन्तु भई वे तो बड़े आदमी है, वे सब कुछ कर डालने मे समर्थ है, तुमको यह अन्यायपूर्ण मार्ग शोभा नही देता। सूरदास जी वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि हम तो सब श्याम-प्रेम-अनुरागी है, जो यमुना के जल का ही माहात्म्य जानती है। अर्थात् हम अपने कृष्ण प्रेम मे अटल है।

विशेष—परिवृत्ति अलकार है।

पद १३७

गोपियाँ उद्धव से अपने प्रेम की अनन्यता एव कुब्जा के प्रेम की चचलता बताती कह रही है—

हे उद्धव ! हम तुम्हारा एक रहस्य जानना चाहती है। तुम वस्तुत सबके अन्तःकरण की बात जानते हो अथवा तुम्हारा यह ज्ञान व्यर्थ का ढकोसला, ठगो की जडी-बूटी के समान है। तुम दूसरे के मन की वास्तविक बात नही जानते अन्यथा तुम्हे ज्ञात होना चाहिए कि कृष्ण, कुब्जा और हमारे मन मे क्या और कैसा प्रेमभाव है। कृष्ण के शरीर मे सुशोभित होने वाला पीताम्बर रजोगुण की ध्वजा है जिससे प्रकट है कि वे हमसे प्रेम तो करते है किन्तु राजकीय उत्तरदायित्वो मे अथवा राजा होने के कारण हमारे प्रेम को विस्मृत कर रहे है। उस व्यभिचारिणी कुब्जा के लाल वस्त्र उसकी तामस-प्रीति के द्योतक है जो बताते है कि उसका कृष्ण से सम्बध स्वार्थवश है एव हमारी इस ब्रजभूमि पर श्वेत ध्वजा फहरा रही है जो हमारी अनन्य प्रीति की सात्विकता का प्रमाण है। कुब्जा की ऐसी अपकीर्तिपूर्ण प्रीति कृष्ण को अच्छी लग रही है किन्तु हम समस्त ब्रजबालाओ के शीलता एव अनन्यता के व्रत से परिपूर्ण प्रीति को वे ठुकरा रहे है। इस ऐसी स्थिति मे भी आप हमे योग का उपदेश देकर इस प्रेम को त्याज्य बता रहे हैं ? (सूर कहते हैं) आपका मत सत्य पर आधृत नही, अत वह मान्य नही है। आपकी वाचालता और मिथ्या-आग्रह दोनो गुण तो सर्वथा अनूठे है। व्यग्य यह है कि तुम निरे बकवादी एव झूठ बहकाने वाले हो, हमे योग ग्राह्य नही।

पद १३८.

उद्धव गोपियो को सगुण मार्ग के दोष बताकर योग अपनाने का आग्रह करते है। इसके साथ-साथ वे प्रेम-मार्ग की कठिनता बताकर भी योग की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते है। गोपियाँ 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना" के आधार पर यही कहती है कि हमे तो कृष्ण का सगुण स्वरूप ही ग्राह्य है—

हे उद्धव ! यह तो प्रत्येक व्यक्ति की रुचि पर निर्भर है कि उसे क्या अच्छा लगता है ("प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता"—कालिदास)। अपने द्वारा अपनाये गये प्रेम-मार्ग मे कितनी ही बाधाएँ हो किन्तु सच्चे प्रेमी उस

पथ का परित्याग नही करते। देखो, शलभ दीपक की अग्नि शिखा पर बारम्बार लिपट-लिपट कर उसके दाह मे जलता है किन्तु फिर भी वह दीपक से अपना प्रेम नही छोडता। भले ही कृष्ण ब्रजभूमि को छोडकर मथुरा चले गये हो किन्तु हमारा प्रेम यथावत् है। हे भ्रमर ! (परोक्षत उद्धव) चकोर तो पृथ्वी पर रहता है किन्तु उसका प्रेमी चन्द्रमा आकाश मे भ्रमण करता रहता है, तो क्या इससे उसका प्रेम सम्बध विच्छिन्न हो जाता है ? हमने भी कृष्ण से ऐसा ही अनन्य और दृढ प्रेम किया है कि हमारा मन सर्वदा उन्ही के ध्यान मे डूबा रहता है, पल भर के लिए भी वह अन्य उपकरणो पर नही ठहरता। स्थान की दूरी और निकटता तथा प्रेम मार्ग की सुगमता और अगमता का सच्चे प्रेम मे कोई महत्त्व नही, सच्चा प्रेम किसी भी व्यवधान को स्वीकार नही करता। मेडक सर्वदा जल मे रहता है किन्तु वह कमलो के पास तक नही जाता और दूसरी ओर कमलो का अनन्य प्रेमी मधु-अभिलाषी भ्रमर न जाने कितनी दूर से उडकर उनके मधुपान के लिए आता है एव इस प्रेम मे उसकी शीलता देखो कि वह लकडी जैसी कठोर वस्तु को काट कर घर बना लेता है किन्तु वही प्रेम के कारण पद्म के कोमल पत्रो मे बन्दी बन जाता है। चाहे अहर्निश बर्षा होती रहे और विशाल पृथ्वी उससे पूर्ण तृप्त हो जाय किन्तु स्वाति बूँद का अभिलाषी चातक क्षण अनुक्षण 'पी-पी' की ही रट लगाता रहता है, सामान्य वर्षा के जल की एक बूँद भी ग्रहण नही करता। हमारी प्रीति भी इसी प्रकार अनन्य और दृढ है किन्तु ससार मे सब भला ही भला ग्रहण नही करते बुरे के भी ग्राहक है। सेही जाति के पक्षी (कोई इसे कीडा भी बताता है) को आम जैसे मीठा अमृत सा फल रुचिकर नही अपितु वह तो कडवी लौकी के लिए ही तरसता रहता है। (सूरदास वर्णन करते है कि) उसी भाँति कृष्ण हमारी अनन्य प्रीति की अवहेलता कर यहाँ आने मे भी लज्जा का अनुभव करते हैं और उस कुबडी कुब्जा के प्रेम-रस मे रगे रहते हैं।

विशेष— १ अलकार— अत्यानुप्रास, छेकानुप्रास, उपमा, अर्थान्तरन्यास (लक्षण पहले दिया जा चुका है)। २ प्रेम मे प्रिय के दूर रहने पर प्रेम बढता ही है, घटता नही है— ऐसा वर्णन प्राय: सब कवियो ने किया है। द्वितीय

चरण मे तुलना कीजिए—

आप जितना दूर हमसे रहियेगा बंदानवाज,
और मौहब्बत में तरक्की ऐ सनम हो जायगी।"

+ + +

"ज्यों-ज्यो बसे जात दूरि, प्रिय प्रान मूरि
त्यो त्यो धँसे जात मन मुकुर हमारे मे।"

—'रत्नाकर'

३ अर्थान्तरन्यास के माध्यम से सूर के समान ही प्रेम का वर्णन निम्न पद मे भी हुआ है—

"जो है जाको भावता, सो ताहि के पास।
जल मे बसै कुमोदिनी, चदा बसै अकास॥"

४ प्रसिद्ध कवि-समयो का प्रयोग दर्शनीय है।

पद १३६

गोपियाँ उद्धव से पूर्वस्मृतियो के सजग हो जाने पर कहती है—

उद्धव! कृष्ण की स्मृतियो की व्यथा अत्यत उत्तापकारी है। वन-वन यमुना के कूल-कछारो एव लतादिक के कुजो मे प्रेम-क्रीडाएँ करते करते जब कृष्ण सब कुछ भुला देते थे, उस प्रेम-क्रिया-कलाप की स्मृति अब उन्हे नही रही। नये-नये पौधौ की उमग भरी छाँह देखकर वे दौडकर नवेलियो को आलिंगन बद्ध कर अक मे ले लेते थे। उद्धव! यमुना के कूल-कछारो मे पल्लवित उस प्रेम-क्रीडा का तुमसे कहाँ तक कथन किया जाय वह अवर्णनीय है। वे हमारी भुजाओ का आश्रय लेकर जिस प्रकार वन मे झूलते थे उस छवि की स्मृति मात्र से हमारे नेत्र आज परितृप्त हो रहे है। सूर वर्णन करते है कि गोपिका कहती है कि कृष्ण ने प्रेम विभोर होकर जो कुसुममाला मुझे भेट की थी उसकी स्मृति मात्र से हृदय मे वेदना की एक हूक सी उठती है।

विशेष — १ अलकार— अन्त्यानुप्रास, "कुञ्ज कल्लोल करे' मे वृत्त्यनुप्रास; २. प्रथम पक्ति मे प्रयुक्त 'हरि के सूलन' का अर्थ 'कृष्ण के पूर्व प्रेम की स्मृतियाँ', ही है। वियोग मे फूल भी शूल बन जाते है - इसी मनोविज्ञान के अनुसार गोपियाँ उन प्रेम-क्रीडाओ के स्मृति सुख को 'सूलन' बताती है।

पद १४०

प्रस्तुत पद मे गोपियो ने भ्रमर और उद्धव के माध्यम से कृष्ण की भ्रमर वृत्ति पर व्यग्य किया है—

हे भ्रमर ! हम गोपिकाएँ उन बेलो के समान नही है जिन्हे तुम प्रेम न करके स्वार्थवश अपनाते और त्यागते रहते हो। उन लताओ के सुमनो से तुम प्रेम का भ्रान्त नाटक रचते हो—

> **"सुमन तुम कली बने रह जाओ।**
> **ये भौरे चचल मधु लोभी इन्हें न पास बुलाओ।"**
>
> —जयशङ्कर 'प्रसाद'

हम तो वे लताएँ है जिन्हे शैशव से ही श्रीकृष्ण ने अपने प्रीति-जल मे सिञ्चित कर पल्लवित किया है। लताएँ जब प्रात काल मे जागती है तो वे रात्रि मे कुछ बढ जाती है, इसी आधार पर गोपियाँ कहती है कि प्रात काल ही जागरण समय यदि प्रिय का कर-स्पर्श न मिला तो विकसित होने मे अर्थात प्रफुल्लित होने मे हम अपने प्रेम का अनादर अनुभव करती थीं। ये लताएँ वन मे विहार करते हुए द्रुम रूप कृष्ण से आलिंगन बद्ध हो चुकी है। हमारे प्रेम सुमनो का विकसित पराग भ्रमर कृष्ण के लिए ही है, उसका अधिकारी अन्य कोई नही। भाव यह है कि हमारे जीवन के मधु यौवन के उपभोग के अधिकारी प्रियतम नदनन्दन ही हैं। ये प्रेम-बेले योग की वायु के तीव्र प्रहार से विचलित होकर अपना स्थान नही छोड सकती क्योकि अब भी इन्हे कृष्ण की माधुर्यमयी छवि की स्मृति - शाखा का आलम्बन प्राप्त है। अर्थात् इस योग का हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड सकता क्योकि हमे दिन रात कृष्ण की माधुर्यमूर्ति का ही ध्यान रहता है। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि हमारे प्रेम-पुण्य का मकरद समय अथवा योग की बात के झोके से झड नही सकता। हमारा चित्त तो केवल राजीव-नयन प्रियतम कृष्ण मे ही अनुरक्त है।

काव्य-सौन्दर्य—१ अलकार—वृत्त्यनुप्रास, रूपक, सागरूपक, अन्योक्ति। २ अन्तिम पक्ति मे 'पराग' का अर्थ प्रेम की स्मृतियो से भी लिया जा सकता है क्योकि गोपियाँ कमल-नयन की स्मृतियो को भी हृदय से अलग करना

नही चाहती । ३ सूर-काव्य रीतिकाल की निर्माणशाला नही किन्तु उत्प्रेरक अवश्य है—प्रस्तुत पद इसका प्रमाण है ।

पद १४१

गोपियाँ श्रीकृष्ण-प्रेम मे अपनी अनन्यता बताती हुई उद्धव से कहती है—

हे भ्रमर ! हमारे तो एकमात्र आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण ही है, जिनका ध्यान हम निरन्तर करती रहती है फिर तुम्हारे निर्गुण का ध्यान करके क्या करे ? हम किसी अन्य को बिना उनकी आज्ञा के अथवा जहाँ कृष्ण का अस्तित्व नही इस आराध्य को हम शीश नही झुका सकती । यह अपना अमूल्य उपदेश योगियो को ही जाकर दो जिससे उनका चचल मन स्थिर हो सके । हमारे पास तो एक ही मन है, एक ही आराध्य है, उसी के ध्यान मे अपना समस्त समय लगा देती है । तुम निर्गुण का घर-घर, इधर उधर कथन करके अपना ज्ञान बखेर रहे हो, इसे तुम सहेज कर रखो । सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि भगवान् कृष्ण से भी बडा कोई आराध्य हो सकता है ? अर्थात् वे ही हमारे एकमात्र आराध्य है ।

पद १४२

गोपी वचन उद्धव प्रति—

हे मधुप (उद्धव) ! आप कृष्ण के मित्र है । हम आपसे नम्रतापूर्वक अनुनय करती है कि आप हमारी इस त्रुटि को कि हमने आपकी आज्ञा का पालन नहीं किया, क्षमा करना । इसके साथ ही हम यह पूछने की धृष्टता कर रही है कि किस भिखारी ने स्वप्न मे प्राप्त सम्पत्ति और ऐश्वर्य को प्राप्त किया है ? किस व्यक्ति ने सोने की चिडिया को पकडकर उसे बाँधकर उससे क्रीडा की है ? धुएँ के घर किसके है जिनमे बैठा जा सकता है ? हे सखि ! भला किसी ने आकाश से नक्षत्र तोडकर अपने घर रखा है ? किसने अपने हाथो से आम के बौर की माला गूँथी है ? बिना जल के सूखे मे नौका किसने चलती देखी है और कौन उससे पार उतर सका है ? जिस प्रकार ये असम्भव कार्य सम्भव नहीं उसी प्रकार हमारा योग अपनाना

भी सम्भव नही है। बता तेरे इतने प्रलाप के उपरान्त भी किसी ने नदनन्दन से प्रीति तोडकर योग की समाधि लगाई है ? सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि जब तेरे इस उपदेश का यहाँ कोई आचरण करने वाला नही है तो फिर क्यो बारम्बार इस योग का गीत गा रहा है ?

विशेष—१ अलकार—अत्यानुप्रास, निदर्शना। २ 'धूम-गृह' की उपमा तुलसी ने भी दी है—

"धुआँ के से धौरहर देखि तू न भूल रे।'

—'विनय-पत्रिका'

पद १४३

गोपियाँ उद्धव से अपने प्रेम की अनन्यता बताती कहती है—

हे मधुप ! हमारा मन तो एक ही था, उसे कृष्ण अपने साथ ही ले गये अब आप योगोपदेश किसे दे रहे हो ? ओ शठ ! तू योग के कैसे कटु-वचन कह रहा है, तनिक युवतियो की सामर्थ्य और सीमा को तो देख लिया होता। हम तो वैसे ही विरह की अग्नि से जली जा रही है, योग का उपदेश देकर क्यो जले पर नमक छिडक रहे हो। तुम निर्गुण की साधना के द्वारा परमार्थ—दूसरे लोक की सिद्धि की बात बताते हो, किन्तु इससे हमारी विरह-व्यथा का शमन अथवा उपचार नही हो सकता। जब सन्निपात के रोग मे कफ जोर करने लगे तब उस रोगी को दही खिलाने से तो वह बढेगा ही। अर्थात् इस विरह-व्यथा को योगोपदेश देकर आप बढा रह है। हमारे हृदय तो प्रियतम नन्दनदन की लावण्यमयी साँवली मूर्ति की छवि से परिपूर्ण है। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि उस सौन्दर्यमूर्ति को छोडकर आपके गुण रहित निर्गुण के समुद्र मे कौन डूबे अर्थात् योगसाधना के पचड़े को कौन अपनाये ?

विशेष—१ अलकार—अत्यानुप्रास एव निदर्शना। २ कवि का सामान्य वैद्यक-ज्ञान दर्शनीय है, जिससे सिद्ध होता है कि सूर की निरीक्षण शक्ति सर्वागीण एव सूक्ष्म थी।

पद १४४.

गोपी वचन उद्धव प्रति—

हे भ्रमर ! तुम योग की इन ऊटपटाग बातो को छोडो । तुम बार-बार हमे वही निर्गुण की योग साधना का उपदेश देने लगते हो जिससे हमे कष्ट पहुँचता है । हम प्रत्येक समय—प्रात काल उठते हुए और सोते, स्नान करते —आपको नित्य शुभाशीष देती है किन्तु तुम रात दिन अपने हृदय मे ब्रज-बालाओ को कष्ट देने के उपाय सोचते रहते हो । कम से कम हमे यह तो बताओ कि बार-बार आपको वही योग की गाथा गाने से मिलता क्या है ? सूरदास कहते है कि गोपिकाओ ने कहा कि तुम इतना भी नही जानते कि जो कृष्ण-रग मे रग जाती है, उन पर लाल रग नही चढता अर्थात् वे कृष्ण प्रेम के अतिरिक्त अन्य के प्रेम का विचार भी नही करती ।

विशेष—१ अलकार—अत्यानुप्रास एव छेकानुप्रास । २ तुलना कीजिए—

"सूरदास प्रभु कारा कामरी चढ़ै न दूजौ रंग"

पद १४५

गोपिया अपने प्रेम की अनन्यता प्रतिपादित करती उद्धव से कहती है —

हे भ्रमर (उद्धव) ! तुम्हारी प्रीति रीति कुछ भिन्न प्रकार की है । तुम एक सुमन की सुगन्ध और मधु का पान करके दूसरे पर जा बैठते हो, फिर दूसरे से तीसरे पर — यही क्रम चलता रहता है । यदि एक पुष्प कुम्हला जाय तो अन्य बहुत से कुंज-वाटिका और वन है जहा तुम रमण कर सकते हो । इस सघन काननमाला मे अनेक वृक्ष और पौधे पुष्पित हो रहे है —कही भी जाकर तुम अपना मनोरजन कर सकते हो । किन्तु हमारा प्रेम-पात्र एक ही है और वे है कमलनयन भगवान् कृष्ण जो यहा नही है । उनके विरह मे हम वैसे ही व्यथित है, यह योग का उपदेश देकर तुम और जले पर नमक छिडक रहे हो । आपने योग-सदेश से परिपूर्ण पत्रिका देकर हमारे वियोग-व्याकुल शरीर मे विष का प्रवेश और करा दिया । जिस प्रकार सर्प की मणि निकल जाने पर वह आभाहीन और कान्तिरहित हो जाता है, उसी प्रकार सौन्दर्य मणि श्री कृष्ण के चले जाने पर हम आज वियोग-विक्षुब्ध है । सूर

वर्णन करते हैं कि गोपियो ने कहा कि नन्दलाल श्री कृष्ण ने भी हमारे हृदय का सम्पूर्ण रस ग्रहण कर लिया और अब हमे शुष्क जान मथुरा को प्रयाण किया है ।

विशेष—१ अलकार—अत्यानुप्रास एव अन्योक्ति । २ तुलना कीजिए द्वितीय चरण से—

" एक जु कंज कली न खिली
तौ कहा कहू भौर कौ ठौर है नाहि ।"

पद १४६

गोपी उद्धव से कृष्ण द्वारा मन हर ले जाने की बात कहती है—

मधुप ! ब्रजचन्द कृष्ण हमारे मन के चोर है । उनकी लावण्यमयी सौन्दर्य मूर्ति ने अपने वकिम कटाक्ष से हमारा चित्त चुरा लिया है । हमने उन्हे प्रेम की रज्जु से बाध कर हृदय मे पकड रखा था किन्तु वे उन समस्त प्रेम-बधनो को विच्छिन्न करके चले गए और उसके बदले मे हमे लोकापवाद ('जग-हासी') दे गये । मैं रात स्वप्न मे उनके आगमन से चौक पडी किन्तु प्रात उठ कर देखा तो कृष्ण नही कृष्ण दूत हमे दिखाई दिये । सूर वर्णन करते है कि गोपी कहती है कि अपनी मधुर मुस्कान से नन्दनन्दन मेरा समस्त सुख चुरा कर ले गये ।

विशेष—१ अलकार—अत्यानुप्रास, छेकानुप्रास, परिवृत्ति । २ 'प्रेम-प्रीति मे पुनरुक्ति दोष दिखाई देता है किन्तु भाषा के सजीवपन और व्यावहरिकता के लिए ही कवि ने ऐसा किया है ।

पद १४७

गोपियाँ उद्धव के निर्गुण का खण्डन करती कहती हैं कि हम अबलाएँ इस साधना की अधिकारी नही ।

हे मधुप ! तनिक सोच समझकर तो बात कहा करो । तुम कुसुमो के पराग-पान से मदमस्त हो रहे हो, इसी से तुम्हारी विवेक शक्ति नष्ट हो रही है । फिर भी तुम अपने ज्ञान का इधर-उधर प्रवचन कर इतराते फिरते हो । तुम हमारे और कृष्ण के मध्यस्थ का तो कार्य कर रहे हो किन्तु जानते

हो कि जो मध्यस्थ बनता है वह सत्यवादी होता है और उसके प्रत्येक निर्णय की कसौटी सत्य ही होता है। आप कृष्ण के पक्ष का ही पोषण कर रहे है किन्तु यह गलत है, मुँह देखकर निर्णय करना बुद्धि सगत नही। न्याय करते समय राजा और भिखारी सब को समान ही देखकर न्याय करना चाहिए। कहना कुछ चाहते हो और कह कुछ और जाते हो, तुम दूसरे की निंदा करने वाले और वृत्ति से व्यभिचारी हो। भोली ब्रजबालाओ को योग की कठिन साधना मे प्रवृत्त किया चाहते हो, तुम अच्छा कीर्ति का काम कर रहे हो। हम तो सब रहस्य जानती है, तुम्हारा यह योग का ज्ञान मिथ्या ढकोसला है। भला, रस लोभी योग साधना की विधियाँ कहा से जान सकता है अर्थात् योग के लिए तो मन की एकाग्रता की आवश्यकता है किन्तु तुम सर्वत्र रमण करने वाले चचल चित्त हो। विधाता ने भ्रमर का सिर मुँडवा कर मुख पर कालिख युक्त राख पोत उसे भला सुन्दर कर दिया है। विधाता ने उसके साथ यह अन्याय किया है किन्तु फिर भी इसे सुबुद्धि नही आई।

इस पक्ति का दूसरा अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है कि कुब्जा (परम-गुरु) ने इस उद्धव का सिर मुँडवा कर मुँह पर योग की विभूति लगा इसका मुँह काला कर दिया है किन्तु उसके इस अनीतिपूर्ण व्यवहार से भी इसे ज्ञान नही हुआ, अब भी यह कुब्जा के हित की ही बात कहता है।

जो कोई दूसरो का अहित करता है, पहले उसी का हो जाता है, उद्धव कुब्जा के कहने से योग का उपदेश देने तो हमे आये किन्तु बेचारे को स्वय योगी पहले बनना पडा। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि वे हमारे प्रियतम प्रत्येक के अन्तर की बात जानते है, जब वे ही हमारी व्यथा को नही समझ पा रहे है तब किसके न्याय की पुकार की जाये। पहले तो अक्रूर ने कृष्ण को ले जाकर, अब उद्धव ने योग का यह दु सह्य उपदेश सुनाकर हमें असह्य वेदना दी है।

पद १४८

गोपियाँ निर्गुणोपसना को भी अपनाने के लिए प्रस्तुत हैं क्योकि यह उनके प्रियतम की आज्ञा है किन्तु विवशता तो यह है कि उनके नेत्र सदैव कृष्ण की रूपमाधुरी पान के अभिलाषी रहते हैं वे कहती हैं.—

हे मधुप (उद्धव) ! आपने जो योग साधना का उपदेश हमे दिया हम तदनुकूल आचरण करने को प्रस्तुत है। यदि प्रियतम श्री कृष्ण ने यह निर्गुणोपासना की आज्ञा दी है तो हम अवश्य ही उसका पालन करेंगी। यदि हमारी रसना कृष्ण का नाम लेना नही छोडती तो हम उसके नौ टुकड़े निर्गुण के साथ भेज देती। किन्तु विवशता यह है कि ये हमारे नेत्र वश में नही हैं। आपने जो निर्गुण की सेवा का विधि-विधान बताया है वह भी अत्यन्त कठिन है और उस परम ज्योति से साक्षात्कार भी अत्यन्त दुष्कर है, इसीलिए मैं पुन आप से निवेदन करती हूँ कि सूर के स्वामी श्री कृष्ण से जाकर कहना कि आपके द्वारा प्रेषित योग हमारे लिए उसी प्रकार कष्ट-दायक है जैसे केले के लिए पास ही खडा बेर का पेड, क्योकि वह अपने कण्टको से केले के पत्रो को फाड देता है।

विशेष — १ 'भारतेन्दु' की गोपियो के सम्मुख भी योग अपनाने मे यही कठिनाई थी कि नेत्र उनके वश मे नही थे—

"सखि ये अखियां भई बिगरैल"

२ अन्तिम पक्ति से रहीम के वचन की तुलना कीजिए—

"कहु रहीम कैसे निभै केर बेर को संग,
वे डोलत रस आपने उनके फाटत अंग ॥"

पद १४६

गोपियाँ उद्धव के निर्गुण का खण्डन उन्ही के तर्कों के आधार पर करती हैं, इस प्रकार उद्धव अपने ही दाव पर चित्त आते है—

मधुप ! तुम दूसरो को ही प्रेम त्यागने का उपदेश देते हो किन्तु तुम प्रेम की वेदना का अनुभव तभी कर पाओगे, जब किसी के प्रीति-बंधन को छोडोगे। तब तुम समझ ज़ाओगे कि प्रेम को छोडना कितना दुष्कर है। तुम अपनी ओर देखो कि आपका मन तो भगवान् श्री कृष्ण के चरणो मे ही है, केवल शरीर मात्र यहाँ ब्रज में हैं। अब तुम सच-सच बताओ कि राजीव-नयन भगवान् श्री कृष्ण को छोड कर कौन सुख प्राप्त कर सका है ? तुम जो यह कहते हो कि सासारिक माया-मोह वृथा है तो देखो, हम तो जब जाने जब तुम यहीं रहो और कृष्ण के प्रेम को विस्मृत कर मथुरा न जाओ। माया के बधन को

दूर कर सर्वत्र मथरा ही मथुरा है। सूर वर्णन करते है कि गोपिया उद्धव से कहती है कि तुम भी हमारे समान कृष्ण के वियोगी बन जाओ और तब योग साधना करो तो हम तुम्हारे योग को मान लेगी।

पद १५०.

गोपियाँ निर्गुण का खण्डन करती हुई उद्धव से कह रही हैं—

मधुकर ! तुम वस्तुस्थिति को समझते तो हो नही, व्यर्थ ही योग का प्रलाप किये जा रहे हो। अपने योग के कटु वचनो से बारम्बार हमारा हृदय दग्ध करते हो, यहा से दूर नही टलते। भला जिस हृदय मे यशोदानन्दन भगवान् श्री कृष्ण का वास है वहा निर्गुण कैसे आ सकता है ("कहौ, मधुप, कैसे समायेगे एक म्यान दो खाँडे")। तुम स्वय वन वन के सुमन और पत्तो का परित्याग कर सब लताओ से विहार करके मन मे पद्म-कोष मे ही अपना आश्रय ढूढते हो। उसी प्रकार हम भी केवल कृष्ण का ही आश्रय ग्रहण करती है। सूर वर्णन करते है कि गोपियाँ कहती है कि तुम हमारे इस प्रण से परिचित हो किन्तु फिर भी निर्गुण का उपदेश हमे दिये जा रहे हो। इसके पीछे आपका मन्तव्य कदाचित् यह है कि कृष्ण गोपियो की विरह-वेदना से द्रवित हो ब्रज न आ जाँय। यदि वे ब्रज आ गये तो उस दासी कुब्जा की कुशलता नही रहेगी, अर्थात् उस का सुख नष्ट हो जायेगा।

विशेष—१. अलकार—वृत्त्यनुप्रास एव अंत्यानुप्रास। २ द्वितीय चरण के पूर्वार्द्ध से तुलना कीजिए—

"नैन रमैया रम रहा, दूजा कहाँ समाय ?"

—कबीर

पद १५१

गोपिया कृष्ण के प्रति उपालम्भ देती हुई उनकी प्रेम पद्धति की कठिनता बताती हैं—

हे कृष्ण ! यह आपका प्रेम प्रीति है अथवा तलवार। श्यामागधारी तुम्हारी दृष्टि का वकिम निक्षेप ही तुम्हारे प्रेम की तलवार की धार है जिससे सभी व्रजबालाएँ घायल हैं। वे गोपिया इस प्रेम के युद्ध मे वृन्दावन जैसे धर्मक्षेत्र मे खेत रही हैं, अर्थात् तुम से वियुक्त हो गई हैं किन्तु फिर भी वे हार मान

कर इस प्रेम के प्रण को त्यागती नही । जिस प्रकार युद्ध-भूमि मे सैनिक क्षत-विक्षत होकर रोते कलपते है, उसी प्रकार गोपिया आपके वियोग मे इस वृन्दावन के क्षेत्र मे वियोग-व्यथित हो रही है । इस भूमि मे रह कर ये तुम्हारे मुख दर्शन की अमृत-बूँद की पिपासु रहती है । हम गोपिकाएँ श्याम-सुन्दर की उस मनोहर छवि को देख कर ही इस कष्टकर वियोगावस्था मे भी रह सकती है । सूरदास कहते है कि गोपियो ने आर्त स्वर मे कहा कि अब इस वियोग-व्यथा के कारण हम बिल्कुल निस्तेज एवं सर्वथा अस्तित्व-विहीन सी हो गयी है । क्या अब भी अपने दर्शनो के बिना आप हमे बिलकुल मार ही डालेंगे ।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास एव रूपक ।

पद १५२

गोपियाँ निर्गुण की अग्राह्यता बताती हुई उद्धव से कहती है —

हे मधुप ! आपके द्वारा उपदेशित मार्ग को कौन अपना सकता है । यदि हम उससे प्रेम करें तो वह अविनाशी, इन्द्रयातीत भला प्रेम के रस को किस प्रकार समझ सकता है । इसलिए तुम निर्गुण को प्राप्त करने वाली समाधि की बातें चतुर ज्ञानियो को ही बताओ, हम मूढ अबला गोपिकाओ के लिए इसका कोई प्रयोजन नही । तुम हमे कृष्ण विरह मे उन्मत्त बताते हो किन्तु हमे तो हमारे ब्रज-प्रदेश मे ही कृष्ण-वियोग के सन्निपात से प्रमत्त जीवन ही बिता लेने दो, अतएव हमारे सम्मुख इस योग गाथा के गुणगान की आवश्यकता नही । हमारे सम्मुख तो सदैव ही—सोते, जागते, स्वप्न और प्रत्यक्ष मे श्री कृष्ण की ही विमल मूर्ति रहनी है, उसी को हम अपना पति मानती है । नन्दनन्दन के शैशव और किशोर की जितनी स्मृतिया हैं हम उन्ही मे लीन रहती है, यहाँ तक कि हमारा कृष्ण से पृथक् अस्तित्व भी शेष नही रह गया है । जिस प्रकार समुद्र मे विलीन बूँद के अस्तित्व को नही जाना जा सकता उसी प्रकार कृष्ण से तद्रूप हमारा अस्तित्व नही पहचाना जा सकता । सूरदास जी वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि जिन गोपिकाओ के तन, मन, धन, सर्वस्व कृष्ण के सुन्दर मुख की मनोहारी मुस्कान पर न्योछावर हो चुके हैं वे आपके योग को नही मान सकती ।

विशेष—१. अलकार—अत्यानुप्रास, निदर्शना। २ "बालकुमार किसोर ·· साने" मे पुष्टिमार्गीय प्रेम-प्रद्धति की झलक मिलती है। ३. "पर्यो जो ··· पहिचाने," से तुलना कीजिए—

"हेरत हेरत हे सखि रहा कबीर हिराई।
बूंद समानी समुद्र में सो कत हेरी जाई॥"

पद १५३

गोपियां कहती है कि हमारा मन निवृत्ति मार्ग का अनुयायी बनने को प्रस्तुत नही, प्रवृत्ति का सहज, सरल, ऋजु-पथ ही इसके लिए श्रेयस्कर है। वे भ्रमर को परिलक्षित करती हुई उद्धव से कहती हैं—

हे मधुप! हमारा मन बडा बिगडा हुआ है, यह हमारे वश मे नही रहता।

"उड़्यौ उड़्यौ निसिदिन फिरत, इत उत चारों धाम।
ऐसे हरेऊ को धरौ, कहा जानि मन नाम॥"

यह मन समझाने पर भी गीता के अनासक्ति योग को ग्रहण नही कर पाता। यह तो कृष्ण की मुस्कान की बाकी छवि पर ही अटक कर रह गया है। इसने सर्वदा से कृष्ण की बाल लीलाओ की माधुर्यमयी मूर्ति का दर्शन किया है इसीलिए अब शुष्क, अरूप, निर्गुण की बात सुनकर यह उपेक्षा दिखा रहा है। उद्धव! तुम कितना ही प्रयत्न कर लो किन्तु फिर भी यह योग की शिक्षा को नही अपना सकता, भला कुत्ते की पूंछ करोडो प्रयत्न करने पर भी सीधी हो सकती है? यह हमारा मन कृष्ण के चरण कमलो को विस्मृत नही करता क्योकि उनके स्मरण से हृदय मे शीतलता का सचार होता है। इसके बिए योग तो अंधे-कुएँ के सदृश है जिसे देखकर दूर से ही डर लगता है। जब तुम मन को योग की शिक्षा देते हो तो उसे ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण के प्रेम के अमृतमय जल से निकालकर कोई उन्हे योग के विष में डाल रहा हो। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि आप हमे कृष्ण-वियोग-व्यथा मे इसी प्रकार व्यथित रहने दो किन्तु यह अप्रिय योग-सन्देश हमे मत्त सुनाओ।

विशेष—१. अलकार— निदर्शना, रूपक, लुप्तोपमा, उत्प्रेक्षा, वृत्त्यनुप्रास ("हरि अनुराग सुहाग भाग——गरें") एव अंत्यानुप्रास। २. दो निष्ठाओ—ज्ञान निष्ठा तथा साँख्यिकी (कर्म) निष्ठा, मे से सूर वल्लभमतानु-

कूल अपनी गोपिकाओ से सात्त्विकी (कर्म) निष्ठा का प्रतिपादन कराते हैं।
३. 'बालमुकुन्द रूप रस ·· ·· खरे" मे पुष्टि मार्ग की झलक देखी जा सकती है।

पद १५४

उद्धव गोपियो से बारम्बार कहते हैं कि योग आपके लिए अत्यत लाभदायक है, आपके लाभ के लिए ही इसे मैं मथुरा से यहाँ लाया हूँ। गोपियाँ उद्धव से कहती है कि यदि वस्तुत आप हमारे शुभचिन्तक है तो इस योग के उपदेश को हमे न दे। वे कहती है —

हे मधुप ! यदि आप हमारे वस्तुत हितचिन्तक है तो कृष्ण की सगुण भक्ति के भजनामृत मे आप योग का खारा जल डालकर यह अप्रीतिकर कृत्य न करे। हे शठ ! अबलाओ को योग सिखाकर क्यो उल्टी रीति चलाता है, कही अमृतसदृश दुग्ध दान करने वाली गायो से हल चलाने का कार्य लिया जाता है ? जो भोली-भाली गोपागनाएँ रस्सी को देखकर साँप के भ्रम से भयभीत हो जाती है, उनकी ओर योग का यह काला नाग फेकना क्या कुछ भयकर नही है ? तुम हमारे प्रेम की अनन्यता का बखान तो कर रहे हो किन्तु तनिक अपनी ओर तो देखो। अपने कठोर दातो से काठ को फोड़कर मधुप ! तुम अपना घर बना लेते हो किन्तु उसी शक्ति के रहने हुए भी प्रेमवश तुम रात भर पद्म-कोष मे बन्दी बने रहते हो, उन कोमल पँखुडियो को नही काटते। सूरदास कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि हे चचल मधुलोभी भ्रमर ! क्यो व्यर्थ ही योग का प्रलाप कर रहे हो ? हमे नन्दनदन की मनमोहक छवि, जिसने अपने नख-शिख के अपूर्व सौन्दर्य से हमारा मन वशीभूत कर लिया है, विस्मृत नही हो सकती।

विशेष— अलकार — छेकानुप्रास एव निदर्शना।

पद १५५

गोपियाँ अपनी तार्किक उक्तियो से उद्धव के निर्गुण का खण्डन करती है, जिसमे अधिकारी भेद पर विशेष बल है—

हे मधुप ! तुम्हारे द्वारा वर्णित योग किस प्रदेश का आचरण है ? तुम ब्रजबालाओ को योग का उपदेश दे रहे हो, यह तो सर्वथा विपरीत परिपाटी

है। जिस शीश का शृगार स्वय श्री कृष्ण ने सुमन गूँथकर और सुगधित तैलादि लगाकर किया उसी को तुम श्मशान मे रहते हुए भस्म लगाकर जटाग्रो मे परिवर्तित करने को कहते हो, कैसा विपर्यय है ? जिन सुन्दर कानो मे कमल के समान चमकने वाले रत्नजटित कर्णाभूषण धारण किये है, उन्ही कानो मे योगियो के समान लटकती मुद्राएँ पहनाते तुम्हे तनिक भी दया नही आती ? जिनकी नाक मे नथ, गले मे मणिमालाएँ तथा मुख पर कपूर और चन्दन चर्चित अगरागो की सुगधित रहा करती थी उसी मुख से आप योगियो की शृगी फूँकने और आक तथा ढाक के भोजन ग्रहण करने को कह रहे हो ? जिस सुन्दर शरीर पर कस्तूरी और चन्दन के अगरागो का लेप करके अत्यन्त कोमल वस्त्र धारण करती थी उसके लिए श्री कृष्ण ने फटे-पुराने चिथडो की व्यवस्था बताई है । (योगियो की 'कन्था' फटे-पुराने कपडो की ही होती है) यदि आप उस अविनाशी निर्गुण का उपदेश ज्ञानमार्ग का पथ प्रदर्शन इसी ज्ञान के बल पर योग सिखाकर करेंगे तो निश्चय ही आपका ज्ञान अज्ञान कहलायेगा; क्योकि कही भी युवतियो के लिए योग की व्यवस्था नही है । सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि कृष्ण से कह देना कि जब तक कृष्ण मथुरा मे है तब तक (कुब्जा के साथ) वे खूब भोग करें और यहाँ आकर योग की साधना कर लेगे । भाव यह है कि ब्रज मे यदि कृष्ण आ जाय तो हम योग मार्गी भी बन सकती है ।

विशेष—१. अलकार, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास । २ तुलना के लिए पीछे जगन्नाथ प्रसाद 'रत्नाकर' के उद्धव शतक का पद देखिये ।

पद १५६

गोपियां वियोगावस्था मे अपने नेत्रो की दशा का वर्णन करती उद्धव से कहती है—

हे मधुप ! ये नेत्र तो अब श्री कृष्ण की प्रतीक्षा करते-करते थक गये । ये प्रेम से परिपूर्ण नेत्र राजीव-नयन प्रियतम कृष्ण का मार्ग जोहते-जोहते भारी हो गये है । जिस दिन से श्री कृष्ण ने मथुरा के लिए प्रयाण किया है उसी दिन से इनकी नीद भाग गई है, यदि कभी एकाध क्षण के लिए ये आँखे लगती भी है तो बीच बीच मे चौक चौक पडती है । जागृत, स्वप्न, तुरीय

एव सुषुप्ति— चारो अवस्थाओ मे भगवान् श्री कृष्ण की मजुल मूर्ति हमारे हृदय मे बसी रहती है। हम केवल उन्ही का ध्यान और पूजन करती है। आप वृथा ही हमारे सम्मुख निर्गुण का कथन कर रहे है, निर्गुण का कथन तो आप उससे करे जो उसके महत्त्व को समझकर आदरपूर्वक उसे ग्रहण करे। सूरदास वर्णन करते है कि नन्दनन्दन गोपाल लाल के प्रेम के मधुर रस को छोडकर हम निर्गुण के टेटी के समान काषाय रस को क्यो चखे ?

विशेष - १ अलकार—अत्यानुप्रास एवं लुप्तोपमा। २ अन्तिम पक्ति से तुलना कीजिए —

"जीभ निबौरी क्यों लगै, बौरी चाखि अगूर"

—बिहारी।

पद १५७

गोपिया यहाँ काले रग को लेकर व्यग्य करती कहती है—

हे मधुप ! तुमसे काली जाति के व्यवहार का क्या वर्णन करे ? जिस प्रकार जल और मछली तथा कमल एव भ्रमर का परस्पर अनन्य अनुराग होता है, उस प्रकार इस काली जाति मे नही। जिस प्रकार कोकिल अपने छलपूर्ण व्यवहार से कौए से अपने बच्चो का पोषण कराती है किन्तु बच्चो के बडे हो जाने पर वे उधर फटकते भी नही उसी प्रकार कृष्ण ने हमारे साथ प्रेम-क्रीडाओ का रसास्वादन कर इधर आने का नाम नही लिया। जिस पुत्र की प्राप्ति के लिए लोग बडे-बडे यज्ञ, व्रत दान आदि अनेक त्याग करते है उसी पुत्र रत्न को स्वार्थी काली नागिन जनते ही खा जाती है। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि हे सखियो ! कृष्ण की निर्ममता पर आश्चर्य करना व्यर्थ है क्योकि अपनी काली जाति के समान क्रूर कृत्य कर लेने पर ही तो उनके हृदय को शान्ति मिल पाती। हे कृष्ण ! वस्तुतः तुमने तो अपनी काली जाति के स्वर मे स्वर मिला दिया अर्थात् ! वैसा ही आचरण किया जैसा समस्त काले वर्ण वाले करते है।

विशेष—१ अलकार—वृत्त्यनुप्रास, अत्यानुप्रास, लुप्तोपमा। २. 'एक ही पाँति' एव 'बजी एक स्वर ताँति' जैसे मुहावरो के सुन्दर प्रयोग से भाषा की प्रवाह शक्ति का मार्दव और शक्ति देखते ही बनती है। ३. दो

लोक-विश्वासो का प्रयोग कवि ने किया है। प्रथम तो यह कि कोयल अपने बच्चो का पालन-पोषण कौए से कराती है। दूसरा, यह कि नागिन अपने अण्डो को सेते समय एक कुण्डली खीच लेती है। अडे से निकलकर साँप का बच्चा उछलता है, उछलकर यदि वह कुण्डली के बाहर चला जाता है तो नागिन उसे नही खाती, अन्यथा शेष जो कुण्डिली के भीतर रह जाते है उन्हे वह खा जाती हैं।

पद १५८

गोपी वचन उद्धव प्रति—

हे मधुप ! आप भला योग का सदेश लाये। आपने श्री कृष्ण की कुशलता तो सुनाई किन्तु आपकी बाते सुनते ही हमे चिर-वियोग की आशका हो गयी। न जाने हृदय मे कबसे कृष्ण-मिलन की आशा सजो रखी थी किन्तु आपके आते ही उस पर भी पानी फिर गया। आप अबला नारियो से जटा-जूट बाँधकर योग साधना के द्वारा अविनाशी निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति की बात बताते हो, कैसा विपर्यय है ! किन्तु जिन महाशय कृष्ण नामधारी राजा ने आपको यहाँ प्रेषित किया है वे वसुदेव कुमार मथुरा वासी है। (सूर कहते है) किन्तु हमारे इस ब्रज मे नंद दुलारे बाल-गोपाल अपनी मनमोहिनी श्यामल छवि से ब्रज के कण-कण मे बसे हुए है।

विशेष—तुलना कीजिए—

"जोग तो तब करै जब वियोग होय स्याम सौं।"

पद १५६

कृष्ण की भ्रमरवृत्ति पर व्यग्य करती गोपियाँ अत्यत आक्रोश और खीजपूर्ण उपालम्भ देती है—

उद्धव ! कृष्ण अत्यत चपल और रसिक है। अब कृष्ण अपनी इन पुरानी प्रेमिकाओ से मिलने गोकुल क्योकर आने लगे, उन्हे तो नई-नवेलियो के ससर्ग की चाट लगी है। उनके आलिंगन सुख का स्मरण कर वे कह उठती हैं कि कृष्ण को अब तो वे दिन विस्मृत हो गये जब हम उन्हे गोद मे खिलाया करती थी। जब कृष्ण नगे तन रहा करते थे और बाबा नद तथा माता यशोदा उनकी केशराशि मे काँच के मोतियो की लडें गूँथ दिया करते

थे—वे दिन अब भूल गये। चार दिन से ही तो पीताम्बर और अगरखा पहनना सीखे हैं पहले तो नगे ही रहते थे। सूरदास जी कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि अब उन्होने गौएँ चराते समय धारण की जाने वाली काली कमली का परित्याग कर दिया है, अब तो वे सजे-सजाये छैला, राजा हैं।

विशेष—१ अलकार—अत्यानुप्रास एव स्वाभावोक्ति।

२ '**वै राजा तुम ग्वारि बुलावति, यहै परेखो लेत**" से भाव-साम्य देखिए।

पद १६०

गोपियाँ आज वियोग-व्यथिता है, इसमे दोष उनके भोलेपन का है। इसी बात को वे उद्धव से कहती है—

हे उद्धव! हम ही बडी बावली है। कृष्ण के सुन्दर शरीर के केशर-तिलक, वक्षस्थल पर सुशोभित गुंज-माल और पीले पीताम्बर की मोहक छवि को देखकर हमारे नेत्र उनके साथ हो लिये। किन्तु उस सुन्दर मूर्ति का विश्वासघात देखो कि उसने हमारा हृदय चुरा लिया। अब समय हाथ से निकल जाने पर हम पीछे पछता रही है, इसीलिए जो बुद्धिमान् लोग हैं वे हमे बावली बता रहे है। अत इसमे हमे पागल बताने वालो का क्या अपराध? सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि हे उद्धव! तुम उन कठोर—हृदय श्रीकृष्ण से कहना कि तुम्हारे इस योगोपदेश को सुनकर वे और पागल हो गई है।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास।

पद १६१

गोपी उद्धव से कहती है—

मैं अपनी त्रुटियो पर कहाँ तक पश्चात्ताप करूँ! श्रीकृष्ण के वियोग मे मेरी छाती फटकर दो टुकड़े क्यो न हो गयी! आज कृष्ण के अभाव मे मेरा तन, मन और यौवन-सब उसी प्रकार व्यर्थ नष्ट हो रहा है जिस प्रकार सर्प की फुफकार जिससे कुछ नही बनता। मेरे हृदय मे विरह का उत्तप्त दावानल धधक रहा है एव वेदना की अत्यत सतापकारी हूक उठती है। जिस सर्प की मणि उसके शीश से चुरा ली गई हो, वह अपनी वेदना को मौन का आवरण देने के अतिरिक्त और क्या कर सकता है? भाव यह है कि मणि सदृश

प्राणधन प्रियतम कृष्ण के मथुरा चले जाने पर असह्य विरह-वेदना को मौन रखकर ही सहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई चारा नही। सूर वर्णन करते है कि गोपी ने कहा कि हम कुघडी मे ब्रज मे जन्मी थी, तभी कृष्ण-वियोग की असह्य पीडा रही है।

विशेष—१ अलकार—अत्यानुप्रास, अन्योक्ति, उपमा।

२ "**बिन गोपाल····· द्वै टूक**" से तुलना कीजिए—

"**हृदय न बिछरेऊ पक इमि, बिछुरत प्रीतम नीर।**"

—'तुलसीदास'

पद १६२.

अधिकारी भेद के आधार पर गोपियाँ उद्धव के निर्गुण का खण्डन करती है—

हे उद्धव! यहाँ योग की शिक्षा को कौन हृदयगम कर सकता है! हम अबला नारियाँ, जिनके पति जीवित है, किस प्रकार योग के वैराग्यपूर्ण पथ पर चल सकती है। हमसे इतनी दुष्कर साधनाएँ नही हो सकती, न हम मौन धारण कर सकती है और न प्राणायाम की साधना कर सकती है एव मन को जो पक्षी के समान चचल, दूरगामी और वेगवान है बाँधकर रखना भी अत्यत कठिन कार्य है। आप ही बताओ जिन्होने सुन्दर, कोमल, भीने वस्त्र धारण किये है वे मृगछाला को किस प्रकार ओढे! हमे योग अपनाने के लिए अन्य किसी गुरु की आवश्यकता नही पडेगी क्योकि हमारे तो एकमात्र गुरु वही है जो आजकल कुबडी कुब्जा के हाथ की माला होकर उसके इंगितो पर नाच रहे है। हमारे मन-सदन के कोने मे बिना मनमोहन के कोई बात जमती ही नही। सूरदास वर्णन करते हैं कि गोपियो ने कहा कि दुख के दमन करने वाले श्रीकृष्ण महाराज कब आयेगे, उद्धव! यह हमे बताओ।

विशेष—अलकार—अ त्यानुप्रास, रूपक।

पद १६३.

प्रिय वियोग मे अपनी तनिक-तनिक सी भूले भी महान् अपराध सा लगने लगती हैं, गोपियों की भी यही स्थिति है। यह पद एक प्रकार से पद सख्या

१२ का प्रतिउत्तर सा बन जाता है जिसमे कुब्जा आरोप गोपियो पर आरोप लगाती है। गोपियाँ कहती है—

हे गोकुल के स्वामी नदलाल आप पुन ब्रज मे आ कर रहिये। यदि आप पुन ब्रज मे आ जाये तो हम आपको वे कष्ट न देगी जो पहिले दिया करती थी। तुम्हे प्रात काल ही जगाकर गौ-चारण के लिए नही भेजा जायगा। मैं आपको माखन खाते से भी न रोकूँगी और उसे खूब लुटाने का अवसर दूंगी। इस सब के लिए मैं कभी भी नद-पत्नी यशोदा से शिकायत नही करूँगी। आपके कृत्यो के दण्ड के लिए सटी और लकुटिया यशोदा के हाथ मे कभी भी न दूंगी। आपकी चोरियो का तथा अन्य अवगुणो का भी वर्णन सबके सम्मुख नही करूँगी। न मै कभी तुमसे मान करूँगी और न हठपूर्वक रति-क्रीडा से पूर्व दान मागूँगी। न तुमसे मुरली बजाने और गाना गाने का हठपूर्वक आग्रह किया जायेगा। न तुमसे चरणो मे महावर लगवाऊँगी और न वेणी मे सुमन गु थवाने का आग्रह करूँगी एव वशीवट के नीचे बैठकर या यमुना के कूल-कछारो पर अपना शृगार करने का आग्रह भी आप से नही करूँगी। मैं आभूषण-युक्त बाहो को तुम्हारे पुष्ट स्कन्धो पर रखकर रास मे प्रवृत्त होने के लिए बाध्य नही करूँगी। मैं अब सकेत स्थल मे बैठ, तुम्हे दूती द्वारा बुलवाऊँगी भी नही। यदि तुम एक बार प्रेम पथ की लाज रखते हुए मुझे दशन दे दो तो मैं तुम्हे सिहासनासीन करके, स्वय तुम्हारे ऊपर चँवर डुलाऊँगी एव इन अपने नेत्रो से तुम्हारे अ ग-प्रत्यग की छवि का माधुर्य पान करूँगी। इसलिए प्राणधन! ब्रज-बिहारी! अब भी दर्शन दो क्योकि अब एक मिलनाशा ही का सम्बल शेष है। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि स्वामी की कौमार्यमयी रूपमाधुरी की दर्शन-लालसा को आज भी ये नेत्र तृषित है।

विशेष—१ अलकार—छेकानुप्रास। २ अन्तिम पक्ति मे पुष्टिमार्गीय भक्ति पद्धति के 'स्वरूप' की रक्षा होती है। ३ सूर-काव्य रीतिकाल की प्रेरक शक्ति है, 'सकेत-कु ज' 'दूती' 'दान-लीला' 'मान' आदि के वर्णन से यह सिद्ध होता है।

पद १६४

प्रेमी-मनोविज्ञान है कि प्रिय को भी हमारी स्मृति आती है या नही यह जानने की प्रबल इच्छा प्रेमी को होती है। इसी मनोदशा का वर्णन करते सूर कहतें है कि—

बाबा नद और माता यशोदा उद्धव से पूछने लगी कि क्या कभी गोपाल लाल को हमारी भी स्मृति हो आती है। हमसे अनजाने मे भी कोई भूल अवश्य हुई होगी, इसी कारण वे आज यहाँ नही आ रहे है किन्तु अब हमारे पश्चात्ताप करने से क्या लाभ ? जब वसुदेव हमारे कृष्ण को छोडकर पुत्री लेने आये थे तो गर्ग मुनि ने भविष्य वाणी की थी कि इस पुत्र को देखकर नद तुम अपना सर्वस्व मत भूलो, अर्थात् तुम इससे अधिक स्नेह मत करो क्योकि यह तुम्हारा नही है और न तुम्हारा रहेगा किन्तु हम अहीर अर्थात् मूढ उस समय इस भविष्यवाणी का महत्त्व न समझ पाये थे किन्तु जब आज प्राणप्रिय गोपाल के अभाव मे प्राण अहर्निश तडपते है, तो उनका कथन यथार्थ लग रहा है।

पद ६५

गोपियाँ कहती है—

आज एक सुन्दर बात की चर्चा है। वह यह कि किसी को कमलनयन श्री कृष्ण ने अपने समान शृगार-प्रसाधन कर यहाँ ब्रज मे भेजा है। अब अन्य कुछ कार्य तो इस समाचार के सुनने पर हो नही सकता, चले श्री कृष्ण की कुशल अवश्य पूछेंगे। उद्धव से ज्ञात हुआ कि अपने आततायी मामा कस को मार कर वसुदेव (और देवकी) को कारागृह से मुक्त कर अपने घर लिवा लाये और कस के पिता उग्रसेन को भी कारामुक्त कर राज्य सौंप दिया। वे स्वय वहाँ शासक है। किन्तु उन्हे जो सुख गायो को चराने मे गोप समाज के साथ मिलता था भला वह सुख अब वहाँ कहाँ ? सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि अब तो चाहे करोडो प्रयत्न कर लो किन्तु कृष्ण यहाँ नहीं आ सकते कारण—

"वै राजा तुम ग्वारि बुलावत, यहै परेखो लेत।"

पद १६६

गोपियाँ जब से कृष्ण-वियुक्त हुई, तभी से उनका कोई कुशल सन्देश प्राप्त न कर सकी किन्तु जब उद्धव कृष्ण की कुशलता का समाचार लाए तो वे प्रसन्नता से प्रमुदित हो उठी। इसी मनोदशा की अभिव्यक्ति गोपी उद्धव से कर रही है—

हे उद्धव! हम सब गोपिकाएँ आज अत्यत भाग्यशालिनी है। जिस प्रकार वायु कुसुमो की सुवास लाकर अलियो को उनका प्रेम-दिवाना बना देता है, उसी प्रकार आपने हमारे प्राणवल्लभ का कुशल-समाचार लाकर हमे ऐसा आनन्दमग्न कर दिया है कि हमारा अग-प्रत्यग उससे पुलकायमान है। आज आपके दर्शन से हमारे समस्त दुख दूर हो गये और हमे ऐसा प्रतीत होता है कि हम प्रियतम कृष्ण से ही मिली है ('सखा सखा कछु अन्तर नाहीं')। यद्यपि आपके रूप मे हमे श्री कृष्ण नही मिले तथापि हमे उनके दर्शन की प्रतीति होती है। जिस प्रकार दर्पण मे पडा प्रतिबिम्ब हाथो की पहुँच से बाहर है किन्तु फिर भी वह दर्शन ही है, उसी प्रकार (सूर कहते हैं कि) आपका दर्शन यद्यपि कृष्ण का दर्शन नही है तथापि उससे परितोष ऐसा ही मिलता है जैसा कृष्ण दर्शन से। अतः आपको यह श्रेय प्राप्त है कि हमने आपके दर्शन से अपनी दुसह विरह-व्यथा को विस्मृत कर दिया है।

विशेष—अलकार—छेकानुप्रास, दृष्टान्त एव उत्प्रेक्षा।

पद १६७

गोपियाँ कृष्ण की पत्रिका के ब्रज आने का समाचार सुन कर परस्पर कहती हैं—

हे सखि! मथुरा से प्रियतम कृष्ण ने पत्रिका प्रेषित की है जिसको उद्धव जी लाये है। सखियो! आकर तनिक सुनो तो कि इसमे क्या लिखा है। इतनी सुनते ही सब ब्रजबनिताएँ अपने अपने घर से दौड आयी और आते ही प्रेमावेश मे पत्रिका अपने हृदय से लगा ली। उसे देख कर उनके हृदयो मे प्रेमाग्नि प्रज्वलित हो उठी जो उनके नेत्रो की अविरल अश्रुधारा से भी न बुझ सकी। सूर वर्णन करते हैं कि गोपियो ने कहा कि इस कृष्ण

विहीन गोकुल के सूनेपन मे हमारा वास वृथा है । बिना उनके हमे यहाँ कुछ भी अच्छा नही लग रहा है । न जाने कौन से अपराध से रुष्ट होकर प्राण-धन ने हमे इस प्रकार विस्मृत कर दिया है ।

विशेष—१. अलकार—अंत्यानुप्रास एव वृत्त्यनुप्रास ।

२ तुलना कीजिए—

> **"उझकि उझकि पद कजनि के पजनि पै**
> **पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं ।**
> **हमकों लिख्यौ है कहा, हमको लिख्यौ है कहा,**
> **हमको लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं ।।"**

पद १६८.

सूर का भ्रमरगीत प्रबध काव्य नही अपितु मुक्तक काव्य है किन्तु यहाँ उसका क्रम प्रबन्ध के समान ही चल रहा है । पद १६६ मे गोकुल मे उद्धव के आगमन से उत्पन्न उल्लास का वर्णन है, १६७ मे पत्रिका का वर्णन है एवं प्रस्तुत पद मे उद्धव उस पत्रिका के विषय को गोपियो को बता रहे है—

हे गोपागनाओ ! भगवान् कृष्ण का सदेश ध्यान पूर्वक सुनो। तुम सब योग-साधना की समाधि मे स्थित होकर हृदय मे ही परम प्रभु का दर्शन करो यह कृष्ण का उपदेश आपके लिए है । वे इन्द्रियो से अगोचर, अनश्वर पूर्णब्रह्म प्रत्येक के अन्त. करण मे अवस्थित हैं । इस बात पर विश्वास करके अपने हृत्कमल मे दृढ निश्चय होकर उनका ध्यान करो । इसी उपाय के द्वारा तुम इस विरह व्यथा से छुटकारा पा सकोगी और तभी तुम्हे ब्रह्म की प्राप्ति होगी । इससे तुम ससार के वास्तविक ज्ञान को जान सकोगी जिसके बिना इस ससार से मोक्ष नही मिलता । इसी प्रस्थापना की पुष्टि वेदादि शास्त्र द्वारा होती है । सूरदास जी कहते हैं कि गोपियाँ श्री कृष्ण के इस कटु सदेश को सुन कर विलख-विलख कर रोने लगी । वे अपने विरह का तो वर्णन क्या करती, उनके नेत्रो से तो अश्रुओ की अविरल धारा का प्रवाह रुका ही नही ।

विशेष—१. अलकार—छेकानुप्रास । २. उद्धव शकर के 'ऋते ज्ञानान्न मुक्ति.' का आश्रय लेकर अपने मत का कथन करते हैं ।

पद १६६.

कृष्ण द्वारा प्रेषित उद्धव के योग सदेश को सुनकर गोपियाँ कहती हैं—

हे अलि ! तुमने क्यो अपनी सुबुद्धि का दिवाला निकाल दिया है जो हमे योगोपदेश देते हो । तुम्हारे इस योगोपदेश की इस कृष्ण प्रेम-पगी ब्रजभूमि मे उपेक्षा हो रही है, इसलिए बुद्धिमत्ता इसी मे है कि आप इसे छिपा कर रखे, किसी से इसका कथन तक न करे । तुम आत्मस्थित ब्रह्म के दर्शन यहाँ ब्रज के गली-कूचो मे करते फिर रहे हो ? वह तो घट घट व्यापी है, अतः उसके दर्शन के लिए एकान्त की आवश्यकना है । व्यर्थ मे इस निर्गुण की पोटली को बगल मे दवाए, साथ-साथ लिए फिरते हो, यहाँ तो इसका ग्राहक कोई भी नही है । तुम हमारी विरह व्यथा को हेय दृष्टि से देखते हो किन्तु प्रेम की तीव्र व्यथा का अनुभव उसे ही हो सकता है जिसने कभी प्रेम किया है । तू तो सर्वथा शुष्क हृदय है, यदि तुझे हमारी बातो का विश्वास नही तो तू उन्ही (श्री कृष्ण) से पूछ कर देख लेना कि प्रेम का मार्ग कैसा व्यथापूर्ण है । तुम बडे महाराज के बडे दूत हो इसीलिए तुम्हारा ज्ञान बडा ही कहलायेगा । सूरदास वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि तुम अपने को बडे मानते सही किन्तु हो तो मल (गोबर) से ही उत्पन कीडे (विश्वास है कि भ्रमर गोबर से जन्म लेता है) अत वे निम्न कोटि की बाते तुम इस निकृष्ट वस्तु से जन्म लेने के कारण नही छोड सकते ।

विशेष— १ अलकार— अत्यानुप्रास । २ 'बूझि देखिबे आई' मे भाषा का सहज प्रवाह और अभिव्यजन शक्ति की रवानगी देखते ही बनती है ।

पद १७०.

गोपियाँ वियोग के कारण परिवर्तित अपनी स्थिति पर पश्चात्ताप प्रकट करती कहती है—

हे सखि भाग्य की कैसी विडम्बना है । जिन गोपिकाओ ने कृष्ण के श्री मुख से अमृतमयी वशी की स्वर-लहरी सुनी थी उन्ही को आज भ्रमर जैसे कीट से ज्ञान की चर्चा सुननी पड रही है । जिस रसभूमि ब्रजभूमि मे कृष्ण की प्रेममयी क्रीडाओ की सखियो द्वारा निरन्तर चर्चा चला करती थी, अब

वहाँ भ्रमर अपनी ज्ञान-कथा बघार रहे है। ब्रह्मा ने यह सब परिवर्तन हमारे देखते ही देखते कर दिया। आप कहते है कि योग-साधना द्वारा चचल मन को केन्द्रित करो किन्तु जब तक हमारे रास-विहारी प्राणधन का अस्तित्व है, तब तक हमारा मन अन्यत्र कैसे भटक सकता है वह तो उनके प्रेम मे स्थिर है। आप अपने मुख से न जाने किस अरूप का प्रलाप कर रहे हैं, इन बेसिर-पैर की बातो से लगता है कि आपका कथन वैसा ही है जैसा कोई ठग किसी को ठगने का उपक्रम करता है। आपके ब्रह्म की योग-साधना को शास्त्र-सम्मत मानते हुए भी मन कृष्ण को भुलाने को तत्पर नही। हमारा आलिगन करने वाले नन्दनन्दन के कमल-कोमल हाथो की सुन्दर छबि आज भी हमारे मुख और वक्षस्थल के लिए वैसी ही है। सूर वर्णन करते है कि उद्धव ने देखा कि वे सब ब्रजबालाएँ एक से एक बढ कर चतुर है। वे उद्धव के तर्कों से विचलित हो कृष्ण प्रेम के समुद्र की ओर प्रवहमान होने से विमुख नही होती।

विशेष—अलकार—वृत्त्यनुप्रास, अंत्यानुप्रास एव अन्तिम पक्ति मे रूपक।

पद १७१

गोपियाँ गौओ की विरह व्यथा बताकर यह स्पष्ट करना चाहती है कि जिसके वियोग मे पशु-समाज इतना व्यथित है, उसकी स्मृति मे सहचरो की क्या स्थिति होगी ? गोपियाँ उद्धव से कहती है कि—

हे उद्धव ! तुमसे अधिक क्या कहे, तुम कृष्ण से जाकर इतना अवश्य निवेदन कर देना कि आपके वियोग मे आपकी प्रिय गाये अत्यन्त दुखी है और वे इसी कारण बहुत दुबली हो गयी है। जब कभी कोई आपके नाम का उच्चारण करता है तो वे रम्भा उठती है और उनके नेत्रो से जलधारा का अविरल प्रवाह फूट पडता है। जहाँ-जहा आप उनका दुग्ध दुहते थे उसी-उसी स्थान पर जाकर वे आपकी खोज करती है। जब आप नही मिलते हैं तो वे दुखी होकर उन्ही स्थलो पर पछाड-खा-खा कर गिर पडती है। सूर वर्णन करते है कि गोपियाँ कहती है कि कृष्ण के अभाव मे उनकी स्थिति ऐसी हो गई है जिस प्रकार जल मेसे निकली हुई मछलियाँ तडपती।

विशेष—१ अलकार—अतिशयोक्ति, वस्तूत्प्रेक्षा, छेकानुप्रास । २ कालिदास ने भी शकुन्तला के वियोग मे समस्त चराचर को इसी प्रकार दुखी दिखाया था—

"उदगलितदर्भकवला मृगी, परित्यक्तनर्तना मयूरी ।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लता ।।"

पद १७२

उद्धव प्रति गोपी वचन—

हे उद्धव ! आप हमे योग साधना की शिक्षा देकर कैसा विपरीत कार्य कर रहे है । प्राणधन कृष्ण ने आपको शृगी, विभूति, आधारी, मुद्रा आदि योग-साधना के विभिन्न उपकरण हमारे लिए देकर भेजा है । यदि उन्हे यह योग का सदेश ही लिखकर प्रेषित करना था तो व्यर्थ क्यो हमे रास रस मे सलिप्त किया था । जब उन्होने हमे अपने अधरामृत का पान कराया था, तब क्यो नही यह ज्ञान का उपदेश दिया ? कृष्ण आज हमारे उस असाधारण प्रेम को विस्मृत कर बैठे है जब हम उनकी वशी की मधुर स्वर-लहरी को सुन पति-पुत्र, गृह-द्वार सब को त्याग कर उनके आमन्त्रण पर आ जाती थी । सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि हम श्याम से विलग होकर आज पछता रही है ।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास एव वृत्यनुप्रास ।

पद १७३.

गोपियाँ अपनी असहाय विरहावस्था को भाग्य-प्रदत्त मानती उद्धव से कहती है—

हे उद्धव ! हम अपनी इस विरहावस्था के लिए किसी को दोषी नही ठहरा सकती, जो हमारे प्रारब्ध मे था उसे प्राप्त कर रही है । जो विधान ब्रह्मा ने हमारे लिऐ रच दिया था वह तो होकर ही रहेगा । इसलिए अपनी वर्तमान असह्य विरह-वेदना का पश्चात्ताप करना वृथा है । आज तो कुबडी कुब्जा मनमोहन कृष्ण सा सुन्दर पति पा रही है और आप हमे योग का नीरस, कठिन उपदेश दे रहे है । आपको जो हम आज्ञा दे रही है उसे ध्यान-

पूर्वक सुनकर कृष्ण से यह निवेदन करना कि यदि आप हमे अपनी रूपमाधुरी का दर्शनामृत प्रदान कर दे तो आपकी महती कृपा होगी।

पद १७४

गोपी उद्धव से कहती है—

हे उद्धव! हम इस पत्रिका को लेकर क्या करे? इससे हमारी विरह-वेदना का शमन तो होता ही नही। हमे तो जब तक श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी का दर्शन नही हो जाता तब तक हृदय विरह से सतप्त रहेगा। मुझे एक क्षण के लिए भी शरद्-ऋतु मे व्यतीत क्रीडामय रात्रियो की मधुर स्मृतिया विस्मृत नही होती। जब हमारे यौवन मे कामदेव का पदार्पण हुआ, तभी कृष्ण ने हमारा चित्त चुरा लिया था। हे उद्धव! तुम हमारी विरह-व्यथा का अनुभव क्या कर सकते हो, अन्तत हो तो तुम निर्मोही कष्ण के सखा ही। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने विनम्र निवेदन किया कि आप हमारी ओर से प्राणवल्लभ कृष्ण से अच्छी अच्छी बातें ही कहना जिससे वे दर्शन देने के लिए प्रस्तुत हो सके।

विशेष—१ अलकार—अत्यानुप्रास। २ स्मृति सचारी का उद्दीपन रूप मे वर्णन हुआ है।

पद १७५

उद्धव सगुणमार्गी प्रेम-पद्धति का दोष बताते कहते है कि विरह-वेदना का असह्य ताप ही इस प्रेम का फल है। गोपियाँ प्रत्युत्तर देती कहती है कि विरह प्रेम की परिपक्वता के लिए आवश्यक है। वे उद्धव से कहती हैं—

हे उद्धव! विरह प्रेम को परिपक्व करता है—

"न विना विप्रलम्भेन संयोग पुष्टिमश्नुते।"

जिस प्रकार बिना पुट दिये कपडे पर रग नही चढता (रग को गरम करके पुट देने से ही पक्का रग होता है), जिस प्रकार जल को अमृत सदृश शीतल और सुस्वादु करने के लिए घड़े को आँवे की अग्नि मे दहकना पडता है, जिस भाँति बीच बीच मे से चिरकर अपने अन्तर मे अकुर धारण करने पर ही असख्य फलो को देने वाला विटप बनता है, और जिस प्रकार शूरवीर

को सूर्य के रथ से भी ऊपर स्वर्ग मे परम पद प्राप्त करने के लिए युद्ध-स्थल मे बाणो की निरन्तर वर्षा को सहन करना होता है, उसी प्रकार प्रेम को परिपक्व करने के लिए विरह वेदना का सहन करना भी आवश्यक है। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि हममे से कोई .भी गोपाल-कृष्ण के प्रेमपथ के दुखो से भयभीत नही हो सकती, जल मे रहती हुई मछलियो को जिस भाँति कोई वेदना नही होती उसी प्रकार हम भी इस प्रीति-रीति के दुखो से नहीं डरती—

"सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। जिमि हरिशरण न एकौ बाधा॥"

—तुलसी

काव्य-सौन्दर्य—१ अलकार अन्त्यानुप्रास, रूपक, उदाहरणमाला। २. प्रस्तुत पद के भाव से तुलना कीजिए—

"वेदना में ही तप कर प्राण
दमक दिखलाते स्वर्ण हुलास।"—"पन्त"

× × ×

' Seperation is the fan to the fire of love "

\+ + +

"आप जितने दूर रहिये मुझसे ऐ बंदानवाज,
औ' मौहब्बत मे तरक्की ऐ सनम हो जायेगी।"

पद १७६

गोपियाँ किसी न किसी प्रकार प्रियतम कृष्ण तक अपनी असह्य विरह-वेदना का समाचार पहुँचाना चाहती है, यहा वे व्यग्य रूप से, प्रिय की हित चिन्ता के माध्यम से अपनी विरह-व्यथा का निवेदन करती है—

हे उद्धव ! आप कृष्ण तक हमारा सदेश पहुँचा दो कि आपकी समस्त प्रियाएँ यह कहती है कि आप इस समय मथुरा रहे तो अच्छा है। हे उद्धव आप तो देखते ही है आजकल चन्द्रमा भी सूर्य के समान दाहक है। अत्यन्त कोमल और सुन्दर श्यामल शरीरधारी कृष्ण चन्द्रमा के इस असह्य ताप को किस प्रकार सह सकते है ? मधुर स्वरभाषी कोकिल और मोर आजकल वनो एव बाटिकाओ मे द्रुमों पर चढकर कठोर स्वर मे बोलते है। ब्रज की

गलियो में (तुम्हारे बिना) घूमते हुए गाय और बछडे शेर और भेडियो के समान भयकर लगते है। गृह, आसन, भोजन, वस्त्रादिक सब विष के समान और आभूषण आदि शृंगार साधन सर्प के समान कष्टप्रद लगते है। सैकडो कामदेव इधर-उधर पुष्पित वृक्षो पर चढकर अपने धनुष का प्रहार करते है। सूर कहते है कि गोपियो ने उद्धव से कहा कि आप तो उदारमना है, सब रीति और आचार व्यवहारो के जानने वाले हैं, प्राणवल्लभ श्री कृष्ण को हम ब्रज से इन बाधाओ और व्याधियो को दूर किये बिना, कैसे बुलाएँ।

विशेष—१ प्रकृति के समस्त उद्दीपक उपकरणो का वर्णन व्यग्यात्मक रूप मे हुआ है।

२ तुलना कीजिए—

"ऊधो यह सूधौ सो सदेसो कहि दीजो भलो,
हरि सौं, हमारे ह्याँ न फूले बन कुज है।
किंसुक, गुलाब, कचनार औ अनारन की
डारन पै डोलत अंगारन के पुँज है।"

पद १७७.

उद्धव ने ब्रह्म को अन्तरवासी बताया था, गोपियाँ उसी के प्रत्युत्तर मे कहती है—

हे उद्धव! जो प्रियतम पूर्णब्रह्म श्री कृष्ण हृदय मे स्थित है तो ये हमारी इतनी उपेक्षा किस प्रकार कर रहे है। उनकी उपस्थिति मे तो दावानल द्रुमो को भी नही जला पाता था और अब क्यो हमारा शरीर इस विरहाग्नि से दग्ध हो रहा है? हमारे इस विरह-वह्नि-प्रज्वलित शरीर को भगवान् श्री कृष्ण हृदय से निकल कर शीतल क्यो नही करते? आज पुन उनके वियोग मे इन्द्र क्रुद्ध होकर नेत्रो द्वारा प्रबल वर्षा कर रहा है, जो एक पल के लिए भी नही रुकता। उसी के भय से भयभीत होकर हम भीग रही हैं और हमारा शरीर प्रकम्पित हो रहा है। आज वे गोवर्द्धन पर्वत को धारण करके ब्रज की रक्षा क्यो नही करते? हाथ के ढीले कगन और दर्पण मे दुर्बल मुख को देखने पर वियोग की इस असह्य अवस्था मे हमे और भी

पीडा और आक्रोश होता है। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि इतने पर भी हे उद्धव ! हम विरहणियाँ गोपिकाएँ कृष्ण-प्रेम को ही अपनायेंगी, योग को नही।

पद १७८

उद्धव से गोपियाँ प्रार्थना करती है कि आप कृष्ण से ब्रज की विरह-सतप्त दशा का यथातथ्य वर्णन कर देना जिससे उन्हे हमारी असह्य वेदना का ज्ञान हो जाय और वे यहाँ आ जॉय। गोपियाँ कहती है—

हे उद्धव ! आप हमारा इतना उपकार अवश्य करना कि इस ब्रज के जितने भी क्रिया कलाप है सबका उल्लेख कृष्ण से कर देना। यह विरह की दावाग्नि हमे किस प्रकार दग्ध कर रही है, यह आप स्वय अपने नेत्रो से देख रहे है। हम अपनी अवस्था का वर्णन कहाँ तक करे, अधिक कहते भी लज्जा आती है। इस असह्य वेदना को हम जिस प्रकार सहन करती है, उसे हम ही जानती है। कामदेव अपने विभिन्न उपकरणो से न जाने कितने प्रहार करता है, हृदय वेदना-व्याकुल होकर फटा चाहता है। सूर वर्णन करते हैं कि गोपियो ने कहा कि यह शरीर इस विरह-वह्नि से जलकर इसलिए भस्म नही हो पाता कि नेत्रो से अश्रुओ का अविरल प्रवाह नही रुकता।

विशेष—अलकार– अत्यानुप्रास एव काव्यलिंग।

पद १७९

गोपियाँ उद्धव से विरह का वर्णन दावानल के रूप मे करती हैं—

हे उद्धव ! इस ब्रज मे विरहाग्नि अत्यत तीव्र होकर बढ रही है। इसके कारण गृह, द्वार, नदी, वन-उपवन, लता एव विटप—सभी दग्ध हो रहे हैं। अहर्निश चारो दिशाएँ इस अग्नि के धुएँ से आकुलित रहती है और बडी भयावनी लगती है। इस अग्नि ने ब्रज मे बडा उत्पात खडा कर रखा है। ज्यो ज्यो पानी डालती हैं, अश्रु गिराती है, यह अग्नि, विरह ताप, बढ़ता ही जाता है। समस्त ब्रज अब तक जल कर भस्म हो जाता शेष इसलिए है कि सब 'कृष्ण-कृष्ण' मन्त्र का जाप कर रही है। भाव यह है कि अब तक समस्त ब्रज नष्ट हो जाता किन्तु उसे आपके नाम-स्मरण का ही अवलम्ब है।

सूरदास वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि इस विरहानल से मुक्ति अब नदलाल श्री कृष्ण के दर्शन बिना नही हो सकती ।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास, अतिशयोक्ति एव काव्यलिंग ।

पद १८०.

गोपियाँ उद्धव से कहती है—

हे उद्धव ! आप हमारी विरह-व्याकुल दशा का इस प्रकार वर्णन करना कि श्री कृष्ण गोकुल लौट आवे । वे कुछ दिन मथुरा मे रह लिए यह पर्याप्त है किन्तु अब यहाँ लौटने का विलम्ब न करे । हे प्राणपति ! आपके अभाव मे हमे यहाँ कुछ भी अच्छा नही लगता, घर और वन हमे कुछ भी रुचिकर नही । आपके वियोग मे ग्वाल-बाल बिलख-बिलख कर दुखी होते है, गौएँ मुख से एक तिनका तक नही चरती एव उन्हे अपने स्वाभाविक कर्मो से भी ऐसी विरक्ति हुई है कि बछडो को दूध तक भी नही पिलाती । उद्धव ! आप यह समस्त स्थिति स्वय अपनी आँखो से देख रहे हो, हम ही आपको अपनी ओर से क्या बताये ? सूरदास जी वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि हम रात दिन इस विरह ताप से सतप्त रहती है, कृष्ण के मिलने पर ही हमे शान्ति हो सकती है ।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास, अतिशयोक्ति एव स्वभावोक्ति ।

पद १८१

गोपियाँ उद्धव से कहती है—

उद्धव ! जो अब इस दयनीय विरहावस्था मे भी कृष्ण नही आये तो तुम तनिक हृदय मे विचार कर तो देखो कि हम किस प्रकार इस असह्य विरह वेदना को सहन कर पायेगी । तुम कहते हो कि कृष्ण का तुमसे कोई सम्बध नही है तनिक उनसे जाकर पूछ आना कि वे किसके आत्मज है ? वे तब यही उत्तर देगे कि नद और यशोदा के । वे हमारे साथ क्रीडा रत रहके बड़े हुए है, उस ससर्ग की स्मृति को वे भुला नही सकते । आप कहाँ तक कृष्ण के विषय मे यह मिथ्या प्रचार करेगे कि वे मथुरावासी है ? अब हमारी इच्छा अपने समस्त समाचार लिखकर कृष्ण को पत्रिका प्रेषित करने की है किन्तु वहाँ तक हमारी पत्रिका भी नही पहुँच सकती । और तो और इन

गायो ने भी उनके बिना चरना छोड दिया है। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि यदि इस अवस्था मे भी कृष्ण ने हमे दर्शन न दिये तो हमारा अस्तित्व शेष नही रह जायगा और उन्हें फिर पश्चात्ताप करना पडेगा कि यदि मैंने पहले दर्शन दे दिया होता तो कदाचित् वे बच जाती ।

पद १८२

उद्धव से गोपिकाएँ अपने कर्त्तव्य की कठोरता का वर्णन कर रही है—

उद्धव! हमारे लिए जीवन और मरण दोनो कठिन है। हे धूर्त! तू कहता है कि यदि मनुष्य को जीना है तो ज्ञानी बन के जिए और ज्ञानी बनने का तात्पर्य है योग धारण करना जो हमारे श्रेय नही है। यदि इस शरीर का परित्याग करती है तो हम सदा-सदा के लिए उनकी रूपमाधुरी के दर्शन लाभ से वचित हो जायेगी। यदि हम जीवन पर्यन्त कृष्ण के गुणगान ही करती रहेगी तो शुक देव और सनक-सनन्दन आदि ऋषियो की कोटि मे परिगणित होगी जो हमे अलभ्य नही। यदि हम कृष्ण के पास पहुँच जाये तो प्रेम-लीलाओ की लोभी स्वार्थिनी कहलायेंगी। यदि हम श्याम के आने की अवधि तक आशा का अवलम्ब लेकर बैठे तो यह हमारा स्वाभाविक एव धर्मानुकूल कृत्य बताया जायगा, जैसा कि स्वकीयाओ का कर्त्तव्य माना जाता है। हम समस्त ब्रजबालाएँ कुलीन और श्याम की अनन्य प्रेमिकाएँ इस समय विरह-व्यथा से आकुलित है। इस विरहाम्बुधि से पार जाने के लिए हमारा एक मात्र आधार मुरलीधर भगवान् नदनन्दन है। सूर वर्णन करते है कि गोपियों ने कहा कि यहा ब्रज मे अहर्निश मदमस्त हाथी के रूप मे कामदेव उपद्रव मचाता फिरता है, यदि इस विपन्नावस्था मे भी सिह रूपी हरि (हरि—केहरी) न आये तो यह मदोन्मत्त मदन-हाथी समस्त गृहादिको को तोड-फोड देगा अर्थात् हमारा सर्वनाश कर देगा।

विशेष—१ अलकार—अत्यानुप्रास, रूपक। २. सूर के कृष्ण मे लोक-रक्षक भाव भी है इसका प्रमाण अन्तिम चरण है।

पद १८३

यद्यपि गोपियो की भक्ति और प्रेम सख्य भाव की है तथापि अपनी अतिशय निरीहता एवं विनम्रता मे कही-कही वह दास्य भाव की भक्ति सी

लगती है। प्रस्तुत पद मे गोपियो की ऐसी ही स्थिति है। वे उद्धव से कहती है—

हे उद्धव ! उन चरण कमलो के दर्शन को बहुत समय व्यतीत हो गया। उन चरणो के दर्शनाभाव मे हम बहुत दुखी एव सन्तप्त है एव क्षण प्रतिक्षण नवीन आपत्तिया सहन करती है। रात्रि मे यह विरह-व्यथा और अधिक बढ जाती है। हमारा मन उन्मत्त सा रहता है घर और बाहर कही भी उसे शान्ति नही। हम दिन भर उनके आगमन की प्रतीक्षा करती है किन्तु वे नही आते इसलिए नेत्रो से अश्रुओ का प्रवाह उमडकर वक्षस्थल पर गिर-गिर कर सरिता के रूप मे वेग से प्रवाहित होने लगता है। उनके आगमन की आशा के आधार पर ही हम अपनी आयु व्यतीत कर रही है। सूरदास जी कहते है कि यह दुःसह्य विरह-वेदना इन कोमलागी ब्रजबालाओ से कैसे सहन होगी ? (अत हे प्रभु दर्शन दो।)

पद १८४

गोपियाँ उद्धव से कहती है —

हे उद्धव ! आप हमे इस कठिन विरहावस्था मे भी योग का उपदेश दे रहे है, आपके इस कृत्य के लिए हम क्या कहे, कुछ समझ मे नही आता। हमारी जिस रसना ने प्रियतम कृष्ण के अधरामृत का पान किया है वह योग-आराध्य निर्गुण का गुणगान किस प्रकार करे ? जिन नेत्रो ने सौन्दर्य स्नात कृष्ण के अग-प्रत्यग की रूप-माधुरी का अवलोकन किया है, वे अन्यत्र भटक कर निर्गुण की खोज कैसे करे ? जिन कानो ने मधुर वशी की स्वर-लहरी मे अनेक राग रागनियाँ सुनी है उन्हे योग सदेश की कटु बाते कह कह कर ककडियो से चोट क्यो पहुँचा रहे हो ? सूरदास वर्णन करते हैं कि गोपियो ने कहा कि हमने श्री कृष्ण के गुणो पर भली प्रकार विचार कर लिया है, हम निर्गुण को नही अपना सकती। हे भ्रमर ! तुम्हारा हमे योग सिखाने का प्रयत्न सर्वथा निष्प्रयोजन है, भला कही स्वर्णलता से मुक्ता उत्पन्न हो सकती है, उसके तो रगो की चमक ही देखी जा सकती है।

विशेष—अलकार अत्यानुप्रास, छेकानुप्रास।

पद १८५.

गोपियाँ योग अपनाने मे अपने नेत्रो की विवशता का कथन उद्धव से करती हैं—

हे उद्धव ! हमारे इन नेत्रो ने कृष्ण-प्रेम का व्रत धारण कर रखा है। नेत्रो ने कृष्ण की अनन्य प्रीति को अपनाया है, इसलिए इन्हे इनके अतिरिक्त अन्य कोई दृष्टिगत ही नही होता। जिस प्रकार चकोर की चन्द्रमा से एव चातक की मेघ से अनन्य प्रीति होती है, उसी भाँति इन नेत्रो ने भी नदलाल से अपनी अनन्य निष्ठा लगाई है। हे उद्धव ' तुम इनको आर्काषित करने के लिए ज्ञान-सुमन लाये हो चचल वृति (भ्रमर) तुमने यह कोई अच्छा कार्य नही किया, (सूर कहते है) क्योकि इन्हे हरि के कमल समान मुख की रूप सुधा की ही अभिलाषा है, ये उन्ही का दर्शन करना चाहते है, अन्य आकर्षण इनके लिए निस्सार है।

विशेष— अलकार— अत्यानुप्रास, लुप्तोपमा, रूपक।

पद १८६

गोपियाँ किसी न किसी प्रकार कृष्ण को ब्रज मे बुला लेना चाहती है। यहाँ वे कृष्ण के शत्रुओ के त्रास का कथन करती है जिनका कृष्ण ने ब्रज-वास के समय नाश किया था। वे कहती हैं—

हे उद्धव ! तुम कृष्ण से कहना कि ब्रज मे वे शत्रु पुन जीवित हो गये हैं जिनका उन्होने हमारी रक्षा के निमित्त सहार कर दिया था। यहाँ नित्य रात्रि के वेष मे पूतना राक्षसी आती है जिसके त्रास से हमारे हृदय प्रकम्पित हो उठते हैं। उसके स्तनो के विषाक्त दुग्ध से हमारे प्राणो की रक्षा सूर्य आकर करता है अर्थात् सूर्योदय होने पर ही रात्रि मे होने वाले कष्टो की परिसमाप्ति होती है। जहा हमने प्रेम-क्रीडाए की थी वह वन हमारे लिए वृकासुर एव अपना घर भी अघासुर के समान प्रतीत होता है, फिर हम कहाँ रह कर निर्वाह करे। हमारी केलि-क्रीडाओ का प्रिय रम्य स्थल यमुना करोडो कालिय नाग के समान है अर्थात् उसे देखकर पूर्वस्मृतियाँ कालिय नाग के समान वेदनादायक होकर जग जाती हैं इसी कारण उसका जल भी अपेय हो गया

है। हमारे विरह के उतप्त दीर्घ उच्छ्वास ही तृणावर्त राक्षस के समान हो रहे है जिससे हमारे समस्त सुख नष्ट हो गये है । सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि प्राणवल्लभ केशव के बिना समस्त क्रिया-कलाप केशी राक्षस के समान व्यथा दायक है। अब हम आपकी शरण का आश्रय छोडकर किसकी शरण जाँय ? भगवान् कृष्ण अब आप ही हमारे रक्षक है ।

विशेष—१. अलकार—अत्यानुप्रास, छेकानुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुत प्रशसा । २ समस्त राक्षसो का उल्लेख भागवत के दशम स्कन्ध मे वर्णित लीलाओ के आधार पर किया गया है। ३ सूर मे भी लोकरक्षक तत्व अवश्य है, प्रस्तुत पद इसका निदर्शन है।

पद १८७.

गोपी वचन उद्धव प्रति—

हे उद्धव ! प्रियतम कृष्ण से वियुक्त होकर हम विरह के कितने घावो की वेदनाएँ सह रही है, यह आपको कैसे बताये ? इस विरह से तो अच्छा था कृष्ण प्रारम्भ से ही मथुरा मे रहते, यशोदा के यहाँ आकर व्यर्थ ही हमे सयोग की स्मृतियो का दु ख दिया। गोप रूप मे श्री कृष्ण ने यहाँ अनन्त प्रेममयी क्रीडाएँ करके व्यर्थ मे हमे सुख प्रदान किया, क्योकि उन सुखो की स्मृति ही अब हृदय को व्यथित करती है। गोवर्द्धन पर्वत को धारण कर इन्द्र के घमड को चूर करना, वन मे विविध क्रीडा-युत रास लीला करना आदि आदि कार्यों की स्मृति आज अत्यत दुखदायी है। अब वे हमारे लिए इतने निष्ठुर हो गये है कि योग का अप्रिय सदेश प्रेषित किया है। उद्धव ! तुम चतुर सुजान हो, इसलिए आपके सम्मुख इन सब बातो की चर्चा की (अन्यथा ये सब 'गुपुत मते की बाते' है) । सूरदास जी वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि हम अपनी क्या कहे, हम तो उनकी सहचरी मात्र थी, जब उन्होने अपने जननी-जनक यशोदा और नद तक को विस्मृत कर दिया है।

विशेष—अलकार—अंत्यानुप्रास एव स्वभावोक्ति । २ विरह मे पूर्व स्मृति का दुःख अत्यत कष्टदायी होता है, इसका वर्णन विरह के अन्तर्गत सब कवियों ने किया है। हरिऔध जी तो स्मृति के सृजन पर ही विधाता को दोषी

ठहराते है—

"यदि विरह था विधाता ने रचा तो
स्मृति रचने में कौन सी चातुरी की ।"—'प्रियप्रवास'

पद १८८

गोपी वचन उद्धव प्रति—

उद्धव ! इस समय कृष्ण ब्रज मे न आकर अच्छा ही कर रहे है, आज ब्रज का वातावरण ही ऐसा हो गया है कि उनका वही रहना श्रेयस्कर है। जब वे ब्रज मे थे तब चन्द्रमा और चन्दन शीतल प्रभावदायक थे एव कोकिल की स्वर-लहरी अत्यत मधुर थी किन्तु अब तो समस्त ब्रज का व्यवहार विपरीत हो गया है, चन्दन और चन्द्रमा तो क्या अब तो शीतल समीर भी अग्नि के समान दाहक लगता है। वक्षस्थल की सुन्दर माला, सुन्दर परिधान-चोली आदि समस्त शृगार-उपकरण कटको के समान पीडादायक लगते है और माथे का तिलक-बिन्दु सूर्य के समान दाहक प्रतीत होता है। शयन-शय्या सिंह के समान, घर अधकारमय गुहा सदृश एव कुसुम तथा मणिमाला सर्प के समान अग्राह्य एव भयानक लगती है। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि हम सब ब्रजवासी तो वन मे रहने वाले है इसलिए इन सब कष्टो को सहन कर लेगे किन्तु वे सुखसागर प्रियतम राजा कृष्ण तो भ्रमर के समान सुख के खोजी है, यदि वे यहाँ आ गये तो उनके लिए इन कष्टो को सहन करना असम्भव है, अत अच्छा है कि वे इन दिनो यहाँ नही आ रहे है ।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास, रूपक, अतिशयोक्ति एव अप्रस्तुत प्रशसा।

पद १८९

प्रेमी को अपनी सयोगकालीन त्रुटियाँ विरह मे रह-रह कर खलती है, उनके लिए वह कठोर से कठोर दण्ड और अधिकतम क्षमा माँग सकता है। गोपियाँ इसी मनोभावना की अभिव्यक्ति उद्धव से कर रही है—

उद्धव ! प्रियतम गोपाल से समय पाकर यह विनम्र प्रार्थना कर देना

कि वे मन मे हमारा यदा-कदा स्मरण कर लिया करे। वे अपने मन मे ब्रजवास समय की हमारी त्रुटियो का ध्यान न करे, उनके लिए हम क्षमा-प्रार्थी है। यदुपति दीनदयालु श्री कृष्ण जानते है कि हम अत्यत दीन हैं अत यदि हमने उनके साथ कुछ भलाई की हो तो उसी के साथ हमारी त्रुटियो को भी सहन करे। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि अब वे कृपासिंधु एकबार इस विरह की अग्नि मे जलती हुई गोपिकापो को दर्शन अवश्य दे। अब अधिक क्या कहे, वे कम से कम हमारे साथ रहने की प्रतिज्ञा को तो पूर्ण करे।

पद १९०

गोपाल-लाल के दर्शनामृत की पिपासु गोपिकाएँ उद्धव से कहती है—

उद्धव ! आप नन्दलाल से इतना निवेदन कर देना कि हे ब्रजपति यद्यपि आपने ब्रज को पूर्ण अनाथ कर छोड दिया है किन्तु फिर भी कृपा करके एक बार आकर दर्शन दे दो। आप हमसे बिल्कुल ही सम्बंध-विच्छेद कर रहे है, कम से कम सहवास का विचार रखते हुए हमे दर्शन दे देना। प्रभु ! आपको अपनी दासानुदासियो का इतना तो विचार करना होगा कि आप हमारे अवगुण और त्रुटियो को ध्यान मे लाकर रुष्ट न हो। आपके अति-रिक्त हमे स्वप्न में भी कोई अवलब नही है, अतः आप से वियुक्त होकर हम जीवन रहित है। सूरदास कहते है कि गोपियो ने कहा कि हे प्रभु ब्रजनाथ ! आपने यह योग का सदेश भेजकर कौन सा न्याय किया ? कहाँ योग की दुर्वह साधनाएँ और कहाँ विरह-विक्षुब्ध गोपिकाएँ,

विशेष— अलकार—अत्यानुप्रास, छेकानुप्रास एव लोकोक्ति।

पद १९१

गोपियाँ योग को अपनाने मे उद्धव से अपनी विवशता बताती कहती है—

उद्धव ! हम जानती है कि श्री कृष्ण कितना प्रयत्न करके हमारे कल्याण के लिए योग का उपदेश प्रेषित कर रहे है। हम उनकी इतनी अवज्ञा नही कर सकती थीं किन्तु विवशता यह है कि मन पर हमारा अधिकार नही है। हमारे वज्राधिक कठोर हृदय मे एक ऐसी भावना रहती है जो कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी का ज्ञान नही रखती। उनके सयोग के समय हमे

अपने और उनके मध्य वस्त्र का व्यवधान भी अप्रीतिकर था किन्तु भाग्य की विडम्बना कि आज हमारे और उनके बीच यमुना की अथाह बालुका-राशि ही दृष्टिगत होती है। (सूर कहते हैं) आपके दर्शनार्थ हम अबसे ही आपकी शरण मे पडी हैं, कभी तो आपसे मिलन होगा ही। गोपी ने कहा कि अब मुझे उन लीलाविहारी श्री कृष्ण के दर्शन के बिना शाति प्राप्त नही हो सकती जिसे वेदादि शास्त्र ग्रथ 'नेति नेति' कहकर चुप हो जाते है।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास।

पद १९२

गोपियाँ उद्धव से कहती है —

उद्धव! श्री कृष्ण ने यह कैसा व्यवहार किया कि मथुरा जाकर उन्होने राज्य-व्यवस्था मे तो अपने को प्रवृत्त कर लिया किन्तु गोकुल को सर्वथा विस्मृत कर दिया? हमने एक बार ही तो उन्हे ऊखल से बाँध दिया था, उसी का इतना बुरा मान गये, वे जब तक ब्रज मे रहे तब तक हमने उनकी निरन्तर सेवा की, उसका कोई ध्यान उन्होने नही किया। अस्तु। कुछ भी हो चाहे कृष्ण करोडो प्रयत्न करें तो उन्हे अनेक राजदुलारियाँ मन बहलाने के लिए भले ही मिल जाँय किन्तु नन्द और यशोदा से माता-पिता मिलना नितान्त असम्भव है। इसके साथ-साथ ममतामयी गौएँ, अपूर्व प्रेमी गोप-समाज और दूध-दही तो उन्हे सर्वथा अप्राप्य है। सूर वर्णन करते हैं कि गोपिकाओं ने कहा कि उद्धव! अब तो आप वही उपाय कीजिए जिससे श्री कृष्ण पुन ब्रज मे आ जाँय।

पद १९३

गोपियाँ उद्धव और कृष्ण दोनो पर व्यग्य करते हुए निर्गुण का खण्डन करती है—

हे उद्धव! बारम्बार वर्जित करने पर भी आपको योग का उपदेश नही देना चाहिए।- किन्तु तुम हमारी बात भला क्यो कर मानोगे तुम भी,तो कृष्ण के समान श्याम-वर्ण के कुटिल हो। भला कालो को धोकर श्वेत कैसे किया जा सकता है? भाव यह है कि आपको कितना भी समझाया जाय

किन्तु आप अपना हठ नही छोड सकते। तुम बार बार अपनी इस योग कथा का कथन करके हमे दुख से अचेत कर रहे हो। भला क्यो इस पट्ट भूमि मे गोता मारते हो अर्थात् निष्फल प्रयत्न करते हो, हम तो भूड के उस खेत के समान है जिसमे प्रयत्न करने पर भी कुछ नही उपजता अर्थात् तुम्हारे योग का अकुर भी गोपियो के हृदयो मे नही उपज सकता। आपसे कहना इस लिए भी व्यर्थ जा रहा है कि बाँसो के शुष्क कुल मे उत्पन्न कीट (भ्रमर) दूसरो को हित चिन्ता की बात क्या जाने ? वह तो केवल बाँसो को स्वार्थ वश, घर बनाने के लिए काटता है। तू दूसरो को तो अपना इष्ट छोड कर अन्य इष्ट अपनाने को कहता है किन्तु अपने बास को भी काट देने वाले दाँतो से पद्मकोष को क्यों नहीं काट देता ? उसमे तो बन्दी होकर पडा रहता है अन्यत्र नही जाता। तू इतना धूर्त, छली, उद्दण्ड और दोषी है कि तेरी बातो का विश्वास नही किया जा सकता। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि तू इस योग के सदेश को लेकर फिर कभी मत आना। यदि तेरे स्वामी कृष्ण को हमे निर्गुण का ज्ञानोपदेश ही देना है तो वे स्वय आकर योगोपदेश दे।

विशेष— १ अलकार—वृत्त्यनुप्रास एव अन्योक्ति। २ भाषा की वर्णन-शक्ति देखते ही बनती है जिसमे मुहावरो के प्रयोग से और भी सशक्तता एव प्रवाह आ गया है।

पद १६४

गोपियाँ निर्गुण का खण्डन करती हुई उद्धव से निवेदन करती है—

उद्धव ! आप इस ज्ञान कथा को छोडकर और कोई चर्चा करो। कृष्ण के गुणो को छोडकर बारम्बार इस ज्ञान का कथन करके तुम हमारे शरीर को दग्ध कर रहे हो इससे कही अच्छा है कि आप अपनी सरस्वती को मौन का निवास दे। जिन ब्रजवासियो के हृदय मे श्रीकृष्ण-प्रेम पर्वत के समान अचल है, उस पर्वत सी अटल प्रेम-निष्ठा पर हम कृष्ण-प्रेम का वृक्ष लगा अहर्निश उसे नेत्रो के जल से सीचती रहती है अर्थात् विरह के अश्रु-जल से हृदय मे स्थित कृष्ण प्रेम के वृक्ष को सीचती रहती है। उस कोमल प्रीति-पादप के लिए ब्रज मे ग्रीष्म ऋतु के रूप मे भ्रमर (उद्धव) का आगमन हुआ है एव

योग का तापकारी सूर्य उसको नष्ट करने पर तुला हुआ है। (सूर कहते है) इस मुरझाते प्रीति-पादप को हे कृष्ण ! तुम्हारे स्नेह की वर्षा के बिना कौन जीवन दान दे सकता है ? भाव यह है कि आप दर्शन देकर हमारी प्रीति की रक्षा करो।

विशेष— अलकार— छेकानुप्रास, सागरूपक। २. 'घनानद से तुलना कीजिए—

"·· **नेह को मेह पिया बिन को बरसाइये।**"

पद १९५

गोपियाँ उद्धव से कहती है—

उद्धव ! तुम सच बतलाना कि जब घर मे आग लग जावे तो उसमे क्या कुछ शेष रह जायगा ? जिस दिन से प्राणवल्लभ कृष्ण ने मथुरा के लिए प्रयाण किया है तभी से हमारी विरह-व्यथित उत्तप्त स्वासो का दाह हमे भस्म किये देता है। हमारा भोला-भाला चित्त जब उनके मुखचन्द्र की छवि पर मुग्ध हुआ तो हमने मन को निकाल कर प्रियतम को ही दे दिया। हमारी इस निष्ठा और व्यवहार पर भी तुझे यह ज्ञान नही हुआ कि हम योग नही अपना सकती और तू फिर भी योग-शिक्षा दे रहा है। आप इस योग की अमर शिक्षा को ले जाकर उन्ही सूर के स्वामी श्रीकृष्ण को दे देना जिन्होने इसे यहाँ प्रेषित किया है।

विशेष— अलकार— रूपक, स्वभावोक्ति।

पद १९६

गोपियाँ कृष्ण की भ्रमर-वृत्ति पर व्यग्य करती हुई निर्गुण का खण्डन करती है—

उद्धव ! आप कहते है कि योग-साधना का उपदेश तुम्हे विरह-वेदना से मुक्त करने के लिए है किन्तु यह तो एक बहाना मात्र है। वस्तुत सब अपना अपना स्वार्थ सिद्ध करने मे लगे हुए है। कृष्ण स्वय तो कुब्जा के साथ रस-क्रीडा मे व्यस्त है और हमे योग का विरक्ति-पूर्ण उपदेश दे रहे है। ('पर उपदेश कुशल बहुतेरे')। हमे वन मे अब भी वही कृष्ण की श्यामल मूर्ति दृष्टिगत होती है, किन्तु अब उन्हें यमुना के कछारो मे रास रचाते लज्जा

आती है क्योकि आज वे राजा हैं। भाव यह है कि कृष्ण का हमे दिन-रात ध्यान तो रहता है किन्तु शरीर से उनकी यहाँ उपस्थिति न होने से हम प्रेम-क्रीडाओ से वचित है। हमें विरह का यह ऐसा रोग लगा है कि एक पल को भी नेत्र लगते नही, उनकी प्रतीक्षा ही करते रहते है। (सूर कहते है) विरह के इस बढते रोग का उपचार तभी हो सकेगा जब स्वय श्रीकृष्ण अश्विनी-कुमार के रूप मे यहा आयेगे।

विशेष—१ अलकार—रूपक। २ अन्तिम पक्ति से तुलना कीजिए—

"**मीरा की प्रभु पीर मिटै जब वैद्य सावंरिया होय।**"

३. अश्विनीकुमार—देवताओं के वैद्य।

पद १६७

गोपियाँ कृष्ण की निर्ममता के प्रति उपालम्भ देती हुई उद्धव से कहती है—

हे उद्धव! कृष्ण ने हमे अपने प्रेम के रूप मे विष दिया है। अपनी मधुर वाणी से वे मित्र बन गये किन्तु प्रेम-क्रीडाएँ करके चलते बने और इस प्रकार अपने छलपूर्ण व्यवहार से वे हमारा सर्वस्व चोर के समान चुराकर चल दिये। अपनी अधरामृत की माधुरी मे बाघ की मूंछ के समान विषपूर्ण विरह का बीज मिला दिया अर्थात् सयोग क्रीडाओ मे ही इस असह्य वियोग की नीव धर दी। अब उस विष-बीज ने शरीर के भीतर प्रवेश करके अपना विषाक्त प्रभाव दिखाया है जो किसी भी औषधि से ठीक नही हो सकता। भाव यह है कि यह विरह-वेदना किसी अन्य उपचार से ठीक नही हो सकती। यह तो उन्होने प्रीति के रूप मे अच्छा विष-प्रदान किया, जिसका कोई उपचार ही नही। या तो हमे मार दीजिए अथवा दर्शन देकर जीवन-दान दीजिए यह रोग की अवस्था तो असह्य है। जो कहकर दूसरे को मारते है वे शूरवीर माने जाते है और जो मिलकर मारते है वे विश्वासघाती और मित्र द्रोही कहाते है। सूर कहते है कि गोपियो ने निवेदन किया कि हे भ्रमर (उद्धव)! हमारी स्थिति आज ससार मे ऐसी है जिनका श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई अवलम्बन नही।

पद १९८

गोपियाँ कृष्ण मे अनन्य निष्ठा प्रदर्शित करती हुई अपनी असह्य विरह-व्यथा का वर्णन उद्धव से करती हैं—

उद्धव ! अब हमारे प्राण तभी शेष रह सकते हैं जब श्रीकृष्ण जी आकर दर्शन दे। ये प्राण चले जाते है, लौट आते हैं एव फिर स्थिर हो जाते है —इस प्रकार मिलनावधि की आशा पर जीवन का यह क्रम चल रहा है। अब वे पूर्वस्मृति का वर्णन करती कहती है कि जब उन्हे ऊखल से बाँध दिया था तो उन्होने कैसे भोलेपन से अपना मुँह लटका लिया था एवं माखन चोरी की मुदा तो और भी हृदय को व्यथित कर रही है। ये सब स्मृतियाँ हमे ज्ञान को अपनाने पर किस प्रकार विस्मृत हो सकती हैं, जबकि ज्ञान साधना के लिए ससार-सम्बधो से विरक्ति आवश्यक है। जिसके कारण हमने कुल-कानि और पतियो के त्रास को तिलाजलि दे दी, वे ही कृष्ण हमे योग का यह उपदेश देने का साहस कर रहे है। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि जिस कृष्ण के प्रेम के लिए हमने त्याग कर दिया उस गुणसागर को छोडकर घडे के जल सदृश निर्गुण को हम कैसे अपना सकती है ?

विशेष— १ अलंकार— अत्यानुप्रास। २ प्रथम चरण मे गोपियो की अवस्था दशम अवस्था—मरण—के समीप पहुँच जाती है।

पद १९९

गोपियाँ कृष्ण की निष्ठुरता के प्रति उपालम्भ देती कहती है—

उद्धव ! अब हमे यह विश्वास हो गया कि श्री कृष्ण जी से पुरातन प्रेम का वह अमूल्य नग खो गया है एव उनकी प्रेम-कोठरी अर्थात् हृदय मे हमारा स्थान भी अब पुरातन पड गया है, इसी लिए वे ऐसा निष्ठुर व्यवहार कर रहे है। उन्होने हमे अधरामृत का पान कराकर प्रीति-लता को बडे स्नेह से पल्लवित किया था। किन्तु उस प्रेम को श्री कृष्ण ने बच्चो के खेल मे बनाए घरौदो के समान निर्मोह भाव से तोड दिया। उन्होने ऐसा ही व्यवहार किया जिस प्रकार सर्प अपनी पुरातन केचुली को अनासक्त भाव से छोड देता है,

उसी भाँति उन्होने हमारी पुरातन प्रीति को विस्मृत कर ब्रज से सम्बध-विच्छेद कर लिया। जिस प्रकार भ्रमर कलियो का रसपान कर पुन लता की सुधि नही लेता, वैसा ही कृष्ण ने हमारे साथ किया। सूरदास कहते है कि गापियो ने कहा कि जो अपने प्रेम मे स्थिर नही होते उन्हे प्रत्येक स्थान पर सुख है क्योकि वे दूसरे स्थान पर जाकर अन्य से प्रीति-सम्बध स्थापित कर लेते है किन्तु अनन्यप्रीति-व्रत रखने वाले को प्रिय वियोग मे दग्ध होना पडता है। दूसरे स्थान पर जाकर अपनी समृद्धि मे पुरातन प्रीति को भूल जाना पाशविक व्यवहार है, जिस प्रकार पशु किसी धनी चोर के यहा जाकर अच्छा खाद्य मिलने पर पुराने स्वामी को स्मरण भी नही करता। भाव यह है कि आज कृष्ण को मथुरा पहुँच कर राजवैभव मे लिप्त हो हमे विस्मृत नही करना चाहिए।

विशेष— अलकार— अत्यानुप्रास, रूपक, उपमा, अर्थान्तरन्यास, अन्योक्ति।

पद २००

गोपिकाएँ निर्गुण का अत्यत विनम्र खण्डन करती उद्धव से कहती है—

उद्धव! हम आपकी दासी है, अतएव हम पर कृपा करके आप योग के कटु वचन मत कहो। इन अटपटे वचनो से आप स्वय अपनी खिल्ली उडवा रहे है। आपने हमारे प्रेम-मार्ग के गुणो पर विचार नहीं किया अपितु उसके सिद्धातो को वैसे ही एक कान से सुन कर दूसरे से निकाल दिया। आप बार बार कहते है कि यह योगोपदेश मैं तुम्हारे विरह को दूर करने के लिए लाया हूँ किन्तु यह मिथ्या कथन है। युवतियो को ज्ञानोपदेश देकर आप जो परार्थ कर रहे है, उससे समस्त ससार परिचित है। आप जो कुछ भी अच्छी-बुरी कहेगे उस सबको हम सहन कर लेगी। हमने कृष्ण से प्रेम किया है, उसका दण्ड तो हम भोगेगी ही, अन्य किसी को दोष क्या दे, प्रेम करने का अपराध हमारा ही है—

"जो मे ऐसा जानती प्रीति करै दुख होय।
नगर ढिढोरा पीटती, प्रीति करै नहि कोय।।"

—'मीरा'

सूर वर्णन करते है कि गोपिया कहती है कि आप तो स्वय बडे ज्ञानी है और है बडे आदमी मथुरापति श्री कृष्ण के दूत, इसलिए आपको हम अपने भाग्य के लिए किस प्रकार दोषी ठहरावे ? किन्तु आज जो वेदना हृदय को बारम्बार व्यथित करती है, वह यह है कि कृष्ण ने हमे इतना घृणित और तुच्छ समझ लिया है कि इस सुन्दर शरीर से राख (विभूति-भस्म) लगाने को कहते हैं अर्थात् योग अपनाने को कहते है ।

पद २०१

गोपियाँ योग की इस उक्ति से कि ब्रह्म घट-घट वासी है सहमत नही है । अत वे बारम्बार इस कथन का खण्डन करती हैं, पद १७७ मे 'जो पै ऊधौ , हिरदय माँझ हरी ।" कह कर इसका प्रतिवाद किया था, यहा भी वे उद्धव के इसी मत का खण्डन कर रही हैं—

उद्धव ! तुम कहते हो कि कृष्ण तुम्हारे हृदयो मे ही मिलेगे, क्रूर ! हम इस बात पर विश्वास नही कर सकती क्योकि वे हृदय मे रहते हुए इन कठिन बातो को सहन नही कर सकते थे । हमारे प्राण अहर्निश विरहाग्नि से भीतर ही भीतर दग्ध होते रहते है । प्राणो को सुलगा-सुलगा कर यह विरहाग्नि उच्छ्वासो के रूप मे धुआ निकाल रही है, धूम से आकुलित होकर ही नेत्रो से अश्रुओ की अविरल धारा बहती है । सूरदास वर्णन करते हैं कि गोपियो ने कहा कि हमारा शरीर इस विरह व्यथा से बहुत व्यथित हो रहा है, यदि वे अन्तर मे स्थित होते तो हमारी इतनी उपेक्षा न करते कि हमे विरह व्यथा से नष्ट हो जाने देते । इसलिए मन आपकी योग की बातो का विश्वास किस प्रकार करे ?

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास, रूपक एव नेत्रो से नीर बहने का कारण बताने के कारण काव्यलिंग है ।

पद २०२

गोपी वचन उद्धव प्रति—

उद्धव ! आप सब प्रकार से चतुर एवं ज्ञानी हो । कृपया आप हमे वही उपाय बताइये जिससे गोपाल ब्रज मे आ जांय । उनके अतिरिक्त हमें अन्य

किसी इष्ट से प्रयोजन नही। आप ही बताइये, जो मासाहारी भोजन का प्रिय है, उसके लिए शाकादि का क्या महत्व है? जिस मुख से सम्मान सहित पान का रसास्वादन किया उससे सेम के पत्ते किस प्रकार ग्रहण किये जा सकते है। जिन गोपिकाओ के कानो ने वशी की मधुर स्वर लहरी सुनी है उन्हे योगियो की सारगी के फटे स्वर से कैसे परितृप्ति हो सकती है? उसी प्रकार उन हृदयो मे निर्गुण का वास किस प्रकार हो सकता है जिनमे नन्दनन्दन की रूप-माधुरी बसी हुई है? आप कहते हैं कि 'इस प्रकार कब तक विरह से व्यथित रहोगी,' हम गोपाल के प्रेम की टेक उस समय तक निबाहेगी जब तक शरीर मे प्राण रहेगे। (सूर कहते हैं) हमे तो अब सुख और शान्ति उसी दिन प्राप्त होगी जब श्री कृष्ण जी पुन ब्रज मे पदार्पण करेगे।

विशेष—अलकार—उदाहरण, निदर्शना, अत्यानुप्रास एव प्रतिवस्तूपमा—

('जुग वाक्यन को होत जहँ, एक धर्म बखान।')

पद २०३.

गोपियाँ कृष्ण-प्रेम मे अपनी दृढ आस्था बताती उद्धव से कहती है—

उद्धव आप हमारे इस मत से पूर्णतया परिचित हो ले कि हम अपनी कुशलता केवल दो ही स्थितियो मे मान सकती है—या तो कृष्ण की दर्शनाभिलाषा मे यह जीवन ही समाप्त हो जाय अथवा गोपाल ब्रजभूमि मे पुनः लौट आयें। हमारे शरीर रूपी वन मे विरह की दावाग्नि लग गयी है जिसमे इस शरीर रूपी वन मे रहने वाले जीव—इन्द्रियाँ जल रही है। इस अग्नि की शान्ति उस श्याम-घन (घनश्याम-कृष्ण) के आने पर सम्भव है। जब वे अपने मुख-कमल से प्रेमसहित मुरली की मधुर स्वर लहरी की बूँद गिरायेगे अर्थात् उनकी वशी का मधुर स्वर कानो मे पडते ही विरहाग्नि का ताप नष्ट हो जाएगा। हमारा मीन सदृश सुन्दर मन गोपाल के मन्सरोवर रूपी चरण कमलो मे ही अनन्य भाव से निवास करता है। सूर वर्णन करते है कि गोपिया बोली कि आप हमारे उस मन को उसके प्रकृत स्थान से हटा निर्गुण की बालू अर्थात् शुष्कता मे ला रखना चाहते हो, इस व्यवहार मे आपका कौन सा न्याय है?

विशेष—अलकार—साङ्गरूपक एवं साधारण परम्परित रूपक।

पद २०४.

गोपियाँ उद्धव से अपने लिए निर्गुण की अग्राह्यता का प्रतिपादन कर रही हैं—

उद्धव ! कृष्ण को योग-साधना का उपदेश देने का साहस कैसे हुआ। कृष्ण के मुख से कही जाने के कारण योग की बाते अत्यत मधुर है किन्तु फिर भी वे हमारे हृदय को वेदना से विक्षुब्ध करती है। जिन नन्दनन्दन ने गोपियो की इन शरीर-लताओ को बडे मनोयोग से प्रेम-जल द्वारा सिंचित करके स्वय अपने हाथो से पल्लवित किया था एव इन लताओ के स्वामी और पोषक कृष्ण रूपी माली ने ही अब इन्हे उपेक्षित कर दिया है तो ये (स्नेह-जल के अभाव मे) सूखने लगी है। तब तो उनकी ब्रज के ऊपर इतनी कृपा थी कि ब्रजयुवतियो रूपी लताओ को साथ-साथ लिये फिरते थे किन्तु अब इन्हे सर्वथा त्याग दिया है। सूर कहते है कि गोपियाँ बोली— 'हम विरह की मारी हुई, कृष्ण के अभाव मे जीवित ही क्यो रही ?"

विशेष—अलकार—छेकानुप्रास, अत्यानुप्रास एव साङ्ग रूपक।

पद २०५.

गोपियाँ अपनी विरहाकुल दशा का सदेश कृष्ण के पास पहुँचाने की अभिलाषा मे उद्धव से निवेदन करती है—

हे उद्धव ! यदि कृष्ण वस्तुतः हमारे हितचिन्तक ही है तो कृपा कर हमारे समस्त कष्टो का निवेदन उनसे कर देना उनसे कहना कि जिस योग-साधना को आप हमारा उपकारी मानते हैं उसी ने गोपिकाओ के द्रुमो-सदृश शरीर मे अग्नि प्रज्वलित कर दी है। इस अग्नि को शान्त करने के लिए हमारे नेत्रो की पुतली के बादल उमडकर अपने प्रेमपूर्ण अश्रुओ की वर्षा करते है, किन्तु यह विरहाग्नि बुझती ही नही और न शरीर रूपी तरुवरो को जलाकर समाप्त करती है अपितु यह तो भीतर ही भीतर सुलग कर शरीर रूपी वृक्षो को काला कर रही है। जिन तरुओ को आपने अत्यत मनोयोग पूर्वक प्रीति-जल से सिंचित और पल्लवित कर इतना बडा किया, उनको योग का दावानल दग्ध कर रहा है। इस वियोग-आखेटक ने हमारे सर्वांग सौन्दर्य का नाश कर दिया है। तोते के समान नासिका का सौन्दर्य, कबूतर के

समान कलग्रीवा, कोकिल के समान मधुर वाणी एवं खजन के समान नेत्रो की सुन्दरता आदि आज कुछ शेष नही है। सूर वर्णन करते है गोपियाँ उद्धव से बोली कि तुम ब्रजनाथ से यह प्रार्थना करना कि आपके दर्शनाभाव मे ब्रज-वासियो का विरह-व्याकुल जीवन कैसे शेष रह सकता है ?

विशेष—अलकार—रूपक, रूपकातिशयोक्ति अत्यानुप्रास।

पद २०६.

गोपिकाएँ उद्धव के निर्गुण का खडन करती हुई उद्धव को बना रही हैं—

उद्धव ! आपके यहाँ आने का प्रयोजन क्या था ? आपके यहाँ आने का उद्देश्य हमारी विरह-व्यथा का शमन करना था और आप दे रहे है योग का दुखदायी उपदेश। हम इस योगोपदेश को बद करवा कर यदि आपको उचित पथ पर लाने का परामर्श देती है तो आपको यह बात बुरी लगती है। योग का यह निरर्थक प्रलाप करते तुम्हे लज्जा नही आती ? पहले अपना तो उपचार करा लो, तभी हमे योग-शिक्षा देना। आप मेरे कहने से शीघ्र ही चुपचाप मथुरा का रास्ता नाप लो। वहाँ बडी नगरी मे अनेक प्रकार की ओषधियाँ अर्थात् भोग-विलास एव श्री कृष्ण जैसे दक्ष वैद्य है। हमे तो इस बात का भय है कि कदाचित् आपका रोग इतना असाध्य न हो जाय कि आप शेष ही न रह जाँय और हमारे मत्थे कलक लगे कि ब्रज में गोपियो के बीच उद्धव की मृत्यु हुई। यदि तुम स्वस्थ प्रकृत दशा मे होते तो यह अवश्य विचार लेते कि कृष्ण-प्रेम को छोडकर निर्गुण की मरीचिका मे कोई क्यो भटकेगा ? सूर वर्णन करते हैं कि गोपियो ने कहा कि भला मुक्ताओं को चुगने वाला हस आग को क्यो ग्रहण करेगा ? उसी भाँति हम कृष्ण के मुक्ता सदृश प्रेम को छोड आग के समान दाहक निर्गुण-प्रेम को कैसे स्वीकार करेंगी ?

विशेष— अलकार— उपमा एव निदर्शना।

पद २०७.

गोपियाँ उद्धव के द्वारा अपनी विरहाकुल दशा का सन्देश कृष्ण तक पहुँ-

चाना चाहती है—

हे उद्धव ! तुम कृष्ण से जाकर हमारे हृदय की असह्य विरह-वेदना का समाचार कहना। उससे कहना कि गोपियो को आपके वियोग मे न दिन मे शान्ति है और न रात को नीद। अब उनके लिए शरद् की पियूषवर्षिणी चन्द्र-ज्योत्स्ना भी अग्नि के समान दाहक हो गई है। जब से अक्रूर जी आपको मथुरा लेकर गये है तब से ही हमारे शरीर विरह-ज्वर एव वमन से पीडित है। हे उद्धव ! तुमने उस विरह-वात को अपने कटु योग सन्देश से और भी तीव्र कर दिया है। पूर्वस्मृतियो के सुखाभाव से हम हल्दी के समान पीली पड गई हैं। तुम कृष्ण के अन्यतम चतुर मित्र हो, तुममे दूतत्व की योग्यता है, इसीलिए हम तुमसे स्पष्ट कहती है कि हे सुहृद्वर ! जब तक कृष्ण के दर्शन का काढा हमे प्राप्त नही होगा तब तक इस रोग का शमन नही हो सकता।

विशेष— अलकार—साङ्ग रूपक, उपमा, अत्यानुप्रास।

पद २०८.

गोपियाँ उद्धव के ब्रजागमन को निष्प्रयोजन बताती है—

उद्धव ! तुम ब्रज मे इतने उत्साह से क्यो आ गए ? वहा आप कृष्ण के सहायक, मित्र एव पदाधिकारी थे, कुछ दिन वहाँ रहकर थोडी पूँजी अर्जित कर लेते। जिस निर्गुण के धर्म का आपने यहाँ बखान किया उसकी चर्चा वही कर लेते अथवा (श्लेष से व्यग्यार्थ) आपने जिस धर्म को यहाँ वन में कहा है, अर्थात् जो अरण्य-रोदन के समान निरर्थक कथन आपने यहाँ किया है, उसे मथुरा मे ही गाते। वहाँ योग के पारखी श्रोता आपका सम्मान गुरुवत् कर परितोष प्राप्त करते और यहाँ ब्रज मे चाहे आप योग का कितना ही युक्ति-युक्त प्रतिपादन करे वह सब व्यर्थ है क्योकि ब्रजवासियो के कृष्ण ही एकमात्र आराध्य है। जो कुछ उपदेश तुम दूसरो को दे रहे हो, मथुरा मे इसकी निस्सारता स्वय समझ कर तुम सुख अनुभव करते क्योकि जिस प्रकार हम कृष्ण-विमुख नही हो सकती, उसी प्रकार आप वहा रहकर उनके प्रेम का परित्याग न कर पाते। हमे तो इस बात पर आश्चर्य है कि तुम श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अपने हृदय मे निर्गुण आदि को कैसे चाहते हो ? सूर वर्णन

करते है कि उद्धव यह सुनकर कृष्ण-प्रेम मे सराबोर हो गये और मन मे उनके दर्शनो की तीव्र अभिलाषा जाग गयी।

विशेष—सूर ने योग मार्ग पर गोपियो की मर्मस्पर्शी उक्तियो से सगुण-मार्ग की अपूर्व विजय दिखाई है।

पद २०६

गोपियाँ कृष्ण मे अपनी अनन्यता प्रतिपादित करती उद्धव से कहती हैं—

उद्धव ! तुम्हे तो हठवादिता की आदत पड गई है। चाहे कोई किसी भी प्रकार से करोडो प्रयत्न कर ले किन्तु निर्गुण की ज्ञान-चर्चा नही छोड सकते—

"तुमसो प्रेम कथा को कहिबौ, मनहुँ काटिबौ घास।"

हमारी तो यह स्थिति है कि जिस दिन से यदुराज श्री कृष्ण यशोदा के घर आए तभी से हमे उनके दर्शन और स्पर्श के अतिरिक्त अन्य कुछ रुचिकर ही नही लगा। उनके साथ प्रेम-क्रीडाएँ करते, हास-परिहास मे एव उनके ससर्ग की कृपा का सुख अनुभव करते दीर्घ समय भी एक क्षण के समान व्यतीत हो जाता था। उनके दर्शनानद से हृदय और नेत्र परितृप्त रहते और सभी के शरीर अत्यत प्रफुल्लित रहते थे। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाएँ बोली कि "हमे तो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—सभी अवस्थाओ मे घनश्याम के सुन्दर शरीर की कान्ति ही प्रिय थी किन्तु उन राजीव-नयन कृष्ण के अभाव मे उद्धव तुम हमे बातो मे ही भुलावा देना चाहते हो। किन्तु हम उनकी प्रीति का परित्याग नही कर सकती।"

विशेष—स्मृति सचारी का वर्णन है।

पद २१०.

योग साधना मे मन साधना पर बडा बल दिया जाता है, एक प्रकार से समस्त साधना का केन्द्र मन ही है। गोपियाँ इसी आधार पर निर्गुण का खण्डन करती है—

उद्धव ! हमारे दस-बीस तो मन है नही, वह तो एक ही था, सो भी कृष्ण के साथ चला गया, अब बताओ आपके निर्गुण की उपासना कौन करे ?

हम तो बिना नदलाल के इस प्रकार शिथिल और असहाय हो गई है जिस भाँति शरीर के अभाव मे शीश ! किन्तु वियोग की इस विषमावस्था मे भी 'जब तक साँसा, तब तक आसा' के आधार पर अभी हम कृष्ण-दर्शन की प्रतीक्षा मे करोडो वर्ष जीवित रह सकती हैं। तुम तो कृष्ण के मित्र हो और समस्त योग के पूर्णसिद्ध ज्ञानी फिर हमे इस योगाराधना की क्या आवश्यकता है, यह आपके लिए ही श्रेय है। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि तुम हमारे मन को तो रसिक-विहारी श्रीकृष्ण की ही बातो मे परितृप्त करो, योग-चर्चा हमारे सम्मुख बन्द कर दो।

विशेष—१. अलकार—उपमा, अत्यानुप्रास। २. तुलना कीजिए—

"यहा तौ हुतो एक ही मन सो हरि लै गए चुराई।
मधुकर कोऊ और खोज कै योग सिखावो जाई॥"

पद २११.

गोपियाँ श्रीकृष्ण की निर्ममता के प्रति व्यग्य करती कहती है—

उद्धव ! तुम और तुम्हारे सब साथी सभी बहुत सज्जन हो। मेरे कहे का मानोगे तो बुरा ही किन्तु वास्तविक बात यह है कि तुम सबके सब अत्यत कुटिल स्वभाव के एकत्रित हो गये। एक वे अक्रूर नामधारी आपके मित्र आए थे जो अपने कार्य से तो क्रूर ही थे, उनका कार्य ही उजडे को बसाना एव बसे हुए को उजाडना था। दूसरे आपके सखा श्री घनश्याम हैं जो 'यथानाम तथा गुण' के अनुसार हृदय के भी काले है और उनकी करतूते भी काली है। उन्ही के साथी आप हैं जो भ्रमर का वेष धारण करके गुणहीन निर्गुण के गुणो का गान करने का व्यर्थ श्रम कर रहे हैं। हमने सबको भली प्रकार देख लिया। सूर कहते है कि अन्त मे गोपियो ने कहा कि हम पर भी इसी काले समाज का प्रभाव पडा है जिससे हमारी दृष्टि मे गोरा बर्ण वाला निर्गुण नही समा सकता।

विशेष—अन्तिम पक्ति से तुलना कीजिए—

'ऊधो जी वे अँखियाँ जरि जाँय, जो साँवरो छोड़ तकै तन गोरो।"

—'ठाकुर'

पद २१२.

गोपियाँ अपनी विरहाकुल दशा का वर्णन कर योग का खण्डन करती है—

उद्धव ! तुम्हारी हठवादिता तो इतनी बढ गयी है कि जो तुम्हे समझाये वह स्वय की ही शत्रु है क्योकि तुम योग की बक झक लगाये बिना मान नही सकते और समझाने वाली की शक्ति व्यर्थ चली जाती है। हे अलि ! हम अहर्निश गोपाल लाल के वियोग मे दग्ध होती है। अभी हमारे हृदय मे कृष्ण की वकिम दृष्टि के कटाक्ष और मनमोहक छवि अकित है। उन्होने हमारा तन-मन सर्वस्व उस वशी की मधुर स्वर लहरी के आकर्षण से चुरा लिया है। उनके मनोहर शरीर पर पीताम्बर के धारण करने की शोभा विस्मृत नही की जा सकती। कधे पर लकुटिया धारण कर वन मे गो-चारण-समय की अपरूप शोभा का वर्णन करना तो असम्भव ही है। हे ज्ञानी ! हम विरहणियो को तुम आँख मूँदकर ध्यान के द्वारा अदृश्य पथ पर जाने को कहते हो ? भला जिसके हृदय मे श्रीकृष्ण विराजमान है, वह मुक्ति के गढे मे जाकर क्यो पडेगी। हे उद्धव ! तुम हमे योग की कटु शिक्षा के दु खो की राशि क्यो उठा लाये ? सूर कहते है कि गोपिकाओ ने कहा कि रसिक-विहारी प्राण-वल्लभ के वियोग मे निर्गुण की योगसाधना के कठोर प्रहारो को सहकर क्या हम जीवित रह सकेंगी ? किन्तु तुम फिर भी अपना दुराग्रह नही त्यागते।

विशेष—गोपियाँ पुष्टिमार्गीय साधना के अनुकूल 'सायुज्य' नही 'सामीप्य' की इच्छुक है।

पद २१३

गोपियाँ उद्धव से कृष्ण को बुलाने की अत्यत विनम्र एव आकुल प्रार्थना करती हैं —

उद्धव ! तुम श्री कृष्ण को यहाँ कृपा कर ले आओ । उनके अभाव मे ब्रजवासी रूपी चातक तृषाकुल होकर मृतप्राय हो रहे है, आप कृष्ण-दर्शन की स्वाति-बूँद बरसाकर इन्हें जीवन दान दो । घोष रूपी कमल सकुचा गये है अर्थात् घोषवासियो की प्रफुल्लता नष्ट हो गयी है। कृष्ण-दर्शन का सूर्य

दिखला कर तुम इन्हे पुनः विकसित करो । तुम यहाँ अधिक विलम्ब मत करो एव शीघ्र मथुरा पहुँच कर उन्हे हमारी असहाय अवस्था से अवगत करो । हे उद्धव ! यदि कृष्ण राज-कार्य मे व्यस्त होने के कारण यहाँ नही आ सकते तो हमे ही वहाँ बुला ले । सूर कहते है कि गोपिकाएँ उद्धव से कहती है कि श्री कृष्ण से शीघ्र हमारा मिलन करा, दूसरो का हित सम्पादन कर आप सन्तो की श्रेणी मे यशपूर्ण स्थान प्राप्त कर लो ।

विशेष— १ अलकार—रूपक एव रूपकातिशयोक्ति । २ पद की गेयता दर्शनीय है ।

पद २१४

गोपी वचन उद्धव प्रति—

उद्धव ! हमारा योग से परिचय तो तभी हो गया था जिस दिन अक्रूर के साथ ब्रजनाथ कृष्ण रथारूढ हो मथुरा चले गये थे, जिस दिन से हमने समस्त मोह-ममता के बधन को त्यागकर अपने पुत्र और पति जैसे सम्बधियो को विस्मृत कर दिया था । इस प्रकार ब्रजागनाओ ने असार सासारिक माया को त्याग कर प्रेम-व्रत का दृढ सकल्प किया था । योग के समान ही, उसी दिन से हमारे नेत्र बद हो गये, मुख ने मौन धारण कर लिया और शरीर की सौन्दर्याभा विरह ताप से सूखने लगी । योगी के हृदय मे एक ही ज्योति का प्रकाश रहता है, हमारे हृदय मे नदलाल की वशी धारण किये हुए मुद्रा की शोभा ही अकित है । जिस भाँति तुमने योग के अन्तर्गत तुरीयावस्था बताई है. ठीक वैसे ही हम भी कृष्ण की सयोग-कालीन स्मृतियो का ध्यान करके आत्म-विस्मृत हो जाती है । ब्रह्मा जैसे तत्त्ववेत्ता जिसको जानने के प्रयत्न मे मर-मिटे किन्तु फिर भी उसको न जान सके, 'नेति नेति' कहकर रह गये, उस कठिन योग को लेकर भला हम क्या करे ? उस दुर्वह साधना से निर्गुण को पहचानना असम्भव है । सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि हमारे हृदय मे तो श्याम की माधुर्य-छवि ही समायी हुई है । हमे निर्गुण अग्राह्य है ।

विशेष— तुलना कीजिए—

"विरहिन के सहजै सधै,
योग, भक्ति और ज्ञान ।"

पद २१५

गोपियाँ अपनी पूर्वस्मृतियो का वर्णन उद्धव से कर रही है—

उद्धव ! अब वे सुख कहाँ है जो कृष्ण के ब्रजवास के समय प्राप्त थे ? हम क्षण-प्रतिक्षण जिस मुख की सौन्दर्य-छवि का अवलोकन करती थी अब वह अप्राप्य है । हमारा मन अब भी उस मुख-छवि की दर्शन-लालसा मे वही अटका रहता है । मुख पर वशी, शीश पर मोरपच्छ का मुकुट एव वक्षस्थल पर घु घचियो की माला से सुशोभित अपने आगे गौओ के पगो से उडती हुई धूल से धूसरित हो, वे सुन्दर वकिम कटाक्षो से हमे देखते थे, वह अपरूप सौन्दर्य आज कहा ? सूरदास कहते है कि गोपियो ने कहा कि तब अहर्निश वे सर्वदा हमारे साथ रहते, खाते, पीते एव प्रेमपूर्ण मधुर वार्तालाप करते थे, किन्तु अब उनका राजकीय वैभव और मर्यादा देखकर हम उस प्रसग की चर्चा भी नही कर सकती, यह हमारे भाग्य की कैसी विडम्बना है ?

विशेष— १ अनुभावो के वर्णन से भाषा की चित्रात्मकता दर्शनीय है । २ स्मृति सचारी ।

पद २१६

गोपियाँ उद्धव से कहती है—

अच्छा उद्धव ! तुम-ही बताओ कि कृष्ण ने मथुरा जाकर कौन सा यश प्राप्त कर लिया ? वे यहाँ रहते हुए भी चौदहो भुवनो की सम्पदा के स्वामी थे, मथुरा जाकर दूसरो के राज्य की मिथ्या सम्पत्ति और ऐश्वर्य के चक्कर मे पड़ गये । जो इस प्रकार का लालचपूर्ण कार्य करता है उसका सेवक (उद्धव) वेदादि शास्त्रो का ज्ञानी हमे योग बताता है । उनकी सेवा में वैसे तो तुमने समस्त जीवन व्यतीत कर दिया किन्तु उनके साथ कैसा छलपूर्ण निष्ठुर व्यवहार कर रहे हो कि हमे उनसे प्रेम-सम्बन्ध विच्छिन्न करने को कहते हो । तुम तो अपने मन मे बहुत सज्जन बनते हो, कम से कम ऐसा छलयुक्त व्यवहार मत करो सूर कहते है कि गोपिकाओ ने कहा कि श्री कृष्ण ने अपने मन मे यह कैसा निश्चय कर लिया है कि वे यहाँ आते ही नही हैं, न जाने किसने उन पर जादू पढ दिया है ।

विशेष—छेकानुप्रास एव अन्त्यानुप्रास ।

पद २१७

गोपियो को यह विश्वास नही होता कि उनके प्रियतम कृष्ण उन्हे योगोपदेश भी प्रेषित कर सकते है। इसी मनोदशा की अत्यन्त व्यग्यपूर्ण अभिव्यक्ति करती कहती है—

उद्धव ! तुम योग का जो असंगत प्रलाप कर रहे हो, यह नदलाल का सन्देश नही हो सकता तुम भ्रम मे हो। अत. उनमे पुन पूछ आओ कि क्या सदेश कहा था ? यह योगसाधना का उपदेश जिसमे शरीर से विभूति मलने को कहते हो, कृष्ण का आदेश नही हो सकता। कल तक तो वे अपने हाथो से हमारे अग-प्रत्यग का शृगार मण्डन किया करते थे किन्तु आज उन्हे यह निर्गुण ज्योति कहाँ से प्राप्त हो गई जिमका आप बार बार उपदेश देते है ? उद्धव ! आप तो कृष्ण से वियुक्त होकर अपनी ज्ञान शक्ति खो बैठे हो। इसीलिए जो मुँह मे आता है, बक देते हो, यह भी नही देखते कि सुनने वाला इसके उपयुक्त भी है या नही। इस विवेक बुद्धि के खोने मे आपका अपराध नही है, उनके वियोग मे मनुष्य पागल हो उठता है। वियोग के इस दारुण ताप को तो हम पाषाण-हृदय ही सहन कर सकती है। (सूर कहते है) इस वियोग-ताप को सहन करने की शक्ति हमारी कृष्ण मे अनन्य-निष्ठा है, वे ही हमारे जीवनाधार हैं।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास, काव्यलिग।

पद २१८

गोपियाँ उद्धव के योग पर व्यग्य करती हुई कृष्ण मे अपनी अनन्य-निष्ठा का परिचय देती है—

उद्धव ! कृष्ण ने हमारे लिए क्या सदेश प्रेषित किया है ? गोपिकाएँ परस्पर कहती है कि हे सखि ! आओ सब मिलकर कृष्ण प्राप्ति का प्रयत्न करे। घर और बाहर जितनी भी ब्रजागनाएँ है सब को बुला लो। फिर योगियो के समान पद्मासन मार कर अपने सुन्दर विशाल नेत्रो को मूँद कर ध्यान करो। सब के ऐसा कर लेने पर गोपी मधुप मे कहती है कि तुमने प्रभु के मिलन की जो विधि बताई थी, वह हमने कर ली किन्तु उसका कुछ

भी लाभ प्राप्त नही हुआ। कमल जैसे नेत्रो वाले सुन्दर शरीर धारी गोपाल हमे तनिक भी दिखाई नही पडे। तदनन्तर गोपियाँ विरहाम्बुधि मे डूब गई और किसी को भी अपनी सुधि नही रही। गोपिकाओ का ऐसा अपार प्रेम देख भ्रमर (उद्धव) भी मौन हो गया। कही से चातक की जब 'पी' ध्वनि सुनी तब उनकी चेतना लौटी। सूर कहते है कि चातक तू पुन 'पी-पी' की पुकार लगा जिससे मरणासन्न विरहिणी गोपिकाएँ जीवित हो सके।

विशेष—अलकार, रूपक, स्वभावोक्ति।

पद २१९

गोपियाँ पात्र भेद के आधार पर निर्गुण का खण्डन करती है—

उद्धव ! वे किस प्रकार चतुर कहला सकते है जो दूसरो की विरह-व्यथा से तो परिचित नही किन्तु वैसे सर्वज्ञ कहलाते है। यदि मछली पानी से वियुक्त हो जाय तो कोई उसे जीवित रखने के कितने ही अन्य प्रयत्न कर ले किन्तु उसका एकमात्र जीवन जल है। तृषाकुल को सुधा का सागर बताने से क्या लाभ, उसके प्राण तो जल के विना निकले जा रहे है। उसी भाँति हम श्याम-प्रेम की अभिलाषिणी विरहिणियो को शुष्क निर्गुण का उपदेश दे रहे हो ? जिस भाँति अलि समस्त सुमनो का परित्याग कर कमल का मकरन्द पान करता है, उसी भाँति हमारे नेत्र उस कमल मुख के ही दर्शनाभिलाषी है। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि तुम इतना जान लेने पर भी योगोपदेश देकर इस प्रलाप को बढा रहे हो ? तुम अपने मन मे इतनी क्रूरता को स्थान मत दो, तनिक दूसरो की वेदना का भी ध्यान रखो।

विशेष – अलकार—अत्यानुप्रास, रूपक, पर्यायोक्ति।

पद २२०

गोपियो ने कहा है 'ऊधो विरहौ प्रेम करैं', अब उस से भी आगे बढकर कहती है कि उद्धव आपका आगमन हमारे प्रेम की दृढता और स्थायित्व के लिए और अधिक श्रेयस्कर रहा—

उद्धव ! आपने ब्रज मे पधार कर वस्तुत हमारा उपकार किया। ब्रह्मा रूपी कुम्हार ने हमारे भाग्य मे वियोग लिख कर हम कच्चे घडो का निर्माण किया था किन्तु आपने आकर उन्हे पका दिया है। अर्थात् अनिश्चित काल

की वियोग-सूचना द्वारा तुमने उस प्रेम को परिपक्व कर दिया। उन कच्चे घटों पर कृष्ण ने श्याम रग कर दिया। एव उन पर अपने अग-प्रत्यग के चित्र अकित किये थे। भाव यह है कि कृष्ण के अग-प्रत्यग की छवि हमारे हृदय मे अकित है। हमारे नेत्रो के अविरल जल-प्रवाह से ये कच्चे घडे गल कर नष्ट नही हो पाये क्योकि वे कृष्ण मिलन की अवधि रूपी अट्टालिका पर सुरक्षित रखे थे। आपने इनको ब्रज के दहकते अवे मे रख, योग का इधन लगा, सुरति अर्थात् पूर्वस्मृतियो की अग्नि प्रज्वलित कर दी। भाव यह है कि योग चर्चा से पूर्व-स्मृतियो को जागृत कर आपने ब्रज को प्रिय अभाव मे दाहक बना दिया। विरह के हमारे दीर्घ श्वास प्रश्वासो की फूँक से विरहाग्नि प्रज्वलित हो उठी। चारो ओर से खूब पक जॉय इसलिए आपने इन्हे दर्शनोन्मुख कर दिया। अब ये घट प्रेम जल से परिपूर्ण होकर धरे है, किन्तु श्री कृष्ण के अतिरिक्त इन्हे अन्य कोई छू भी नही सकता। सूर कहते है कि गोपियो ने अपना अभिमत दिया कि ये जल से अपूर्ण घट राजकार्य से मथुरा गये गोपाल की मगल कामनार्थ रखे हुए हैं, वे ही इनका उपयोग कर सकते हैं।

विशेष—१. अलकार अत्यानुप्रास, साङ्गरूपक, काव्यलिग (गलन न पाए नयन नीर तें अवधि-अटा जो छाए)। २ अन्तिम चरण के द्वारा गोपियाँ यह भी इगित करना चाहती है कि यौवन से परिपक्व उनके प्रेम-पूर्ण शरीर के एकमात्र भोगाधिकारी श्री कृष्ण ही हैं। ३. 'ब्रज करि अवाँ' से तुलना कीजिए—

> **"ऊधौ यह ऊधम जताई दीजौ मोहन को,**
> **ब्रज को सुवासो भयो अगिन अवा सो है।"**
>
> —'पद्माकर'

पद २२१

गोपी अपनी विरहाकुल दशा की चर्चा उद्धव से करती कहती है—

उद्धव ! विरह-व्यथा को सहते-सहते हृदय वज्र तुल्य कठोर हो गया है। मेरा मन रसनिधि ब्रजनाथ कृष्ण पर मोहित हो गया है, उन्ही की दर्शनाशा मे अहर्निश उलझा रहता है। श्री कृष्ण तो ब्रज का परित्याग कर एव माता-पिता के स्नेह को भी विस्मृत कर चले गये किन्तु हमारे गले पर तो मानो

कटार ही चला गये अर्थात् हमको मरणासन्न कर दिया। वहाँ पहुँचकर वे इतने निठुर हो गये कि कभी पत्रिका तक प्रेषित न की। मेरा मन सर्वदा चातक के समान 'पी-पी' की रट लगाए रहता है। सूरदास कहते है कि गोपिकाओ ने कहा कि हे प्राणवल्लभ ! स्वाति-बूँद बनकर मेरे इन चातक समान प्राणो की रक्षा करो।

विशेष—१. अलकार—रूपक, उपमा, अत्यानुप्रास। २ अन्तिम चरण से तुलना कीजिए—

"रसना हमारी चारू-चातकी बनी है ऊधौ,
'पी-पी' को बिहाई और रट रटिहै नही।"

पद २२२

गोपियाँ प्रकारान्तर से अपना विरह व्यजित करती है जिसमे एक साथ व्यंग्य, उपालम्भ एव असूया साकार हो उठे हैं। वे उद्धव से कहती है—

उद्धव ! मथुरा राज्य की यह कैसी अन्यायपूर्ण नीति है ? आपके कृष्ण राजा होकर भी कैसा अन्यायपूर्ण व्यवहार कर रहे हैं, कि हमे योग-सदेश प्रेषित कर रहे है। जो चन्द्रमा सर्वदा शीतल रहता था वह आजकल रात मे ही सूर्य के समान दग्ध करता है। पुरवा के मादक झोके हमारे शरीर धर्मानुकूल व्यवहार न करके शरीर को सहज मे ही विजित किये ले रहे हैं। उनसे आशा थी कि कस को मार कर राज्य की सुव्यवस्था करेगे किन्तु वे अपने राज्य मे होने वाले उपद्रवो पर ध्यान ही नही दे रहे हैं। उन्होने तो कुब्जा को हस्तगत करने के लिए ही कंस का वध किया था, इसीलिए उनमे आज परस्पर अटूट प्रेम है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से बोली कि तुम्हारा यह योग का राग विरह-सतप्त ब्रज मे अच्छा नही लग रहा है। जहाँ उल्लास एव मगलमय विधान होते है वही गीतगान शोभा देता है, हम तो वैसे ही विरह व्यथा से सतप्त है।

विशेष—अलकार—लोकोक्ति से पुष्ट अर्थान्तरन्यास।

पद २२३

गोपियाँ विरह- व्यथा का वर्णन कर कृष्ण मे अपना अटूट प्रेम अभिव्यजित करती हैं—

उद्धव ! काल-चक्र कि विविध गतियाँ है। जब तो श्री कृष्ण ने हमारा मन अपने आकर्षण से चुरा लिया और अब ऐसा उपेक्षामय सदेश प्रेषित कर रहे है। गोपाल ने वन मे पहले तो रसपूर्ण रहस्यमयी प्रेम-क्रीडाएँ कर हमे खूब लूट कर सुख प्राप्त किया। उस रस का पान करके भी हम अविगत और अनश्वर ब्रह्म की प्राप्ति के लिए योग-साधना करें (हमे तो उसी मे ब्रह्मसहोदर रस प्राप्त हो गया था) ! (सूर वर्णन करते है) आज कृष्ण को बिना देखे प्रेमविवश होकर हमारे नेत्र उमड कर जल वर्षा की झडी सी लगा देते है। हमारी रसना उनके प्रेम रस के पान बिना चातक से भी अधिक तृषाकुल है।

विशेष—अलकार—उपमा, छेकानुप्रास, अत्यानुप्रास एव व्यतिरेक ('उपमान ते उपमेय मे, अधिक कछु गुन होय')।

पद २२४.

शरद्-ऋतु के मनमोहक वातावरण मे गोपियो को श्रीकृष्ण की और भी तीव्र स्मृति हो आती है। उसी मनोदशा का वर्णन है—

उद्धव ! शरद् ऋतु भी आ पहुँची। बहुत समय से निर्निमेष देखते हुए और 'पी-पी' की रट लगाते हुए चातक को भी उसका अभीप्सित स्वाति जल प्राप्त हो गया किन्तु हमे हमारा प्रिय न मिल सका। हृदय मे तो हमारे भी कभी ध्यान आता है कि वे हमारे प्रिय श्रीकृष्ण इस ऋतु मे वशी की स्वर-लहरी छेडा करते थे एव चन्द्रमा को देख कर यमुना के कगारो पर रचाये उस रास-रस की स्मृति करवट ले उठती है। किन्तु आज हम उस निष्ठुर प्रिय द्वारा तिरस्कृत है। अस्तु ! जिससे गहन प्रेम होता है, उसके अवगुण भी गुणो के समान प्रिय होते है। (सूर कहते है) हमे तो योग सिखाकार वे छलपूर्ण व्यवहार कर रहे है, लोक-लाज के भय मात्र से अपना झूठा प्रेम-प्रदर्शित करने के लिए आपको हमारे पास भेजा है।

विशेष—१ उद्दीपन-रूप मे प्रकृति का सरस प्रयोग हुआ है। २. स्मृति सचारी है।

पद २२५.

गोपियाँ कृष्ण-वियोग मे अपने स्त्री-सुलभ स्वभावानुसार कह उठती है—

उद्धव ! न जाने कौन सा कुदिन था जब श्री कृष्ण ने ब्रज से प्रस्थान किया। वे ऐसे गये कि फिर लौट कर नही आए। ठीक है अब वे भी अपने बिछुडे हुए माता-पिता से जा मिले। गर्ग ऋषि ने मथुरा-कथा-प्रसग मे जो घोषणा की थी कि कृष्ण फिर मथुरा से लौट कर नही आयेगे वह सत्य प्रमाणित हुई। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि अब तो वे त्रिभुवन पति राजाधिराज हो गये है, और अपने परिवार से भी उनका परिचय हो गया है, फिर वे यहाँ क्यो आयेगे ?

पद २२६

गोपियाँ अधिकारी भेद के आधार पर निर्गुण की योगसाधना का खण्डन करती है —

उद्धव ! तुम अपनी योग-चर्चा को बन्द कर दो। तुम अपने अनहद नाद की प्रशसायुत वाणी कहते हो किन्तु उसको सुनते ही हमे मौन धारण करना पडता है। आपका योग तो ऐसे काशीफल के समान है जो बकरी के छोटे से मुख मे नही समा सकता। भाव यह है कि योगाराधना हमारी सामर्थ्य के बाहर है। अतएव आप योग का कथन बारम्बार मत कीजिए क्योकि कोई भी अमृत को छोड विष का पान नही कर सकता। अमृत तुल्य मधुर कृष्ण-प्रेम को छोडकर विष सदृश निर्गुण की दुर्वह योग साधना को कोई नही अपनायेगा। हमारे नेत्र कृष्ण की रूप माधुरी के पिपासु है, अन्य जल से इनकी तुष्टि नही हो सकती। (सूर वर्णन करते है कि) श्री कृष्ण हमारा मन तो चुरा कर ले गये किन्तु उन्होने इस शरीर की विकलावस्था का ध्यान भी नही किया। यह तो सोच लेते कि बिना मन के तन की क्या स्थिति होगी।

विशेष—अलकार—उपमा।

पद २२७

गोपियाँ उद्धव पर व्यग करती कहती हैं—

उद्धव ! अब हम तुम्हारा रहस्य जान गई। श्री कृष्ण ने सदेश आदि

देकर तुम्हे यहा नही भेजा है, वैसे ही बिना प्रयोजन के यहा आ गये हो। यहाँ आकर ब्रह्म के प्रचार की कटु वाणी से हमारे वियोग-व्यथित हृदय को दग्ध कर रहे हो। तुम कहते हो तुम्हारे प्रियतम तुम्हारे अन्तर्गत ही है, यदि श्याम भीतर होते तो यह विरह-व्यथा न भाग जाती। हे चंचल बुद्धि अल्पज्ञ! तुम्हारी इन झूठी बातो के चक्कर मे हम कैसे आ सकती हैं? भला योग साधना के अनीतिपूर्ण आचरण को हम ब्रजवासी कैसे अपनाएँ? तुम इस योग साधना का उपदेश उस चतुर नटनागर को ही देना जो प्रेयसी के प्रीति रस मे सलिप्त है, जिससे उसे वैराग्य हो सके। तुम कैसे मूर्ख हो, कृष्ण तो कुब्जा को अपने फन्दे मे डाले पडे है और तुम यहाँ घड-घड कर मिथ्या योग वचन कह रहे हो। सूर कहते है कि गोपियो ने अत्यन्त आक्रोश-पूर्ण वाणी मे कहा कि हम तुझे समझा कर सब बात कह रही है किन्तु तुम सर्वथा निर्लज्ज हो कि अब भी यहाँ से उठकर नही जाते।

विशेष—१ अलकार—छेकानुप्रास, स्वभावोक्ति। २ उद्धव के प्रति अत्यन्त तिरस्कृत-व्यग्य-ध्वनि है।

पद २२८

उद्धव के प्रति वही व्यग्य और आक्रोश चल रहा है—

उद्धव! तुम हमारे नेत्रो से ओझल हो यहाँ से चले जाओ। हम तुम्हारी मर्यादा रखे हुए है अन्यथा तुम्हे देखते ही आखे क्रोध से जलने लगती है। तुम जो कहते हो कि गोपाल की प्रीति तुम मे उसी भाव से है, यह मिथ्या है, तनिक जाकर तो देखो वे किस प्रकार कुब्जा के साथ रस-लिप्त हैं। वे दोनो तो एक ही समान नीच-प्रवृत्ति के मिल गये हैं, श्री कृष्ण तो अहीर है ही और वह कस की तुच्छ दासी है। विधाता ने उनकी तो बुद्धि ही पलट दी, जो आप जैसे मूर्ख को दूतत्व सौपा है। सूरदास वर्णन करते हैं कि हे प्रियतम कृष्ण! आपके इस व्यवहार पर भी ब्रजागनाएँ समूह बनाकर कलान्त भाव से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं।

पद २२९

गोपियाँ निर्गुण का खण्डन करती उद्धव से कहती है—

उद्धव! शास्त्र-सम्मत मत तो तुम्हें मान्य होना चाहिए, जिसमे युवतियो

के लिए योग की व्यवस्था नही है। जिसने श्री कृष्ण के कमल समान सुन्दर मुख पर खजन जैसे चपल नेत्रो की शोभा देखी है, वह अन्य आराध्य को कैसे अपना सकती है ? सम्पूर्ण ऐश्वर्य और गुण निकेतन एव समस्त सौन्दर्य-निधि वे श्री कृष्ण हमे अपने अधरामृत की माधुरी का पान कराकर छोड गये और यह कटु ज्ञान-सदेश भेज दिया। उद्धव तुम कहते हो कि वे दयालु सब के अन्तस में समान रूप से व्याप्त है, यदि यह सत्य है तो भीतर से निकलकर गोपाल हमारे दुखो को जानते हुए भी प्रबोध क्यो नही देते ? जो निर्गुण रूप एव आकार से सर्वथा अगम्य है, जिसके प्रेम-मे कोई रस नही है, वह केवल शब्दो की भ्रान्ति मात्र है। ईख की गडेलियो सदृश हरि की गुणावलि को छुडा कर आप सीग तुल्य थोथी और शुष्क नीरस योग साधना को हमे भेडना चाहते हो। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि आपका यह योग तो वैरागियो के प्रयोजन का है, भक्त गणो के लिए यह उपयुक्त नही है। आपकी बुद्धि को क्या कहा जाय जो शास्त्र सम्मत उक्तियो के भी विरुद्ध अपने योग का प्रलाप युवतियो के मध्य कर रहे हो।

विशेष—अलकार—वृत्त्यनुप्रास, रूपक, रूपकातिशयोक्ति।

पद २३०.

कृष्ण की निष्ठुरता के प्रति गोपिकाओ का निर्मम उपालम्भ है—

उद्धव ! अब प्राणधन श्री कृष्ण कठोर हृदय हो गये है। उन्होने अब अपनी पूर्व-प्रेमिकाओ की प्रीति को विस्मृत कर दिया है एव नवेलियो के प्रेम मे अनुरक्त हो गये है ('लोभी नवनीता को')। जिस दिन से आपने मथुरा प्रस्थान किया है, उसी दिन से मेरा धैर्य जाता रहा है। हे प्रभु नदलाल, सुजान ! मै तुम्हारी जन्मानुजन्म की दासी हूँ। हे मोहिनी छविधारी आपने अपनी दृष्टि के वकिम कटाक्ष-बाणो का जो प्रहार किया ये हृदय के पार. निकल गये। सूर कहत हैं कि गोपी बोली 'हे प्रेम क्षेत्र को छोडने वाले कृष्ण ! तुम अब कब दर्शन दोगे ?

काव्य-सौन्दर्य— १. अलकार— रूपक, अतिशयोक्ति, परिकराकुर। २. "चितवन बान लगाए ·· ओर" से तुलना कीजिए—

"मेरी आँखों को खीरा कर गई, ताबानियाँ उसकी।"

३ 'रनछोर'— अत्यत साभिप्राय शब्द प्रयोग है। सम्भवतः जरासिंधु के साथ युद्ध मे कई बार भागने से कृष्ण का यह नाम पडा।

पद २३१.

गोपियाँ श्री कृष्ण की निष्ठुरता पर उपालम्भ देती कहती है—

उद्धव! अब गोपाल हमारे नही रहे हैं। मथुरा मे रहकर उनका स्वभाव कुछ परिवर्तित सा हो गया है, अलि! अब तो वे वहाँ रह कर तुम्हारे ही हो गये। वे इतनी थोडी दूर पर जाकर ही बदल गये और उनकी दर्शनाभिलाषा मे हम बाट जोहते जोहते थक गयी है। कपटी कुटिल और स्वार्थी कोकिलाएँ जो व्यवहार कौओ के साथ करती हैं वही कृष्ण ने हमारे साथ किया। कोकिल जब तक बडी नही होती कौओ के पास रहती है और ज्यो ही बडी होती है अन्यत्र भाग जाती है। उसी भाँति कृष्ण भी हमसे स्वार्थयुक्त प्रेम-क्रीडाएँ कर मथुरा चले गये। जिस प्रकार स्वार्थी भ्रमर कलियो का रसपान कर स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर उन्हे विस्मृत कर देता है, उसी भाँति कृष्ण ने हमसे प्रेमक्रीडाएँ कर भुला दिया। सूरदास कहते है कि गोपियो ने व्यंग्यपूर्वक कहा कि उनका क्या विश्वास जिनका शरीर और मन दोनो काले हैं?

विशेष— १ अलकार— वृत्यनुप्रास, उपमा। २. अन्तिम चरण के पूर्वार्द्ध से तुलना कीजिए—

"रस रहते-रहते रहते है कलियों पर अलियो के फेरे।"

पद २३२.

गोपिकाएँ श्री कृष्ण पर अपनी अनन्य प्रीति-निष्ठा व्यजित करती कहती हैं—

उद्धव! हम आपके चरण छू कर वन्दना करती हैं कि आपने यहाँ आकर अच्छा ही किया। तुम मिल गये तो मानो श्री कृष्ण के ही दर्शन हो गये। आपके दर्शनो से हमारे दैहिक, दैविक, भौतिक— तीनो प्रकार के ताप नष्ट हो गये। अब उनका नद और यशोदा से सम्बध-विच्छेद हो गया है एवं वे वेद-पुराणो द्वारा निर्गुण रूप में गाये जाते हैं। हम तो अहीर है, आपको

चाहिए कि अहीर से अहीर अर्थात् गोपाल की चर्चा करो किन्तु उसे छोड आप निर्गुण की गुणावली बखान रहे है। सयोग के समय तो इस छोटे से नगले में उन्होने नाना भाँति के खेल खेले और ऊखल तक से भी भुजा बँधवाई थी। सूरदास कहते है गोपिकाओ ने कहा कि हृदय मे बार बार यही पश्चात्ताप होता है कि उन्होने पुन ब्रज मे पदार्पण नही किया।

विशेष— १ अलकार— अत्यानुप्रास। २ स्मृति-सचारी। ३ पुष्टिमार्गीय भक्ति — पद्धति का अपरोक्ष चित्रण अन्तिम चरण मे हुआ है।

पद २३३

गोपियाँ निर्गुण का खण्डन करती उद्धव से कहती है—

उद्धव! तुम हँमे निर्गुण अपनाने को तो कह रहे हो, स्वय ही इसे क्यो नही ग्रहण कर लेते? हमे तो तुम नंदलाल की सगुण मूर्ति ही लौटाकर ला दो। इस योग साधना का मार्ग अत्यत कठिन और दुरूह है, वहाँ किसी प्रकार भी पहुँचा नही जा सकता। इस कठिन साधना के मार्ग का आचरण करते हुए सनकादिक जैसे महान् ऋषिगण भी पथ-विचलित हो चुके है, फिर अबला उस पथ पर कैसे जा सकती है? हम उस पचतत्व से परे के स्वरूप का साक्षात्कार किस प्रकार कर सकती है? सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि आप उस मानवेतर को जानने के लिए कहकर शत्रुओ जैसा व्यवहार कर रहे हो।

पद २३४.

गोपियाँ उद्धव से कहती है—

उद्धव यदि और कुछ भी तुम्हे कहने को बच गया हो तो हम आपसे विनम्र प्रार्थना करती है कि आप उसे भी कह डालो, उन कटु उपदेशो को हम सब सहन कर लेगी। गोपियाँ परस्पर कहती है, हे सखि! आज तक हमने यह उपदेश युवतियो को न किसी को देते देखा और न सुना। यह शुष्क कटु उपदेश जिसमे जीवन भर मनुष्य सन्तप्त होता रहे, तुम हमारे हृदय पर अकित कर देना चाहते हो। हमारे हृदय मे तो नंदलाल की मनोहर छवि विराजमान है जो एक पल को भी हृदय से नही निकलती। आपके निर्गुण को इसीलिए यहाँ तो स्थान है नही, जिसके हृदय मे स्थान हो वही इसे रख दो। हम सब

सखियाँ तो नदलाल की ही उपासिका है, अत हमसे यह प्रसग मत छेडो। (सूर कहते है) हे अलि ! तू आज इस योग को मथुरा मे कुब्जा के घर छोड आ, वहाँ इसका आदर और पल्लवन होगा।

विशेष— अलंकार— काकु-वक्रोक्ति।

पद २३५

गोपियाँ उद्धव से कहती है—

उद्धव ! आप ऐसे वचन कहे जो सबको रुचिकर लगे। जिसे आप यह योग-शिक्षा देने आये है, वह ब्रज मे कौन सी स्त्री है ? अर्थात् कोई नही। अन्तत आपको हमारी यह बात माननी ही पडेगी कि बात को भली प्रकार विचार कर कहना चाहिए। गोपियो के इस कथन को सुनकर उद्धव प्रेम के सम्मुख हार गये, और उनसे कुछ कहते नही बना। उनकी चुप्पी देखकर गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव तुम देखने मे तो साक्षात् करुणा की मूर्ति जान पडते हो किन्तु अपनी कठोर वाणी से दूसरो को दग्ध करते रहते हो। हे उद्धव ! तुम अब वही प्रयत्न करो जिससे हृदय के अनुताप को शान्ति लाभ होकर शीतलता का सचार हो। तुम इस योग के द्वारा हमे सीधी-सादी सडक के स्थान पर ऊबड खाबड कटकित मार्ग पर ले जाना चाहते हो ! सूर वर्णन करते है कि गोपिया कहती है कि जिस प्रकार बकरी के मुख मे काशीफल नही समा सकता उसी भाँति हम ब्रजागनाओ से योग-साधना न हो सकेगी।

विशेष— १. अलंकार— अन्योक्ति, लोकोक्ति।, २ तुलसी के समान सूर भी अपनी प्रेम-पद्धति को 'राजपथ' बताते है।

पद २३६

गोपिया अधिकारी भेद के आधार पर निर्गुण का खण्डन करती कहती है—

उद्धव ! तुम हमारी एक बात तो सुनो, जो शिक्षा आप हमे आचरणार्थ बता रहे हो वह हमे तनिक भी रुचिकर नही लगती। जिस भाति चन्द्र दर्शन के अभाव मे कुमुदिनी एव सूर्य के बिना कमल मुरझाये रहते है उसी प्रकार हम भी कमल के समान सुन्दर नेत्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी के अभाव मे तड़प-तड़प कर मुरझा रही है। जिस सुन्दर शरीर का शृगार चन्दन

एव कपूर चर्चित अगरागो से किया है उस पर श्मशान की भस्म कैसे लगाये जिन कानो ने सर्वदा ही वशी की मधुर तान का आस्वादन किया है, शृगीनाद से उन्हे भय सा लगता है। युवतियो को योग शिक्षा देते तुम्हे तनिक भी लज्जा नही आ रही है। भला जिन्होने कृष्ण के कर-स्पर्श का अमृतमय सुखद रस अनुभव किया है वे योग की कटु बाते किस प्रकार ग्रहण कर सकती हैं ? सूर कहते है कि गोपिकाएँ कहती है कि अबतक हम उनके आगमन की अवधि-आशा के एक एक दिन गिन कर जीवित थी किन्तु अब हमारे प्राण ठहरना नही चाहते। कृष्ण ने तो हमे अब ऐसे ही विस्मृत कर दिया है जैसे वृक्ष पुराने पत्तो को अपने अस्तित्व से पृथक् कर देता है।

विशेष— १ अलकार— पूर्णोपमा, अत्यानुप्रास। २. प्रवृत्ति-मार्ग और निवृत्ति-मार्ग की तुलना करके गोपिकाए यहाँ सिद्ध करना चाहती है कि प्रवृत्ति मार्ग मे ही प्रवृत्त होना श्रेय है ।

पद २३७.

गोपियाँ अपने नेत्रो की विरहाकुल दशा का वर्णन उद्धव से करती हैं—

उद्धव ! हमारे नेत्र कृष्ण के अनुराग से अत्यत अनुरक्त है। ये निर्निमेष होकर उनके आगमन की प्रतीक्षा करते रोते रहते है, एव भूल कर भी पलक तक नही मारते। तुम स्वय ही देख रहे हो कि बिना वर्षाऋतु के ही नेत्रो के अविरल अश्रुप्रवाह के कारण वर्षाऋतु बनी रहती है। इस अवस्था को भी देखकर पता नही योगोपदेश द्वारा तुम कौन सा वज्रपात किया चाहते हो ? हमारी विषमावस्था मे तो योग के शुष्क ज्ञान को बद कर लो। सूर कहते है कि गोपिकाओ ने कहा कि हे कृष्ण के अन्यतम सखा ! तुम उनके स्वभाव से पूर्ण परिचित हो। इसलिए तुम शीघ्र ही वह प्रयत्न करो जिससे वे हमे दर्शन दे।

विशेष—१. अलकार—विभावना। २. **"इकटक मग जोवति अरु रोवति"** से तुलना कीजिए—

"जब ते तुम आवन औध बदी, तब ते अंखियां मग मापति हैं।"

पद २३८

गोपियाँ अपनी असह्य विरहावस्था का वर्णन करने मे असमर्थ है, इसी भावदशा का कथन वे उद्धव से कर रही हैं—

उद्धव ! विरह-व्यथा का वर्णन करना तो हम चाहती है किन्तु कर नही पाती। श्रीकृष्ण से वियुक्त होने पर हमारे प्राण मुरझा रहे हैं। जाते समय जब घोडो के रथ पर आरूढ होकर श्रीकृष्ण ने पीछे फिर कर देखा, तभी सब ब्रजागनाएँ दृष्टि दान से कृतज्ञ हो कर उनके साथ हो ली। अब तो यह विरह की सृष्टि और भी अधिक दुखदायी हो उठी है जिसमे हमारा वाक्-सयम नही है। इसलिए हम आपको बारम्बार क्या उत्तर दे, आप तो स्वयं पूर्ण ज्ञानी हैं। इस निरन्तर प्रलाप से आपका सम्मान कम हो रहा है, अब तो वही उपाय करो जिससे आपकी पुन प्रतिष्ठा हो। सूर कहते है कि गोपिकाएँ कहती है कि विरह की कठिन रीति का वर्णन करना असम्भव है।

पद २३९.

प्रेमी मन का स्वभाव है कि वह प्रिय-अभाव मे संसार मे अपना अस्तित्व नही रखना चाहता। गोपियो की भी यही स्थिति है—

उद्धव ! यह हमारा मन अत्यत कठोर है। जिस प्रकार जल के निकलने पर कच्चा घट फूट जाता है, उसी प्रकार जीवन रूपी कृष्ण के चले जाने पर हमारे प्राण क्यो नही समाप्त हो गये ? हम भोली-भाली प्रीति-रीति से अनभिज्ञ है, कदाचित् इसी कारण प्राणवल्लभ ने हमे त्याग दिया हो। वे आत्मग्लानिवश कहती है कि हमारा वास्तविक प्रेम नही था, व्यर्थ ही हमने प्रेम की समस्त रीतियो को लज्जित किया। हम से तो अच्छी दीन मछली है जो अपने प्रेम के नियम का निर्बाह करती है जो जल से वियुक्त होते ही अपना शरीर छोड देती है और केवल जल ही की अभिलाषा रखती है। सूर कहते है कि गोपिकाओ ने कहा कि हे उद्धव ! सुनो, एक बडा आश्चर्य हुआ कि हम भी कृष्ण से मीनवत् प्रेम करती थी किन्तु जल अर्थात् जीवनरूप श्री कृष्ण से वियुक्त होकर भी हम जीवित है। हम केवल इसी आशा पर जीवित है कि वे प्राणधन अपने आने का विश्वास मन मे बैठा गये है।

विशेष—अलकार—पूर्णोपमा, रूपकातिशयोक्ति।

पद २४०

उद्धव से गोपिकाएँ कहती है—

उद्धव ! इस प्रकार प्रबोध मात्र से क्या होता है ? हमारे हृदय मे तो नदनन्दन की मूर्ति का श्यामल सलौना सौन्दर्य ही बसा हुआ है, फिर तुम्हारे इस योगोपदेश का हमारे लिए क्या प्रयोजन ? हम तुमसे अनुनय करती हैं कि श्रीकृष्ण से यह अवश्य कह देना कि वे एक बार हमे दर्शन देने की कृपा करे। सूर के स्वामी श्रीकृष्ण को विनयपूर्वक हमारी यही आर्तपुकार सुना देना।

पद २४१.

गोपियाँ योग का खण्डन करती हुई उद्धव से श्रीकृष्ण के दर्शन की कामना प्रकट करती है—

उद्धव ! हमे योग रुचिकर नही लगता। हमारे हृदय मे तो श्याम की मुन्दर छवि बसी हुई है, हम उसे कैसे विस्मृत कर दे ? आपने योग की जितनी भी बाते कही, वे सब सत्य है किन्तु हमारे लिए तो वे निरर्थक है। हमारे हृदय मे आपका निर्गुण नही समा सकता क्योकि गुणवान् कृष्णचन्द्र जी सर्वदा यहाँ निवास करते है। हम आपसे अनुनय करती है कि कृष्ण से कह देना कि यह योग-शिक्षा आप कुबडी कुब्जा को ही दे (सूर कहते हैं) एव हमे तो आप अपनी रूप-छवि ही दिखा दे, हम उसी से कृतकृत्य हो जायेगी।

पद २४२.

अधिकारी भेद के आधार पर गोपियाँ निर्गुण की योगसाधना का खण्डन करती उद्धव से कह रही है—

उद्धव ! हम योग-साधना मे प्रवृत्त नही हो सकती, हम तो सुन्दर श्यामल वपुधारी लावण्यमय गिरिधारी नद लाल की उपासक है। जिस सुन्दव शरीर को विभिन्न प्रकार के सुन्दर-सुन्दर वस्त्रो एव शृगारो से सज्जित किया था, उसी पर भस्म रमाने को कहते आप को लज्जा नही आती। हमारे हृदय-सदन में सर्वदा ही श्यामल शरीर धारी श्रीकृष्ण मोर-मुकुट से सुशोभित हो विराजते है। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि हमारा मन तो उन्ही का

प्रेमी है, अब तुम्हारे योग की साधना कौन करे ? योग-साधना के लिए मन साधना आवश्यक है और मन को कृष्ण-प्रेम से अवकाश नही।

विशेष—अन्तिम चरण से तुलना कीजिए—

> **"ह्याँ तो हुतो एक ही मन, सो हरि लै गए चुराई।**
> **मधुकर कोऊ और खोजि कै जोग खिखावहु जाई।"**

पद २४३

गोपिया कृष्ण को अत्यन्त उपालम्भ एव व्यग्यपूर्ण सदेश दे रही है—

हे उद्धव ! तुम हमारा यह सदेश श्री कृष्ण से निवेदन कर देना। कहना कि तुम इस भय से कि लोग यह कहेगे कि वे कुब्जा जैसी नीच स्त्री के प्रेम मे संलिप्त है, तनिक भी आने से सकुचित मत होना। कभी तो आप मयूर पच्छो के मुकुट से सुशोभित होकर इस ब्रज मे पदार्षण करे। हमारे मनोनुकूल आचरण करने से आप वास्तविक अर्थो मे ही त्रिभुवनपति ईश्वर बन जाओगे। जब तुम विचारपूर्वक सब देशो के विषय मे विचार करोगे तो हे प्रभु ! आपको समस्त सृष्टि मे ब्रज देश ही वैकुण्ठ के समान सुखपूर्ण ज्ञात होगा। हे कृष्ण ! न जाने किसने आपको यह उपदेश पढा दिया कि ब्रज का परित्याग कर अन्य देशो मे भ्रमण करो। आप मथुरादिक स्थानो मे घूम लिए किन्तु सत्य बताना कि माता यशोदा के समान जननी एव राधा के सदृश प्रियतमा भी आपको कही दृष्टिगत हुई ? यह सुनकर राधा प्रेम विभोर हो शिथिल होकर चेतना विहीन हो गई। लाल मूगे के समान श्री कृष्ण का अनुराग तत्काल प्रकट हो उठा जिससे वह मगल ग्रह के समान लज्जा से रक्तिम वर्ण हो गई। प्रेमातिरेक की विभोरता मे राधा भूल गई कि उद्धव कौन है ? बिरह-ज्वर क्या है ? और कौन उस मथुरा नगरी का अधिपति है ? न उसे यह चेतना रही कि उद्धव द्वारा कथित ज्ञान कैसा है एव यह किसके द्वारा प्रेषित और किससे कहा जा रहा है। आत्म-विस्मृत हो वह कृष्ण की उस रूपमाधुरी के दर्शन करने लगी जब वन से आते समय गौ के खुरो से उडी धूल के कारण उनके धूमिल-केशो की एक बाँकी लट अत्यन्त विलक्षण गति से मुख पर क्रीड़ा करती थी एव वे वशी की मधुर स्वर-लहरी छेडते थे। उसकी स्थिति दिवास्वप्न मे पड़े व्यक्ति के समान

थी, वह अत्यन्त आतुरता से दौडकर प्रियतम की कल्पित छवि के धूलि-धूसरित नेत्र-कमल पूँछने लगी किन्तु स्पर्श के प्रयत्न से कुछ भी हाथ न लगने पर राधा का मुख कमल मुरझा गया एव वह उस छवि को कल्पना मे देखती ही रह गई। सूरदास वर्णन करते है कि सम्पूर्ण आनन्दो से परिपूर्ण—जिसमे विरह और सयोग दोनो के रस है—भ्रान्तिपूर्ण विरहदशा धन्य है, नित्य विहार करते हुए सोम एव सनकादिक तथा इन्द्र, अज, सरस्वती, वेदभगवान्, शेषनाग एव शिव जैसे देवगण भी जिसकी कीर्ति का गान करते है।

विशेष—१ अलकार—वृत्यनुप्रास, अत्यानुप्रास रूपक, स्मरण आदि। २. उन्माद, मूर्च्छा, स्मरण आदि विरह की दशाओ का चित्रण है।

पद २४४.

यहाँ भी कृष्ण की निष्ठुरता के प्रति व्यग्य पूर्ण उपालम्भ है—

उद्धव ! श्रीकृष्ण ने अपना मिथ्या प्रेम प्रदर्शित करके हमारा मन हर लिया। अपने चपल नेत्रो की वकिम भगिमा के साथ वे हमारे शरीर पर अगराग लगाया करते थे। उद्धव ! हम आपको अत्यन्त सज्जन एव श्री कृष्ण का चतुर मित्र मानकर विश्वास पूर्वक एक बात पूछती है, प्रात काल की पुनीत वेला मे सत्य बात कहना कि शरत्कालीन प्रफुल्ल कमल के समान सुन्दर नेत्रो की धनुष तुल्य वकिम भौहो से छोडे गये कटाक्ष बाणो के हृदय मे लगने पर भी कोई जीवित रह सकता है ? उन तीक्ष्ण बाणो के प्रहार करने वाले मनमोहन कृष्ण आज मथुरा मे रहकर ब्रजवासियो के लिए यह कटु योग सदेश प्रेषित कर रहे है, क्या यही है हमारे प्रेम का प्रतिकार ? जिस समय कृष्ण ने अबलाओ के लिए योगोपदेश कहा उस समय इस अत्याचार से पृथ्वी क्यो नही दहल गई। तुम कृष्ण के चतुर सखा हो अपने हृदय मे विचार कर तो देखो कि कृष्ण ने कैसा अनीतिपूर्ण व्यवहार किया कि हमे परित्यक्त कर राजा बन गये और एक सुन्दर स्त्री (कुब्जा) का वरण भी कर लिया, तथा हम तब भी उन्ही से प्रेम-सम्बन्ध बनाए हुए है। अपनी कोमल अगुलियों से मधुर वशी को अधरो पर सुशोभित करके जो अनुपम तान छेडी उस स्वर-लहरी के पीयूष वर्षण से आज भी कान आपूर्ण है, फिर भला उन्हें योगादि की अन्य बाते कैसे सुनाई दे सकती है। मृगी के समान ही मृगलोचनी

ब्रजागनाओ की दशा हुई। मृगी वशी के स्वर के विष से प्राण तजकर भी मारने वाले को नही जान पाती हम भी उनकी मादक वशी के स्वर-सम्मोहन में पडकर उनके स्वार्थ पूर्ण रूप को न पहचान सकी। कृष्ण ने गोधन युक्त ब्रज को त्यागकर यश भी प्राप्त किया किन्तु आप विचारपूर्वक कहना कि भोली प्रेमिकाओ को त्यागकर चले जाने मे कौन सी शास्त्रयुत रीति थी ?

विशेष—अलकार—छेकानुप्रास, उपमा, रूपक एव तुल्ययोगिता।

पद २४५

उद्धव गोपियो के हितैषी होने का दम भरते है, उसी के उत्तर मे गोपियाँ कह रही है—

हे मधुप (उद्धव)! जैसे गुणवान् एव चतुर आप और आपके वे मथुरा-वासी मित्र श्रीकृष्ण है इसे हम भली-भाँति जानती है। तुम दोनो पक्के चोर, छली और हृदय के भी काले हो। चाहे कोई तुम्हे अपना सर्वस्व समर्पण करे किन्तु तुम अपनी स्वार्थ और सुख-सिद्धि के लिए उसका सर्वस्व ही अपहरण कर लेते हो। जो इस प्रकार प्रेम मे कृपणता का व्यवहार कर, थोडी सी ही पूँजी से अर्थात् थोडा प्रेम-प्रदर्शित करके जीवन-यापन करना चाहता है, वह उन्नति नही कर सकता। सूर कहते है कि गोपिकाओ ने कहा कि तुमसे जो भी प्रेम जोडता है, वह अपना नाश स्वय करता है।

पद २४६.

गोपियाँ उद्धव और कृष्ण पर व्यंग्य करती कहती है—

हे मधुप! तुम्हारी चतुराई का क्या कहना, उस चतुराई की कोटि को तो अन्य कोई प्राप्त ही नही कर सकता किन्तु फिर भी आप हमारे लिए मूर्ख है। जैसा तू है, वैसा ही चतुर स्वामी है, वर्ण और व्यवहार मे दोनो एक समान—काले—हो। पहले तो स्नेहपूर्वक अपना प्रेमामृत पान कराया अब वे हमे योग संदेश प्रेषित कर रहे है। जिस प्रकार कमल की प्रीति मे मग्न होकर भ्रमर को सूर्यास्त का आभास न होने के कारण धोखा खाना पडा वही स्थिति हमारी है। सूर कहते है कि गोपिकाएँ बोली—'कृष्ण के अभाव मे हम हाथ मल-मल कर पछता रही है।'

विशेष—**"एक समय · · न माने"** द्वारा सूर उस प्रसिद्ध वृत्तान्त की

ओर इगित करना चाहते है जब दिनकर के अस्त हो जाने पर कमल-सम्पुट मे बन्द होकर भ्रमर सोच रहा था कि प्रात काल मे ही इस प्रेमकारागार से निकल जाऊँगा किन्तु तभी एक हाथी ने आकर कमल तोड लिया और भ्रमर का प्राणान्त हो गया। इसी भाँति गोपिकाएँ सोच रही थी कि कृष्ण से हमारा वियोग क्षणिक है किन्तु तभी उद्धव रूपी गज ने आकर उनकी आशाओ को कुचल दिया। सस्कृत साहित्य मे भी इस प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है—

"रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पकजश्रीः।
इत्थ विचिन्तयति पद्मगते द्विरेफे
हा हन्त ! हन्त ! नलिनी गज उज्जहार॥"

पद २४७

गोपियाँ निर्गुण का खण्डन कर कृष्ण मे अपनी अनन्य निष्ठा प्रकट करती है—

हे मधुप (उद्धव) ! तुम यह योग-सदेश कहकर हृदय मे पीडा का शूल उत्पन्न कर रहे हो। तुम श्रीकृष्ण के चरण कमलो से विलग होकर ही प्रेम की महिमा को भूल रहे हो। यह योग की जो कटु वाणी हृदय मे (भाले के समान) चुभा रहे हो कोमल मुख श्री कृष्ण का सदेश हो ही नही सकता। जो तुम उनके मूल कथन को यथातथ्य रूप में कहते तो तुम्हे हमारे सम्मुख यह सकोच नही होता। उधर श्रीकृष्ण को आकर्षित करने के लिए मथुरा जैसी बडी नगरी भले ही हो किन्तु इधर यमुना के सुन्दर कूल-कछार है। तुम वही जाकर निर्गुणरूपधारी ब्रह्म का स्मरण करना, यहाँ तो नदलाल कृष्ण ही प्रिय हैं। योग-सिद्धि द्वारा प्राप्त जो बडे-बड़े प्रलोभन आप वर्णन कर रहे हैं, ब्रजवासियो के लिए उनका कोई महत्त्व नही। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि हमारे साथ तो रसिक विहारी ने गलबाही डालकर प्रेम क्रीडाएँ की हैं, उसी मे हमे वह सम्पदा प्राप्त हो चुकी जिसके आगे समस्त प्रलोभन तुच्छ हैं।

पद २४८

गोपिका निर्गुण को अपनाने मे अपने मन की विवशता बताती है—

हे मधुप ! मेरा मन यहाँ नही है, वह एक बार श्रीकृष्ण के साथ जाकर लौटा ही नही। नन्दनन्दन ने उसे अपने नेत्रो के चपल कटाक्षयुक्त स्मित से क्रय कर अपना क्रीतदास बना लिया है। तुम उसे ही अपना योग-सदेश सौप आओ क्योकि वह अपना स्वाभाविक घर भूलकर कृष्ण के ही आधीन रहता है। सूर वर्णन करते है कि उद्धव से गोपिकाएँ कहती है कि उसे कौन समझा सकता है जो दूसरे के साथ रस क्रीडा मे संलिप्त है। यहाँ ब्रज मे तो आपके निर्गुण की योग साधना का कम मूल्य लग रहा है अर्थात् लोग आदर नही कर रहे है, इसलिए आप इसे अन्यत्र ले जाओ। यहाँ इसका कोई ग्राहक नही।

पद २४९

"पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहि ते नर न घनेरे" के आधार पर गोपियाँ उद्धव के निर्गुण का खण्डन करती है—

मधुप ! तुम हमे ही यह उपदेश बघारते हो। श्रीकृष्ण के अभाव मे बारम्बार यह ज्ञान कथा ब्रजागनाओ के सम्मुख कह कर इस छलपूर्ण चर्चा से क्यो अपने प्रति हमारे हृदयो मे घृणा उत्पन्न कर रहे हो? तुम ज्ञानी कहलाते हो तनिक तुम्ही विचार कर तो देखो कि जिस सुन्दर शरीर का शृगार चन्दन-चर्चित अगराग और कुसुम-मालाओ से किया है, वह इस योग-साधना को सुनकर कैसे शान्ति लाभ कर सकता है? दूसरे के नेह-सम्बध को छुडाने से पहले अपनी ओर तो दृष्टिपात करो। समस्त सुमनो को नीरस एव अग्राह्य समझ कर कमल के प्रेम-पाश मे ही क्यो आबद्ध हो जाते हो? कमल के प्रेम मे ही क्या (सूर कहते है कि गोपिकाओ ने कहा कि) तुम सर्वदा उन श्रीकृष्ण के सम्पर्क मे रहते हो जिनके नेत्र हाथ, चरण एव मुख सभी कमल जैसे सुन्दर है। उनका प्रेमी होकर भी तू हमे क्यो व्यर्थ अधिक बुलवाता है।

पद २५०

गोपिकाएँ उद्धव को बनाती हुई कहती हैं :—

यह गोपाल कौन है, कहाँ का निवासी है और किससे इसका प्रेम-सम्बध है। आपके द्वारा हमारी हितकामना को ध्यान मे रखते हुए यह योग सदेश किसने प्रेषित किया है एव तुम यह योग-सद्रेश किसे सुना रहे हो ? उनका व्यवहार तो भ्रमर के समान ऐसा है कि इच्छानुसार चाहे जिस कली का रसपान करे, चाहे वह लता उनके रसपान द्वारा हरी-भरी हो चाहे सूखे इससे उनका क्या घटता-बढता है। जिम प्रकार आखेटक अपनी वशी की राग-रागनियो के स्वर-सम्मोहन से मृग को स्तम्भित और चकित कर देता है किन्तु फिर विश्वासघात कर अत्यत तीक्ष्ण बाणो से उसका प्राणान्त कर देता है। ऐसा ही विश्वासघात कृष्ण ने हमारे साथ किया है। हमारे प्रेम का यह प्रतिकार है किन्तु उनके स्वभाव मे ही ऐसा है। दूध पिलाती हुई पूतना का अन्त किया, छिप कर बाली का वध किया, छलपूर्वक बलि से दान लिया। अबलाओ को कष्ट देने मे वे सकुचाते नही है, शूर्पणखा और और ताडका को भी तो उन्होने ही मारा था। अत. वे हमे जो यह असह्य विरह-वेदना दे रहे है, यह उनके स्वभाव के अनुसार ही है।

विशेष—१. अलकार—अप्रस्तुन-प्रशसा, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास। २. अन्तिम चरण से सिद्ध होता है कि सूर अपने आराध्य का विष्णु से सम्बध स्थापित कर पुष्टिमार्गानुकूल इष्ट के 'स्वरूप' का चित्रण करते है।

पद २५१

गोपियाँ श्रीकृष्ण की निष्ठुरता के प्रति व्यंग्य करती हुई कह रही है—

हे सर्वव्यापी प्रभु कृष्ण! इस मधुकर को हमारा कुशल सदेश लेने के लिए भेजना आपकी सर्वव्यापकता के अनुरूप नही है। आप सर्वव्यापी होने के कारण इसे बिना भेजे ही हमारी कुशलता ले लेते। मथुरा की नागरियो के रूप-दर्शन से आपको दो बातें तो पूर्ण विस्मृत हो गई, प्रथम ब्रजवासियों का अपार स्नेह एव दूसरे अपने प्रीति-वचनों को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा। जब से आपका कुब्जा से मिलन हुआ, तब से समस्त व्यवहार ही बदल गये, आपने प्रेमियो को उपेक्षित करने की नई लीक चला दी। यह उद्धव तो बडा सज्जन है, आपने इसे बहका कर ब्रज मे उल्लू बनाने के लिए भेज दिया और यह बेचारा यह रहस्य जान भी न पाया। जो कुछ आपने इससे कहा

उसे वैसा ही मानकर यह शीश पर योग साधना की गठरी लाद लाया। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने अत्यत उपालम्भ भरी वाणी कही—आपके राजकीय रौब का क्या कहना जो इस प्रकार धोखा देकर प्रेम मे विश्वास-घात किया। आपको भले हो करोडो सुख हो किन्तु व्रज मे तो एक पल के लिए भी शान्ति नही।

पद २५२

गोपी उद्धव को फटकारती कहती है—

मधुप ! क्यो व्यर्थ की बकवास कर रहे हो ? मुझे तुम पर तनिक भी विश्वास नही, तू कपटी है जो हृदय के भेद को प्रकट नही कर सकता। तू अत्यत चपल और ओछी प्रवृत्ति वाले कृष्ण का ही मित्र तो है जो चारो ओर स्वार्थवश आकुलित सा घूम रहा है। तू हमारी प्रेम साधना को छुडवाकर योग ग्रहण कराया चाहता है, भला मुक्ता, कॉच, कपूर, कड्नी खल तू सभी का समान महत्व क्यो समझ रहा है ? सूर वर्णन करते है कि वियोगाकुल गोपियाँ उद्धव से बार बार निवेदन करती है कि अपने योग के कटु वचनो से हमे क्यो दग्ध करता है ? अमृत स्वरूप आनन्द-निकेत सगुण श्रीकृष्ण की तुलना मे तू सब प्रकार से अगम्य एव हीन निर्गुण को हमारे सम्मुख रखने का व्यर्थ प्रयास कर रहा है।

विशेष—अलकार—अत्यानुप्रास एव वृत्यनुप्रास।

पद २५३

गोपिका उद्धव से कहती है—

मधुप (उद्धव) ! तेरा यह श्यामवर्ण एव कृष्ण के द्वारा कही गई चिकनी-चुपडी बातो को देखकर मेरा मन अपनी प्रीति-रक्षा के लिए विकल है। हम उनके दर्शन कर चरण-स्पर्श मात्र करना चाहती है, रसलोभी भ्रमर ! इसके अतिरिक्त हमारा अन्य कोई मन्तव्य नही, तुम व्यर्थ ही हमे इस दर्शन से वचित करना चाहते हो। जब वे हमारे शरीर का आलिंगन कर लेते थे, उस पर कुकुम का अगराग लगा देते थे, तो फिर तनिक दर्शन देने मे क्या बाधा है ? उन्होने अपनी दृष्टि के हृदयहारी वकिम कटाक्ष से हमारी बुद्धि

का विवेक ज्ञान एव वाक् चातुर्य सब कुछ अपहृत कर लिया, उनकी अब व्रज मे ऐसी कौन सी अमूल्य वस्तु रह गई थी जिसके लिये आप निर्लज्जता-पूर्वक यहाँ आ चढे ? तू अब तक किस प्रयोजन से हमारे सम्मुख निर्गुण की योग-साधना का राग अलाप रहा है ? सूर वर्णन करते है कि गोपी बोली "हमारे लिए इससे बडी क्या गाली हो सकती है कि आप हमे त्रिगुणातीत निर्गुण को अपनाने और कृष्ण को छोडने की शिक्षा दे रहे है !"

विशेष—"त्रिगुन अतीत"—त्रिगुणातीत से तात्पर्य ऐसे ब्रह्म से है जो तीन गुणो से असम्पृक्त है, वे तीन गुण है—

सत्, रज, तम अथवा जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति।

पद २५४

गोपियाँ श्रीकृष्ण की भ्रमरवृत्ति पर व्यग्य करती उद्धव से कहती हैं—

मधुप ! तुम जैसे भला किसी की मित्रता का निर्वाह कर सके हो ? कुछ समय के लिए किसी से प्रेम-सम्बध जोड तुम अन्यत्र चल देते हो—

"**रस रहते-रहते रहते है कलियो पर अलियो के फेरे।**"

तुम अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए नूतन-नूतन ढगो का सृजन कर इधर-उधर भ्रमित होते फिरते हो। अपनी इच्छा की परितृप्ति हो जाने पर प्रेम पात्र से अपना परिचय तक भुला देते हो। कृष्ण को ही देखो, अपना स्वार्थ-सिद्ध हो जाने पर हमारा मन चुराकर ऐश्वर्यमयी नगरी मथुरा मे चले गये। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि उद्धव ! तुम दूत-धर्म का परित्याग कर योगोपदेश द्वारा विष के बीज बो रहे हो। दूत का कार्य प्रिय के सन्ताप को दूर करना होता है, न कि और भी व्यथित करना।

विशेष—तुलना कीजिए—

"काम परे कछु और हैं, काम सरे कछु और।
ब्याह हुए पर कुआ, नदी सिरावत मौर॥"

पद २५५

गोपियाँ अधिकारी भेद के आधार पर निर्गुण का खण्डन करती है—

मधुप ! तुम जैसे ज्ञानी ने नारियो को योगोपदेश देने की यह अनीतिपूर्ण

नीति कहाँ पढी ? आपकी नारियो को यह योगोपदेश लोक व्यवहार, वेद तथा अन्य शास्त्र के नियम विरुद्ध है। हमारी तो प्रीति मे दोष हो सकता है किन्तु जन्म-भूमि ब्रज एव स्नेहामयी माता यशोदा को उन्होनें क्यो विस्मृत कर दिया। अब वे कुब्जा पर व्यंग्य करती कहती है कि अत्यत कुलीन गुणो एव रूप की अतुलनीय खान उस कुबडी कुब्जा दासी को उन्होने क्यो अगीकृत कर लिया ? अपनी इसी भोग-वृत्ति के बल पर वे हमे योगोपदेश प्रेषित कर रहे हैं। योग समाधि की दुर्वहता एव गूढता के ही कारण शास्त्रो ने इसे केवल मुनिमार्ग माना है, फिर भला हम अज्ञ गोपिकाएँ इसको किस प्रकार हृदयगम कर सकती है ? यदि आप अपने निर्गुण ब्रह्म को सर्वान्तर्यामी मानते है तो इससे बडी गाली पतिव्रता नारियो के लिए क्या हो सकती है ? सर्वान्तर्यामी होने के कारण वह उनके हृदय मे भी निवास करेगा, जबकि पतिव्रता नारियो की एकमात्र गति उनके पति ही है। अत हे मधुप ! अब चुप रह, अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए अधिक अप्रीतिकर विषाक्त वचन मत कह। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने आक्रोशपूर्ण वाणी मे कहा कि हम मनसा-वाचा-कर्मणा सत्य कहती है कि तुम अब तक श्याम के मित्र होने के नाते दण्डित नही हो रहे हो, अन्यथा ऐसी अप्रीतिकर वचनो का हम बहुत दण्ड देती।

पद २५६

गोपियाँ उद्धव को फटकार लगाती कहती है—

हे मधुप ! तुम यहाँ से चले जाओ। तुम्हे देखकर हमारे नेत्र और शरीर विरह-ताप से सतप्त रहते हुए भी और अधिक दग्ध होते है। अपने इस योग को सावधानी से रख ले, यहाँ इसका कोई ग्राहक नही, व्यर्थ मे इसे क्यो हमारे पल्ले भेडने का प्रयत्न करते हो ? केवल तेरे मन्तव्य को पूरा करने के लिए हम अपने मुख के मीठे स्वाद को खारा नही कर सकती अर्थात् सगुण को छोड निर्गुण को ग्रहण नही कर सकती। हमारे हृदय मे शैशव से ही कृष्ण के गुण और नाम बस रहे है, तुम व्यर्थ उस प्रीति को छुडाने का प्रयत्न कर रहे हो। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा

नि हम सबकी यह सर्वसम्मत और दृढ मान्यता है कि तुम सब काले वर्ण वाले हृदय के भी काले वर्ण वाले और कुटिल हो।

पद २५७.

गोपियाँ कृष्ण की निष्ठुरता के प्रति अत्यत मार्मिक आत्माभिव्यजन करती हैं—

मधुकर ! यह दूसरे लोग अर्थात् जो हमारे यहा के नही हैं, पथिक के समान हैं। वे थोडे समय अपनी स्वार्थसाधना के लिए रुक जाते है, अन्तत तो फिर वे चले ही जाते है और फिर कभी नही लौटते। पहले कृष्ण हमे योग की अमूल्य सिद्धि भेज रहे थे किन्तु यह ज्ञान उसमे बाधा के रूप मे आ गया। अर्थात् पहले तो कृष्ण हमे योगसाधना द्वारा प्राप्त समस्त सुख ही भेज रहे थे किन्तु उद्धव के बाधा रूप मे आगे आ जाने से उन्होने यह निर्गुण का ज्ञान योगसाधना का उपदेश ही भेजा। अब वे हमारे लिए विरक्तिपूर्ण योग-मार्ग एव कुब्जा के लिए भोग विलास की व्यवस्था कर रहे है। सूर कहते है कि गोपिकाओ ने कहा कि उन नदलाल श्री कृष्ण से क्या कहा जाय ? उनके समयानुसार अनेक स्वभाव हो जाते है— कभी हमसे प्रेम, कभी कुब्जा से। अथवा उन नदलाल श्री कृष्ण से क्या कहा जाय जिनको हम सत्य भाव से प्रेम करती हैं। अब तो उन्हे ही अपना तन, मन— सर्वस्व अर्पित कर दिया है, इस व्रत के पालन करने मे हमारे प्राण रहे या चले जायँ— इसकी चिन्ता नही।

विशेष— अन्तिम पंक्ति मे पुष्टिमार्गीय भक्ति के अनुरूप 'मार्जार-शिशुवत्' आत्मसमर्पण मिलता है। पुष्टिमार्गीय भक्त का विश्वास है—

"कृष्णानुग्रहरूपा ही पुष्टि ।"

गोपिया इसी का पालन करती है।

पद २५८

गोपिया उद्धव से कहती है —

मधुकर ! तुम अत्यत चतुर और ज्ञानी हो, जानते तो तुम तीनो लोको की बाते हो किन्तु ब्रजागनाओ के कार्यसाधन के लिए तुम अज्ञ बन रहे हो। जिस सुन्दर केश-राशि मे स्वर्ण-कटोरे भर भर कर तेल एव सुवासित पदार्थ लगाये है, उनमे तुम भस्म लगाने को कहकर बच्चो के टेसू के खेल जैसी बात बता

रहे हो कि अभी उसका स्वरूप प्रस्थापित किया और कुछ देर बाद टेसू माग कर सरोवर मे समर्पित कर नष्ट कर दिया । जिन सुन्दर बालो की प्राण-वल्लभ ने अपने हाथ से सुन्दर वेणी गूँथी थी उन्ही को जटाओ के रूप मे परि-वर्तित करने का साहस उद्धव तुम्हे कैसे हुआ ? जिन कानो को ताटङ्क, खुभी एव कर्णफूल आदि आभूषणो से अलकृत किया उन्ही कानो मे तुम स्फटिक पत्थर की मुद्रा पहनाकर हमे चिथडो की कन्था पहनने की व्यवस्था बताते हो। भाल पर मुहाग बिन्दु, नेत्रो मे काजल, नासिका मे लौग, नथ एव बेसरि के स्थान पर आपने हमारे लिए श्मशान की भस्म की यह पोटली खोल दी है। जिस कण्ठ मे सुन्दर मालाएँ, मणियुक्त हार, मोती, हीरा आदि अनेक रत्न सुशोभित होते थे उसके लिए तुम अपने योग का अपूर्व आभूषण सिंगी लाये हो। जिस मुख से प्रियतम कृष्ण से सुन्दर वार्तालाप किया, रसपूर्ण गान गाये एव परस्पर हास परिहास किया, उस मुख को प्राणयाम की दीर्घ श्वासो एवं प्रश्वासो की गति मे घुट कर, बन्द रखते हुए अर्थात् मौन धारण करने पर हम कैसे जीवित रह सकती है ? जिस शरीर पर झीने वस्त्रो की चोलिया धारण की चन्दन-चर्चित अगराग लगाया और सुन्दर चन्द्र किरणो से रजित साडी धारण की, उस शरीर पर धूर्त उद्धव ! चिथडो की एकमात्र कन्था किस प्रकार पहन सकेगी ? उद्धव महाराज ! बस हम आपसे विनम्र निवेदन करती हैं कि यहा से खिसक जाइये, आपकी ज्ञान-गरिमा हम देख चुकी। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि हमारे कृष्ण बने रहे हम उन्ही का मुख दर्शन करेंगी, तुम्हारे इस योग को ग्रहण नही कर सकती।

विशेष— रत्नाकर से तुलना कीजिए—

"चोप करि चदन चढ़ायौ जिन अगन पै
तिनपै बजाई तूरि धूरि दरिबौ कहौ ॥
रस रतनाकर सन्नेह निरवारयौ जाहि
ता कच कौं हाय जटाजूट बरिबौ कहौ ॥
चद अरबिद लौं सराह्यौ ब्रजचद जाहि
ता मुख कौं काक चचवत करिबौ कहौ ॥'

—'उद्धव-शतक'

पद २५९.

गोपियाँ उद्धव से कहती है—

मधुप ! आप कहाँ से पधार रहे है ? आपको हमारे प्राणधन कृष्ण का भी कुछ पता है, जब से वह क्रूर अक्रूर उन्हे ले गया है, तब से उनकी कुशलता का कोई समाचार मिला ही नहीं। इसीलिए हमने तुम्हे श्री कृष्ण के सज्जन मित्र जानकर यह अनुमान किया था कि आप उनके पुनरागमन की तिथि की सूचना देने आए हो। किन्तु तुम्हारी योग-चर्चा सुनकर लगता है कि अब इस भाग्य मे मोहन का दर्शन नही लिखा, यह योग ही प्राप्त होगा। भ्रमर ! तुम्हारे द्वारा कथित योग के विविधासन, ध्यान, प्राणायाम सब कुछ हमे ठीक लगता है किन्तु फिर भी ये हमारे लिए अत्यन्त विचित्र है। इस सद्‌गुण पूर्ण निर्गुण का उपदेश मुनियो के ही लिए है, ब्रजबालाओ के लिए नही। मुद्रा, शृंगी, भस्म, मृगछाला, आदि योग के उपकरणो का विधान बताकर व्यर्थ ही ब्रजागनाओ के शरीर को दग्ध कर रहे हो, इनका हमारे लिए कोई उपयोग नही। (सूर कहते है) हमारे लिए तुम अलसी के (हलके बैंगनी) कुसुम सदृश वर्ण वाले मुरलीधारी प्राणधन श्री कृष्ण को क्यो नही लाये ?

विशेष—अलकार—अन्तिम पक्ति मे वाचकलुप्तोपमा।

पद २६०.

गोपियाँ भाव-विभोर होकर प्रेमातिरेक मे चाहे कृष्ण को कितनी ही खरी खोटी सुना दे, किन्तु कठिन से कठिन स्थिति मे कृष्ण पर उनका अडिग विश्वास है जिसकी अभिव्यक्ति वे स्थल-स्थल पर करती है। यहाँ भी कृष्ण पर वही अडिग-निष्ठा अभिव्यजित होती है—

मधुप ! यह योग-सदेश कृष्ण द्वारा नही कहा गया होगा। ये सब बाते तो उनकी नवीन प्रियतमा कुब्जा ने अपने प्रेम के बल पर उनसे कहलवायी होगी। उस कुटिल कुब्जा ने ही ऐसी गर्हित बाते अपने कूबड मे सहेज कर रख रखी हैं। कृष्ण जैसा प्रेमी पाकर, सखि ! वह आज हमे योग का विधान बता रही है अथवा हमे परास्त कर धूर चढाना चाहती है। जिस शोभा-सिंधु चतुर-शिरोमणि ने ससार भर की युवतियो को अपने सुस्मित से वश मे कर

लिया था, उसी ठग को रूप छीनकर कुब्जा ने निर्गुण (गुणहीन, निकम्मा) बना दिया और बदले मे ज्ञान दे दिया। सूर कहते है कि गोपिकाओ ने कहा कि जो छल हमारे साथ कृष्ण ने हमे विस्मृत कर, किया था उसका प्रतिशोध कुब्जा ने कृष्ण को निर्गुण (गुणहीन) बना कर ले लिया। उसी चतुर कुब्जा ने हमे योग भिजवाया है, कृष्ण ने नही। आज उसका कृष्ण पर अधिकार है, वह जो भी करे ठीक है—

"प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।"

—'कालिदास

पद २६१

गोपिकाए झल्लाकर उद्धव को निर्गुण के प्रलाप बद करने की फटकार लगाती है—

मधुप! समझ मे नही आता कि अब क्या अनर्थ और करना चाहता है जो निर्गुण का राग अलापे ही जा रहा है। कृष्ण के प्रयाण करते ही समस्त गोपिकाएँ निर्जीव चित्रलिखित स्वरूपो सी हो गई थी, अब तो तुम उनके प्राण-शून्य शरीर को योग सुनाकर दग्ध कर रहे हो। हमारी ऐसी तुझसे कौन सी शत्रुता है कि नन्दनन्दन के विषय मे तू कुछ भी नही कहता। तू व्यर्थ ही हमारे मन को योग साधना मे प्रवृत्त करने की व्यर्थ चेष्टा कर रहा है। उसे इस प्रेम की खेती के फल के रूप मे अच्छी प्रकार झाडकर कृष्ण अपने साथ ले गये, तू तो व्यर्थ निस्सार पुआल को टटोल रहा है। अब तो तेरा हमे योगोपदेश देना वायु को पकडने के असफल कर्म जैसा है, तू व्यर्थ मे ही श्रम कर रहा है। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाएँ कहती है कि मधुकर! अब तू अपने आवास मे चला जा अन्यथा तुझे अपने किए, इस वृथा प्रलाप का दण्ड भोगना पड़ेगा।

विशेष— १ अलकार—वाचकलुप्तोपमा, रूपक। २ प्रथम चरण से तुलना कीजिए—

"जला है जिस्म जहाँ, दिल भी जल गया होगा
कुरेदते हो जो अब राख, जूस्तजू क्या है।"

—'गालिब'

पद २६२

प्रिय चाहे कितना भी निष्ठुर क्यो न हो जाय किन्तु प्रेमी सदैव उसकी मगल कामना चाहता है। इसी प्रेमी मनोविज्ञान का उद्घाटन गोपियो द्वारा होता है—

मधुप ! हमे यही पश्चात्ताप होता है कि माता पिता जब छोटे से शिशु को देखते है उसकी मगल-कामना और भविष्य के सुनहले स्वप्नो से उनका मन भर जाता है किन्तु बडा होकर वह क्या क्या सन्ताप देता है, इसे तुम कृष्ण के उदाहरण से ही समझ लो। इसी पुत्र-मोह के कारण माता पिता यथा-योग्य यज्ञ, तप, दान, नियम-व्रत कर सोचते रहते है कि कब हमारी आशाओ का यह केन्द्र शिशु बडा होता है। ऐसा ही व्यवहार करता है जिस प्रकार कोकिल कौए से अपना पालन-पोषण कराते समय तक तो प्रेम-प्रदर्शित करती है और अपना स्वार्थ-सिद्ध हो जाने पर उसे पूछती तक नही। उसी भाँति कृष्ण ने कष्टपूर्ण व्यवहार किया। यशोदा और नंद ने उन्हे कितनी अभिलाषाएँ और दुलार के सहित पल्लवित किया किन्तु कृष्ण आज मथुराधिपति होकर उनके पास तक नही फटकते। सूर कहते है कि गोपिकाओ ने कहा कि वे चाहे कैसे भी क्यो न हो जाय हम यही शुभाशीष देती है कि स्नान करते समय भी उनका एक बाल तक बाँका न हो अर्थात् उन्हे कभी भी तनिक सी हानि न हो।

विशेष—अलकार—व्याजस्तुति, अन्योक्ति, लोकोक्ति।

पद २६३

प्रेम की अतिशय पीडा मे इस बात का पश्चात्ताप होता है कि यह प्रेम-सूत्र जोडा ही क्यो ? इसी मनोदशा की अभिव्यक्ति गोपी कर रही हैं—

मधुप ! हम कृष्ण से प्रेम करके पछता रही है। हम समझती थी कि जिस प्रकार सयोग का क्रम चल रहा है ऐसे ही चलता रहेगा किन्तु वह भ्रान्ति थी, उन्होने तो अपने मन मे कुछ और ही सोच रखी थी। इन मधुरभाषी काले वपुधारियो का विश्वास ही क्या, इनके कर्म भी कुटिल होते हैं। कैसी 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' वाली बात है कि आप तो भोग-विलास मे लिप्त होकर मथुरा मे राज्य-व्यवस्था कर रहे हैं और हमें विरक्तिपूर्ण योगो-

पदेश प्रेषित किया है। अब रात भर सूनी शय्या मुझे वियोग मे तडफाती है। (सूर वर्णन करते हैं) नंदलाल एक बार मिल कर बिछुड़े हैं, अत उस सयोग समय की स्मृति और भी दाहक है ("रस राख विदा करिबौ कठिनाई")।

विशेष—प्रथम चरण से तुलना कीजिए—

'जो मैं ऐसा जानती प्रीत करे दुख होय।
तो नगर ढिंढोरा पीटती प्रीत करै न कोय।।

—मीरा"

\+ \+ \+

"चाह मुश्किल है सब गलत है, निबाह मुश्किल हैं।"

पद २६४

गोपियाँ हृदय से कृष्ण पर विश्वास करती है, उनका मत है कि कृष्ण की यह निष्ठुरता स्वाभाविक नही अपितु सगति-जन्य है। वे उद्धव से कहती है—

उद्धव! लगता है कृष्ण मधुप की सगति मे पड़कर ही ऐसे स्वार्थ प्रवृत्ति के हो गये कि अपने ही वश मे जाकर मिल गये। हम ब्रजाँगनाएँ इस बात का विचार किये बिना आज भी उसी कमल-मुख से अपना प्रीति-सम्बन्ध बनाए हुए हैं। आखेटक के बेणुनाद पर भोले मृग की पत्नी मृगी आखेटक के छलपूर्ण व्यबहार को क्या समझे? उसके लिए तो आलाप गान और नृत्य तथा दाव लगने पर उसके शरीर पर सर-साधन सबमे एक मनोहर संगीत है। वही स्थिति हमारी है कि हमने कृष्ण के प्रत्येक व्यवहार और कृत्य मे प्रेम का आमन्त्रण पाया। श्री कृष्ण ने ब्रज मे एक जूआ खेला कि अवधि के दाव पर हमारी मिलनाशाओ को रखकर हमारे मन जीत कर यहाँ से चले गये। उनका ऐसा व्यवहार था कि जो चचल नवेली उन्हे भाती थी उसे ही वे अपने वश मे कर लेते थे। यह था उनका आतक। अपने मामा को मार कर उन्होने कोई महान् कृत्य नही किया अपितु यह ऐसा ही सनकी कार्य था जैसे मदिरा से मद मस्त व्यक्ति कोई विवेकशून्य

कार्य कर देता है। सूर वर्णन करते है कि गोपियाँ कहती है कि कृष्ण मे इतने अभाव होते हुए भी हमे वह निर्गुण से श्रेष्ठ लगता है।

विशेष—अलकार—व्याजस्तुति, अन्योक्ति।

पद २६५

गोपियाँ कृष्ण मे अपना अनन्य अनुराग अभिव्यजित करती है—

मधुप! तू हमारी दृष्टि के सामने से ओझल हो जा। सर्वथा क्रूर! तू हमे योगोपदेश देने आया है! जिस-हृदय-सदन मे सदैव सुन्दर श्यामल वपुधारी श्रीकृष्ण निवास करते है वह उन्हे छोडकर भला शून्य की उपासना क्यो करेगा? इस योग को अपना कर हम वह अपना मूलधन, अमूल्यनिधि प्रियतम कृष्ण, भी खो दे। उद्धव! तू व्यर्थ पागल बन रहा है, समस्त ब्रज-वासी गोपाल की ही उपासना करते है, इस धूलि को शरीर से लगाने वाले योगोपासक यहाँ कहाँ? जो अपने नियम और प्रेम-व्रत का पालन करते है वे ही शूरवीर की सज्ञा से अभिहित किये जा सकते है।

पद २६६.

गोपियाँ निर्गुण को अपनाने मे अपने नेत्रो की विवशता बताती उद्धव से कहती है—

मधुप! तनिक हमारे नेत्रो की बात तो सुनो। हमने अपने अन्य शरीर के अगो को तो अपने वश मे कर लिया किन्तु नेत्र हमारे वश मे नही, ये बार-बार उडकर प्राणधन के पास ही पहुच जाते है। भाव यह है कि नेत्र सदा ही उनकी रूपमाधुरी का ध्यान करते रहते है। जिस प्रकार कपोती के वियोग से व्यथित होकर कपोत अपना निवास छोड इधर-उधर भटकता फिरता है, उसी भाँति हमारे नेत्र भी वियोगाकुल होकर हरि-दर्शनाभिलाषा मे इधर-उधर भटकते है और श्रीकृष्ण की रूप-छवि के दर्शन करके ही लौटते है। हम इन पर पर्याप्त नियन्त्रण रखने का प्रयत्न करती है, पलको के कपाट लगा कर इन्हे घू घट की ओट मे छिपा कर रखती है। किन्तु श्वास लेने के समय मे ही अर्थात् पल भर मे पुन. श्रीकृष्ण के दर्शनो की खोज मे विकल हो जाते है और हृदय से कामोद्गार फूट पडते है। हमारी अन्य इन्द्रियों

को अपनी रुचि-अनुकूल रस प्राप्त हो जाते है, कान तो श्रीकृष्ण के यश को सुनकर परितृप्त हो जाते है, मन सदैव उनका ध्यान करता रहता है एव रसना उन्ही का नामोच्चारण कर तृप्त हो जाती है पर इन नेत्रो को प्राण-वल्लभ की उस रूपमाधुरी के दर्शन नही प्राप्त होते। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाएँ कहती है कि शरीर की विभिन्न इन्द्रियाँ जो अपनी रुचि-अनुकूल विषय भोग करती है, वह समस्त अगो मे परिव्याप्त हो जाता है किन्तु इन नेत्रो को उनके दर्शन कहाँ ? प्राणधन के दर्शनाभाव मे ये एक क्षण को भी चैन नही पाते।

विशेष—अलकार—रूपक एव दृष्टान्त।

पद २६७

गोपियाँ उद्धव से कहती है—

मधुप ! श्री कृष्ण जी ने जो योगोपदेश हमे प्रेषित किया है हम उसे अपना तो लेगी किन्तु क्या तब हमे श्रीकृष्ण मिल जायेगे ? उन सुन्दर, श्यामल वपुधारी श्रीकृष्ण ने राजकीय व्यवस्था मे अपना मन लगाकर गोकुल के स्नेह को विस्मृत क्यो कर दिया ? जब तक वे हमारे साथ ब्रज मे रहे हमने उनकी निरन्तर सेवा की, यदि एक बार यशोदा द्वारा ऊखल से बँधवा दिया तो उसका ही बुरा मानकर श्रीकृष्ण यहाँ आ ही नही रहे है। यदि श्रीकृष्ण अनेक प्रयत्न करे तो उन्हे राजकुमारी, प्रेमिकाएँ, तो बहुत सी मिल जायेगी किन्तु नद और यशोदा जैसे स्नेही माता-पिता मिलने असम्भव है और न मिल सकेगा गोवर्द्धन पर्वत का सुखद वास, ग्वाल-बालो का सहृदय-पूर्ण समाज एव नूतन नवनीत। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाएँ उद्धव से कहती है कि ऐसा प्रयन्न करो जिससे श्री कृष्ण पुन· ब्रज मे आ सके।

विशेष—पद्य १६२ मे भी यही भाव है, भाषा मे भी थोडा-बहुत ही अन्तर है।

पद २६८.

गोपियाँ अधिकारी भेद के आधार पर निर्गुण का खण्डन करती कहती है—

मधुकर ! अब तो हमारी विरहावस्था इस सीमा तक पहुँच गयी है कि

श्रीकृष्ण का ब्रज आना ही श्रेयस्कर है। आप से ज्ञानी के दुर्लभ दर्शन हमारे लिए सुलभ हो गये किन्तु आप हमारी वेदना की उपेक्षा क्यो कर रहे है ? श्रीकृष्ण के बुलाने का प्रयत्न आप क्यो नही करते। हम अत्यत विनम्रता-पूर्वक आपसे प्रार्थना करती है कि आप यह देखना कि प्राणधन कृष्ण का हम पर पूर्ववत् स्नेह है अथवा नही। हे मधुकर ! तुमसे इस प्रेम के रहस्य का क्या वर्णन करे, इस रस का वर्णन करना अच्छा नही, तुम केवल मात्र इतना ही समझ लो कि प्रीति का व्यवहार कुछ विलक्षण ही है जिसका अनुभव मन मे ही किया जा सकता है। "रस गोप्य" हमारे शरीर का विरह-ज्वर दिनोदिन बढता ही जाता है और नेत्रो को रात-दिन कभी भी नीद ही नही आती एव कृष्ण की निष्ठुरता तो देखो कि प्रेम का सूत्र जोडकर तोड दिया। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाएँ कहती है हे मधुकर ! तुमसे हृदय की अन्यान्य गुप्त बातो की चर्चा क्या करे ? हे प्रभु कृष्ण ! तुम अबलाओ की हत्या क्यो करना चाहते हो अर्थात् दर्शन देकर इन्हे जीवन दान क्यो नही देते ?

विशेष—स्थान स्थान पर गोपिकाएँ अपनी प्रेम-वार्ता को 'गुपुत मते की बात' कहकर प्रेम-रस की गोप्यता का प्रतिपादन करती है।

पद २६९·

गोपियाँ कृष्ण की निष्ठुरता के प्रति व्यंग्यपूर्ण उपालम्भ देती कहती हैं—

मधुकर ! इस प्रकार प्रेम मे विश्वासघात करना काले वर्ण वालो के लिए स्वाभाविक ही था। वे प्रेम के छलपूर्ण व्यवहार द्वारा चित्त लगाकर प्रिय का सर्वस्व अपहृत कर लेते है। जिस भाँति भ्रमर अपना प्रेम प्रदर्शित कर रात्रि भर पद्मकोष मे रहता है और प्रात काल सूर्योदय होते ही अन्यत्र उड़ जाता है, वैसे ही श्रीकृष्ण ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए कुछ समय हमसे स्नेह-सूत्र जोडा और अब उसे तोड़कर यहाँ आने का नाम भी नही लेते। जिस भाँति माता पुत्र का स्नेह सहित पालन-पोषण करती है। उसी वत्सल भाव से यदि साँप का पालन-पोषण पिटारे मे किया जाय तो वह अपनी जाति की नीच प्रवृत्ति नही छोड़ सकता और अपने पालने वालो को ही काट कर भाग सकता है। इसी प्रकार कोकिल, कौए और मृग क्षण-क्षण मे मुझे श्रीकृष्ण के प्रीति-व्यवहार की स्मृति करा रहे है। सूर वर्णन करते हैं कि गोपिका

कहती है कि श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी का अहर्निश रसास्वादन ही मुझे प्रिय लगता है।

विशेष—अलंकार—छेकानुप्रास, उदाहरणमाला।

पद २७०

गोपियाँ निर्गुण का खण्डन कर श्री कृष्ण मे अपनी अनन्यता प्रतिपादित करती है—

मधुकर ! तुम बारम्बार क्यो निर्गुण के गुणो का राग अलाप रहे हो ? यह निर्गुण-चर्चा मथुरा की नागरियो को ही प्रिय होगी, इसलिए तुम यह प्रसग वही छेडना जिससे कुछ हाथ भी लगे। तुम श्रीकृष्ण के चरित्र से भी तो आप परिचित हो, अत उन्ही की कोई गुण चर्चा करो, निर्गुण का प्रसंग हमे अप्रिय लगता है। हम कमलिनियो के समान भोली थोडे ही है जो इस प्रकार हमारी मनौती करने का प्रयत्न कर रहे हो। हे भ्रमर ! तू हमारे चरणो का स्पर्श मत कर इससे हम और भी विरह से सतप्त होती हैं। हम कुब्जा के समान मूर्ख नही है जो इस चतुरता का प्रदर्शन कर हमे रिझाया चाहते हो। तुम तो हमे शिशुओ के समान गुड का प्रलोभन देकर बहकाने का प्रयत्न करते हो। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि चाहे तुम कोटि-कोटि प्रयत्न करो किन्तु हम तुम्हारे निर्गुण को नही अपना सकतीं। हमे तो कैसे भी हो चतुर शिरोमणि श्री कृष्ण का दर्शन करा दो।

विशेष— १. अलकार— मालोपमा। २ "जनि परसौ‥ ‥‥उपजावहु" मे भागवत का प्रभाव है, भागवत की गोपिकाएँ कहती है कि तेरे श्मश्रुओ मे से सौत के कुचो के सस्पर्श की गध आ रही है, अत तू हमारे पैरो में से शीश हटा ले— आदि आदि, यथा—

"मा स्पृशाङ्घ्रि सपत्न्या कुचविलुलितमाला कुंकुमश्मश्रुभिर्नः"‥ ‥‥
विसृज शिरसि पाद वेद्म्यहं चाटुकारैः‥‥‥।"

३ "अति विचित्र बहरावहु"—की कबीर से तुलना कीजिए। कबीर माया का वर्णन करने मे यही मिठाई देकर लडके को दूसरी ओर लगाने का

रूपक अपनाते है—

"पूत पियारा पिता का गोहन लागा धाय ।
हाथ मिठाई ताहि दै आपुन गया भुलाय ।।"

पद २७१

गोपियाँ भ्रमर के अग्रभाग पर पीत बिन्दु को देखकर व्यंग्य करती है—

मधुप ! तुम्हारा मुख पीला क्यो हो रहा है ? ज्ञात होता है कि तुम गोपियो को जो पीड़ा देते फिरते हो, इसीलिए तुम्हे भीतर ही भीतर यह पाण्डु रोग हो गया है, पीत बिन्दु अभी जिसका सकेत मात्र है । श्याम शरीरधारी होने से ज्ञात होता था कि प्राणधन कृष्ण के समान तुम्हारा भी तन-मन रसिक होगा किन्तु आपका योगोपदेश सुनकर ऐसी ही निराशा हुई है जैसे कृष्ण के अभाव मे सूने सकेत-स्थलो को देखकर होती है । जो कौआ उस सकेत स्थल पर बैठ कर प्रियतम कमलनयन श्री कृष्ण के वचनामृत का रस लिया करता था वही अब उस रमक्षेत्र पर कॉव-काँव की अप्रिय एव दाहक वाणी सुना रहा है । कृष्ण के इसी निष्ठुर व्यवहार को देखकर क्या लोग उन्हे धर्मपालक की उपाधि से विभूषित करते है ? इन रसमय सकेत स्थलो पर जिन्होंने मधुर प्रेम क्रीडाएँ की उनके भाग्य मे योगमार्ग ही लिखा है और उसके उपदेशक है चंचलवृत्ति भ्रमर । उद्धव तुम्हारा यह योगोपदेश वृथा है । हमारा तो वाणी और कर्म से श्री कृष्ण जी से ही प्रेम है । जब तक उनके सुन्दर नेत्रों के कटाक्ष के विषाक्त प्रभाव से हमारी मुक्ति नही होगी तब तक हम इस पृथ्वी पर वियोग की आत्मविस्मृतावस्था मे हो रहेगी । सूरदास कहते है कि गोपियो ने कहा कि अधिक कहे भी क्या जो कुछ हमारे मन मे हैं उसे श्री कृष्ण जानते है, अत. उन्हे दर्शन देना चाहिए ।

विशेष—१. अलकार—उत्प्रेक्षा, उपमा, एव रूपक । २. पुष्टिमार्गीय भक्त का 'शिशु मार्जारवत् समर्पण' गोपिकाओ मे प्राप्त होता है ।

पद २७२

गोपियाँ उद्धव को फटकारती हुई कहती है—

मधुप ! तू मधु-मद मे मदमस्त इधर उधर घूमता है । तू सीधे-सीधे

बोलता ही नही, जो मन मे आता है बक देता है। अनुचित वाणी कहते हुए तुझे लज्जा भी नही आती। मदिरापान के कारण तू इधर-उधर भ्रमित सा फिरता है। लज्जा रहित होकर सब गोपिकाओ के सामने ही लताओ एवं कलियो का मुख चुम्बन कर रहा है। तुझे अपने मन की सुधि तक नहीं, वह कही अन्यत्र ही भटकता है, इसीलिए तू अनर्गल प्रलाप कर रहा है। पहले स्वयं चेतनायुक्त हो जा तब हमसे वार्तालाप करना। तेरे मुख पर पराग की पीक लग रही है जिससे तेरी चरित्रहीनता प्रकट होती है, इसे धो क्यों नही देता। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि अब उससे क्या-क्या कहा जाय जिसने अपनी समस्त लज्जा ही खो दी है।

विशेष—१ अलकार—रूपक, हेतूत्प्रेक्षा। २. सूर-काव्य रीतिकाल का उत्प्रेरक है, इसकी पुष्टि प्रस्तुत पद से होती है। गोपिकाओ का समस्त कथन खण्डिता नायिका का वचन सा लगता है।

पद २७३

गोपियाँ 'काले रंग' को लेकर उद्धव व श्री कृष्ण पर तीव्र व्यंग्य करती हैं—

मधुप! ये तन और मन दोनो के काले बडे भयानक हैं। ये कृष्णांगी कभी भी श्वेत रग की हृदय की स्वच्छता और शुद्धता को प्राप्त नही कर सकते। इन्होने तो अपना वेष कपट-कुम्भ के समान कर रखा है, भीतर तो विष से आपूर्ण है और बाहर दिखाने के लिए अमृत लगा रखा है। भाव यह है कि ये काले तन-मन वाले कुछ आकर्षण ठगने के लिए रखते है। बाहर से तो इनकी रूप-सज्जा अत्यत आकर्षक होगी किन्तु ये हृदय से छली होते हैं। अब उद्धव आप योग का विष देकर हमारे प्राणो का अन्त करना चाहते हैं। भला सूर का स्वामी कृष्ण वह कैसे भला कहा जा सकता है जिसका रूप-रग, वचन एव कार्य सभी छलपूर्ण (काले-कारनामे वाले) हो?

विशेष—अलकार—रूपक एव व्याजस्तुति।

पद २७४

गोपियाँ मधुकर को लक्ष्य कर कृष्ण की भ्रमरवृत्ति पर व्यंग्य करती हैं—

मधुप! तुम लोग तो रस के लोभी हो। तुम अपनी प्रेमानुरक्ति के

कारण सर्वदा पद्मकोष मे बन्दी रहते हो और हमे वैराग्य पूर्ण योग शिक्षा दे रहे हो। भाव यह है कि कृष्ण तुम मथुरा मे रगरेलियो मे व्यस्त हो और हमे योगोपदेश प्रेषित कर रहे हो। अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए ब्रज-प्रदेश मे स्थान-स्थान पर चक्कर लगाते फिरते हो, पल भर भी कलियो का वियोग सहन नही कर सकते किन्तु सुमनो के झड जाने पर तुम लताओ के पास तक नही फटकते। तुम चचल वृत्ति ! सर्वागत चोर हो, तुम्हारी बातो का किस आधार पर विश्वास किया जाय ? सूरदास कहते है कि गोपियो ने कहा कि विधाता धन्य है जो उसने मधुकर के समान ही गुण वाले श्री कृष्ण का भी उस जैसा ही काला शरीर बनाया।

विशेष—१. अलकार—अप्रस्तुत प्रशंसा। २ द्वितीय चरण से तुलना कीजिए—

"रस रहते-रहते रहते है कलियो पर अलियों के फेरे।"

पद २७५.

गोपिकाएँ निर्गुण को अपनाने मे अपनी विवशता बताते हुए उद्धव से श्री कृष्ण के दर्शन कराने की प्रार्थना करती है—

मधुप ! आपके निर्गुण की गाथा को किसे सुनाऊँ ? हमारे शरीर के अग-प्रत्यग ने तो कृष्ण के गुणो को अपना रखा है, अब निर्गुण को ग्रहण करने का आग्रह किससे करे ? तीक्ष्ण बाणो के समान जब उनके वंकिम कटाक्षो का प्रहार हुआ तब उनका रहस्य ज्ञात नही हुआ किन्तु जब समय हाथ से निकल चुका था, तब ज्ञात हुआ कि वे अन्तस्तल को बेध कर पार हो गये हैं। अब उन बाणो की वेदना से ही हम घूमती रहती है, भ्रमित रहती हैं। हमारे प्राण सम्भाले नही सम्भलते, बारम्बार उन्ही प्राणधन के सम्मुख चले जाते है। यह मन टूक-टूक होकर भी उनके साथ ही लगा रहता है, पीछे पैर नही हटाता। यह असहाय जर्जर मन अपनी कठिन परिस्थितियो से इसी प्रकार सघर्षरत है जिस भाँति योद्धा का शीश कट जाने पर कबध बारम्बार उठ-उठ कर लडता है। किन्तु कबधो पर अमृत-वृष्टि करने से वे पुन. जीवन प्राप्त कर लेते है, अतः तुम सूर के स्वामी कृष्ण की दर्शन रूपी

पीयूष-वर्षा कर हमे जीवन दान क्यो नही देते ? (गोपिकाओ का अपनी कठिन परिस्थितियो से सघर्ष ही कबध-युद्ध है)।

विशेष —अलकार—सागरूपक एव उपमा।

पद २७६.

गोपियाँ उद्धव और कृष्ण के श्याम वर्ण पर व्यग्य करती कृष्ण से मिलने की आतुरता व्यक्त करती है—

मधुकर ! तुम शरीर से नही अपितु मन के भी काले दृष्टिगोचर होते हो। तुम यमुना के उस तट पर मथुरा मे ही रहते हो और यह भी सुना गया है कि तुम श्री कृष्ण के मित्र हो। हे भ्रमर ! केश कुछ समय पश्चात् श्वेत हो जाते है, साप दूध पिलाकर पोषित किये जाने पर भी कभी न कभी काटता ही है एव कोकिल अपना पालन-पोषण होने तक ही काग की परिच्छाया मे रहती है। जिस प्रकार ये सब कुछ ही अवधि के लिए साथ देते है और अपनी इच्छानुसार प्रिय को त्याग देते हैं, उसी भाँति कृष्ण ने हमे अपनी स्वार्थ-सिद्धि के समय तक ही अपनाया। श्री कृष्ण बडे छली, कुटिल एव निष्ठुर है, मुझे यह विरह-वेदना का असह्य ताप देकर परदेश चले गये हैं। वे एक बार पुन आकर न जाने कब दर्शन देगे जिससे ये नेत्र परितृप्त हो जाने। मै तो इसी निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि जो उनका कहा मानता है, वह अपना सर्वनाश ही कर लेता है क्योकि वे चोर और मार्ग मे ही चित्त को हरने वाले बटमार है। सूर कहते है कि उन प्रभु नदनदन का मन ब्रजवासी जैसे अनन्य सेवकों से वियुक्त होकर किस प्रकार रहता होगा अर्थात् ऐसे स्वामिभक्त प्रियजनो के अभाव मे उनका मन नही लगना चाहिए।

विशेष —अलकार—द्वितीय चरण मे उपमा।

पद २७७.

गोपियाँ श्री कृष्ण को ब्रज के कण-कण मे परिव्याप्त बताती उद्धव के निर्गुण का खण्डन करती हैं—

मधुप ! मथुरा कौन गया था ? आप यह योग-सदेश किसका लाये हैं और किसने इसे लिखा है ? वासुदेव और देवकी-पुत्र एव यदुकुल दिवाकर

से हमारा परिचय नही है। जब उनसे हमारा परिचय नही तो हम इस योग-सन्देश को कैसे ग्रहण करे ? आप यह सदेश पत्र प्रेषक को ही दे देना। यहाँ तो सब गोपीवल्लभ, राधिकानाथ, यशोदा और नद तनय श्री कृष्ण से ही परिचित है जो अब भी ब्रज मे प्रेम का अर्घ्य-दान स्वीकार कर प्रेम की एक नवीन पद्धति प्रस्थापित कर रहे है। आप जिस मथुराधिपति का कथन कर रहे है, वह हमारे लिए सर्वथा ही अपरिचित है। उद्धव ! तुम तो अत्यन्त ज्ञानवान् हो फिर भी यह ध्यान नही रखते कि किससे क्या कहा जाना चाहिए ? सूरदास वर्णन करते हैं कि गोपिका बोली—"ठीक है आप इस सदेश को लेकर जा तो अन्यत्र रहे थे किन्तु बीच मे पथ भूल कर यहाँ आ भटके और पागल का सा प्रलाप करने लगे।"

विशेष—तुलना कीजिए—

"ऊधो वै गोविन्द कोई और मथुरा में यहाँ,
मेरे तो गोविन्द मोहि-मोहि में रहत हैं।"

पद २७८

संयोग-काल मे प्रेमी को प्रकृति का प्रत्येक स्पन्दन अपने हृदय की प्रफुल्ल और आतुर धडकन के साथ स्वर मिलाता दिखाई पडता है तो वियोग काल मे उसी प्रकृति का कण-कण अपने साथ विरह-विदग्ध दृष्टिगत होता है। इसे ही 'सवेदना का हेत्वाभास' (Pathetic Fallacy) कहा गया है। यमुना की विकल दशा के माध्यम से गोपियाँ अपने विरह की अनुभूति कृष्ण को कराना चाहती है—

हे पथिक ! (उद्धव) तुम देख रहे हो यमुना कैसी काली पड गई है। श्री कृष्ण से तुम जाकर कहना कि वह तुम्हारे विरह-ज्वर से पीडित होकर ही काली पड गई है। वह इस समय एक रोगिणी स्त्री के समान लगती है। पृथ्वी मे बहती यमुना ऐसी लगती है मानो विरह-ज्वर से पीडित होकर वह पलग से गिर कर पृथ्वी पर आ पडी है। उसकी उठने वाली तरगे ही शरीर की तडपन है। तट पर फैली हुई बालुका राशि मानो उसके उपचार की औषधि है और यमुना की धारा का प्रवाह ही रोगिणी के शरीर का प्रस्वेद है। तट पर खडे हुए कुश एव काँस आदि ही मानो उसकी उलझी-सुलझी

केश-राशि है और यमुना तट पर एकत्रित कीचड ही मानो उसकी काजल सी चिक्कट साडी है। उडता हुआ गु जायमान भ्रमर ही इस वियोगाकुल नारी का मतिभ्रम है जिसमे यह अपने वियोग-दग्ध अगो को लेकर घूम रहा है। अहर्निश चकई की रट के बहाने सन्निपात की अवस्था मे यह प्रलाप कर रहा है किन्तु यमुना की इस ज्वर-पीडिता के समान स्थिति को कौन स्वीकार करेगा ? सूरदास कहते है कि गोपियो ने कहा कि हे प्रभु जो वियोग-विदग्ध स्थिति इस यमुना की है, उसी भाँति हम संतप्त है।

काव्य-सौन्दर्य – १ अलकार—उत्प्रेक्षा—वस्तु एवं हेतु, मानवीकरण से पुष्ट साङ्गरूपक एव अपह्नुति।

२ 'उन्माद' नामक विरह दशा का चित्रण।

३ 'पन्त' ने भी गगा का ऐसा ही मानवीकरण किया है—

"सैकत-शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वगी गगा ग्रीष्म-विरल,
लेटी है श्रान्त, क्लान्त निश्चल।"

प्रकृति की ऐसी दशा बताकर कवि अभिव्यजित करना चाहता है कि जिस प्राणधन के वियोग मे निर्जीव प्राकृतिक उपादानो की ऐसी स्थिति है तो उसके सहचर मानवो की क्या दशा होगी। कालीदास ने भी शकुन्तला के पतिगृह-गमन पर प्रकृति के माध्यम से मानव की वेदना को इसी भाति व्यक्त किया है—

"उद्गलितदर्भकवला मृगी परित्यक्तनर्तना मयूरी।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लता॥"

पद २७९

गोपिया श्री कृष्ण की पुरातन प्रेम-प्रीति के सुखदायी कार्य-व्यापार का वर्णन कर उद्धव से व्यग्यपूर्वक कह रही है—

उद्धव ! सुना है अब मथुराधिपति कृष्ण मुरली को देखकर लज्जित हो जाते हैं। यदि मुरली की चर्चा या दर्शन हो जाता है तो वे सिहासन पर बैठे ही बैठे लज्जावश शीश झुकाकर मुस्करा देते है। राजभवन की दीवारों पर चित्रित गौओं को देखकर ही वे सकुचित हो जाते है। यदि मयूरपच्छ का पखा

दृष्टिगत हो जाता है तो इधर-उधर की चर्चा कर उधर से निरपेक्ष हो जाते है एव यदि कभी कोई हमारी प्रीति और सहवास की चर्चा चला देता है तो कृष्ण एक दम सहम जाते है। सूर वर्णन करते हैं कि गोपिकाओ ने कहा कि यदि ब्रज को वे इस प्रकार विस्मृत करते है तो दूध और दही का सेवन क्यो करते हैं।

पद २८०

वर्षा-ऋतु के आने पर गोपियो की विरहाकुलता और भी बढ जाती है और वे उद्धव से कह उठती है—

क्या मथुरा मे मेघ नही बरसते ? यदि बरसते तो कृष्ण निश्चय ही इस समय हमारी स्मृति मे तडप कर हमे दर्शन देते। श्री कृष्ण ने मेघपति इन्द्र को धमका दिया होगा कि मथुरा मे वर्षा मत करना। यदि मेडक अपनी स्वर-ध्वनि से वर्षा का आभास देते तो उन्हे सर्पो ने समाप्त कर दिया होगा। सम्भवत मथुरा मे बगपॉति उमडकर हृदय को उमगित नही करती और न मूसलाधार वृष्टि से पृथ्वी ओत-प्रोत होती है। कदाचित् प्रियतम के उस देश मे मयूर, चातक, कोकिल—सभी वधिको ने विशेष रूप से समाप्त कर दिये होगे जिससे श्रीकृष्ण को हमारी स्मृति नही आती। उस देश की युवतियाँ उमग और उल्लास मे भरकर हिडोले झूलती हुई हर्षपूर्ण और प्रेमोन्मत्त कर देने वाले गीत नही गाती, अन्यथा श्रीकृष्ण को हमारी सुधि अवश्य आती। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि उस दिशा को यात्री भी तो नही जाते जो प्रियतम को सदेश भी भेज दे।

विशेष—१. अलकार—सदेह। २. उद्दीपन रूप मे प्रकृति का सुन्दर वर्णन हुआ है। ३. तुलना कीजिए—

> **"क्या याद नही आती होगी**
> **जब नीले अम्बर की गोदी काले मेघों से भर जाती होगी।"**
>
> —डा० रामकुमार वर्मा।

पद २८१

प्रकृति के उद्दीपक उपकरणो के माध्यम से गोपिकाएँ अपनी विरह-दशा अभिव्यजित करती हैं—

एक सखी कही से नवीन समाचार सुनकर आई और बोली कि इस समस्त ब्रज-प्रदेश को कामदेव ने देवराज इन्द्र से जागीर के रूप मे प्राप्त कर लिया है। कामदेव का अधिकार यहाँ एक प्रान्तपति के रूप मे हो रहा है। मेघ उसके दूत है। बगपाँति उसके शीश की श्वेत पगडी है एव कभी-कभी चमक जाने वाली बिजली ही उसकी ध्वजा है। कोकिल एव चातक ऊँचे स्वर मे रट लगाकर मानो उसका जयघोष कर रहे है। मेडक, मयूर, चकोर, तोते आदि भी इस घोष मे अपना स्वर मिला कर सहयोग दे रहे हैं। कुसुमो की सुगन्ध से सुवासित भीनी वायु प्रवहमान हो रही है। विधाता के विधान में हमारा क्या वश है, कामदेव अपने समस्त दल-बल सहित गोकुल मे ही वास करना चाहता है। सूरदास वर्णन करते है कि गोपिकाएँ कहती हैं कि जब हमारे रक्षक प्राणधन कुँवर-कन्हैया यहाँ रहते थे तब कोई ब्रज की सीमा मे भी प्रवेश न कर सका और अब उनके अभाव मे ये यहाँ प्रशासन करेंगे।

विशेष—अलकार रूपक, उत्प्रेक्षा, वक्रोक्ति।

पद २८२

पावस-प्रसग मे ही गोपिकाए अपनी असह्य विरहावस्था की अभिव्यजना करती है—

देखो सखि! ये बादल भी अब बरसने के लिए आ गये हैं। हे नदनन्दन! अपने आगमन की अवधि जानकर ये उमड-घुमड़कर गगन मे आ पहुँचे हैं किन्तु आपको अब भी अपने आगमन की अवधि का ध्यान नही। सखि! ऐसा सुना गया है कि ये मेघ तो देवलोक मे रहते है और इन्द्र के सेवक है। ऐसा नियन्त्रण होने पर भी चातको की विरहावस्था से व्यथित होकर ये यहाँ बरसने आए और आप मथुराधिपति होने पर हमे दर्शन देने नही आ सकते। इन करुणाकर बादलो ने सूखे वृक्षो को पुनः हरा कर दिया, लताएँ भी प्रफुल्ल होकर वृक्षो से मिली एव मेडको को भी इन्होने पुनर्जीवन प्रदान किया। पक्षी-गणो ने भी इधर-उधर जल देखकर प्रमुदित हो अपने नीडो का वास लिया। सूर कहते है कि गोपिकाओ ने कहा कि उन करुणामय प्राणधन श्री कृष्ण ने मथुरा जाकर हमे विस्मृत कर दिया और इस वर्षागम पर भी उन्हे अपनी त्रुटि ज्ञात नही होती कि मैं कबसे रसभूमि ब्रज नही गया हूँ।

पद २८३.

यद्यपि प्रिय-अभाव मे वर्षाऋतु क्या समस्त ऋतुए बडी कष्टकारक लगती है किन्तु वर्षा की रिम-झिम मे यह व्यथा और भी पीडाकारक हो जाती है। सावन की मेघ-मल्हारे तो वियोगनियो के लिए तीक्ष्ण बाण ही सिद्ध होती है, इसीलिए श्रावणागमन पर गोपियाँ कह उठती है—

हम विरह-विदग्धा ब्रजागनाए श्री कृष्ण के अभाव मे सावन के दिन किस प्रकार व्यतीत करेगी ? पृथ्वी पर हरियाली का प्रभुत्व है, समस्त सरोवर जल से भर गये है। इस ऋतु मे तो उनके आने का मार्ग ही अवरुद्ध हो गया, अतः अब उनके प्रत्यागमन की आशा-रज्जु ही टूट गई। सुन्दर-सुन्दर परिधानो मे सुसज्जित सौभाग्यशालिनी स्त्रियो के समूह झूलने और गाने के लिए उमड रहे है। चारो ओर से बादल घुमड घुमड कर बरस रहा है और चपला की चमक तो मानो कामदेव के दूत ही है। मेडक और मोर अपने रोर से शोर मचा रहे है और चातक तथा कोकिल भी रात्रि मे अपनी मधुर ध्वनि सुना व्याकुल कर किसी योद्धा के समान घातक प्रहार कर रहे है। सूरदास जी कहते है कि गोपियो ने कहा कि ऐसी विषम वर्षा ऋतु मे एक घडी व्यतीत करनी दूभर है तो सावन की एक रात्रि कैसे कटेगी जिसमे तीस-तीस घडियाँ होती है।

विशेष—१. अलकार—प्रत्यनीक। २. "हरित भूमि······श्रावन के" से लोक काव्य की निम्न पंक्ति मिलाइये—

> "वहाँ तो भर गए नदी नाले,
> कैसे आवे आवन वाले।"

६ "गरजत घुमरि घमण्ड······धावन के।" से तुलना कीजिए—

> "घन घमण्ड नभ गरजत घोरा,
> प्रियाहीन डरपत मन मोरा।"—तुलसी

पद २८४.

वर्षा ऋतु का वर्णन चल रहा है—

हे सखि ! वर्षा ऋतु मे जहाँ प्रकृति के अन्य उपकरण दुखदायी हो गये हैं तो यह मोर भी हमारे शत्रु बन रहे है बादलों के घुमडते ही, मना करने पर

भी ये कूक उठते है जिसकी मोहकता हमे प्रिय की स्मृति दिला देती है। इन सबको एकत्रित कर मोहन ने इनके पखो को एकत्रित कर शीश पर चढः लिया था। शीश पर चढा लेने से ही कृष्ण ने इन्हे ढीट बना दिया था, इसीलिए ये हमे आज पीडित कर रहे है। सखि ! पता नही क्यो ये हमसे तो टेढे-टेढे ही रहते है। सूरदास कहते है कि गोपिकाओ ने कहा कि कृष्ण तो मथुरा मे रहते है किन्तु ये उनके मुँह लगे अभी वन से नही जाते।

पद २८५.

एक गोपी सखी से कहती है—

हे सखि ! श्रीकृष्ण को इस वियोगावस्था के लिए क्यो दोष दे रही हो ? हम जिस कारण यह विरह की असह्य-वेदना भोग रही है, उसके लिए हमारा कपटपूर्ण प्रेम ही उत्तरदायी है। इस समय हम अपने नेत्रो से अपना उजड़ा घर देखती है तो भी श्री कृष्ण के विरह से हृदय विदीर्ण नही होता। उद्धव ! तुम हमे पुरातन प्रीति-कथा की स्मृति कराकर हमारे प्राणो को व्यथित मत बनाओ। (सूर कहते है) यदि इसी प्रकार योग का प्रलाप करते रहोगे तो हमारा शरीर अस्तित्व हीन हो जायेगा।

विशेष १ अलकार—उपमा २ अन्तिम पक्ति मे प्रयुक्त मुहावरा अत्यंत सार्थक है। फाल्गुन मास मे वर्षा नही होती, यह विश्वास है। किन्तु इस प्रयोग से थोडी कठिनता अवश्य आती है क्योकि कवि दूर की कौडी लाया है।

पद २८६

जब तक श्री कृष्ण मथुरा में रहते हैं, तब तक गोपियो का दर्शनाभिलाषा का क्षीण तन्तु बना रहता है किन्तु कृष्ण जैसे ही द्वारकागमन करते हैं, गोपियो को उनके मिलन की तनिक भी आशा नही रह जाती और वे कह उठती है— "

सखि ! परदेशी कृष्ण के प्रेम की वास्तविकता प्रकट हो गई। पहले तुम ही 'कृष्ण-कृष्ण' की रट लगाकर हर्ष से विभोर हो जाती थी, अब उसका दुखदायी परिणाम देखो। तुमने अपना तन, मन, धन सर्वस्व उनको क्यो समर्पित कर दिया था ? हमारा सर्वस्व अपहृत करके उस महा ठग ने अब मथुरा का परित्याग कर सिन्धु-तट पर द्वारका मे अपना निवास बना लिया है। इस

समाचार से हमारे शरीर और भी व्यथित होते हैं और मन मे इस सदेह की पुष्टि होती जा रही है कि कृष्ण ने हमे पूर्णरूपेण विस्मृत कर दिया है। सूरदास वर्णन करते है कि इतना कहकर गोपिकाएँ प्रेम विह्वल हो गईं और उनके नेत्रो से अश्रु प्रवहमान हो चले।

विशेष—अलकार—स्वभावोक्ति एवं अतिशयोक्ति।

पद २८७.

गोपिकाएँ कृष्ण के न मिलने पर अत्यत निराश होकर कहती है—

हे सखि! प्राणधन श्री कृष्ण अब तक नही मिले, यह जन्म यो ही व्यर्थ व्यतीत हुआ जा रहा है। उनकी प्रतीक्षा करते-करते एक-एक दिवस युग के समान व्यतीत हो रहा है। चातक और कोकिल की मधुर-लहरी अब इन कानो को अप्रिय प्रतीत होती है। आज चन्दन और चन्द्र किरण जैसी शीतलता प्रदायक वस्तुएँ भी कोटि-कोटि सूर्यो के समान दाहक प्रतीत होती हैं। कृष्णागमन की आशा मे ब्रजागनाओ ने आभूषण इस प्रकार धारण किये है मानो रणभूमि के लिए प्रस्तुत योद्धा ने अगत्राण पहना हो। यह प्रेम-व्यवहार सुगम और सरल नही। गोपिकाएँ कामदेव के बाणो द्वारा निर्मित विरह-शय्या पर इसी प्रकार लेटी है जिस प्रकार अर्जुन द्वारा निर्मित बाणो की शय्या पर भीष्म लेटे थे। भीष्म मृत्युञ्जय थे, उन्होने अपने प्राणो का परित्याग सूर्य के उत्तरायण होने पर ही किया था। इसी प्रकार गोपियाँ इस विरह-शय्या पर शूरवीर के समान आसीन हैं और उनके चचल प्राण शरीर का मोह नही त्यागते। कृष्ण के आगमन की अवधि रूपी उत्तरायण की ही प्रतीक्षा मे गोपिकाओ के प्राण अटके हुए है, अन्यथा ये अब तक कभी के उड जाते।

विशेष—१. अलकार—उपमा, उत्प्रेक्षा, सागरूपक। २. भीष्म तथा अर्जुन—महाभारत युद्ध के प्रसिद्ध पात्र।

पद २८८

गोपियाँ अपनी असह्य विरहावस्था की अभिव्यजना नेत्रो को नदी बनाकर साँगरूपक के माध्यम से करती है—

हे प्राणवल्लभ केशव! आपके विरह के कारण हमारे नेत्रो की नदी में

बाढ आ गई है। इस बाढ का वेग इतना प्रबल है कि पलक रूपी दोनो तट भी डूब गये हैं। नेत्रो की पुतली रूपी नवीन नौका इसमे चल नही सकती क्योकि अपने अप्रतिहत वेग से बाढ इन्हे डुबा देती है। अर्थात् नेत्र-पुतलियाँ सदैव जलमग्न रहती है। नायिका इस प्रकार लेटी है कि शीश नीचे मे है और अश्रु भाल-बिन्दु को मिटाते हुए बहते है इसी के लिए कवि ने कहलवाया है कि हमारे दीर्घ श्वास-प्रश्वासो के समीर से तरंगो मे इतना उत्ताल है कि तटवर्ती तिलक रूपी वृक्ष भी समाप्त हो जाता है। काजल की कीच बहाकर इसने कपोल एव अधर तटो के अन्तर्वर्ती भाग को गदा कर दिया है। इस विपन्नावस्था को देखकर हाथ, पैर एवं वाणी रूपी गतिमान् पथिक वही के वही ठिठक कर रह गये है। ऐसी विरह-सतप्त दशा मे हे कृष्ण! आपके दर्शनो के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नही है, क्षण भर भी जीना दुर्वह हो रहा है। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि समस्त ब्रज-प्रदेश अश्रु-जल मे बूडा जा रहा है, कृपा करके अपने हाथ से इसे (इसी प्रकार) बचा लीजिए (जैसे गोवर्द्धन उठाकर बचाया था)। अथवा समस्त गोकुल अश्रु-प्रवाह मे डूबा जा रहा है शीघ्र ही इसे अपने दर्शन से बचा लीजिए।

काव्य-सौन्दर्य—१. अलकार—सागरूपक, अपह्नुति, वृत्त्यनुप्रास, श्लेष। २. 'जडता' नामक दशा का चित्रण। ३ सूर की नयन-नदी की बाढ ने इतना उत्पात मचाया तो कुछ आश्चर्य नही क्योकि—

"कितै न औगुन जग करें, नै बै चढती बार।"

पद २८६.

गोपियाँ अपनी विरहाकुलता का वर्णन करती कहती है—

हमको स्वप्न मे श्रीकृष्ण के अभाव का विचार व्यथित करता है। जिस दिन से श्री कृष्ण हमसे विलग हुए है, उसी दिन से इसी चिन्ता से दग्ध होती रहती है। एक दिन स्वप्न मे मेरे घर श्री कृष्ण आए और हँस कर मेरी भुजा पकड़ ली किन्तु इससे आगे उनका अधिक सहवास प्राप्त न हो सका क्योकि मेरी बैरिन निद्रा थोडी देर और न ठहर सकी। सूर कहते हैं कि अन्त में गोपिकाएँ बोली कि यह तो उसी भाँति हुआ जैसे कि चकवी जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब देखकर प्रिय-दर्शन से आनन्दित होती है किन्तु तभी पवन के

माध्यम से क्रूर विधाता जल को हिलाकर प्रतिबिम्ब नष्ट कर देता है और चकवी पुन व्याकुल हो जाती है।

विशेष—१ अलकार—उपमा एवं दृष्टान्त । २- 'देव' की नायिका भी इसी प्रकार जागकर प्रिय-छवि के लिए विकल होती है—

"सोय गए भाग मेरे जागि वा जगन में ।"

पद २६०

गोपियाँ प्रकारान्तर से श्री कृष्ण के दर्शन की अभिलाषा व्यक्त करती है—

आज हमारे नेत्र प्रिय की रूप-छवि के दर्शनार्थ तृषित है किन्तु जिस समय वे सम्मुख थे तब ये सर्वथा अज्ञानी बन गईं। यह तो कृष्ण के एक अग की ओर ही दृष्टि-निक्षेप करके आत्म-विस्मृत हो गई एवं उनकी समस्त छवि का पूर्ण दर्शन प्राप्त न कर सकी। उस रूप निधि को देखकर वे इस भाँति असमजस मे पड़ गई जैसे चोर सम्पत्ति से परिपूर्ण गृह मे प्रविष्ट होने पर कुछ भी अपहृत नही कर पाता। यही सोचते और वस्तुओ को अदलते-बदलते प्रात हो जाता है कि कौनसी वस्तु छोड़ूँ और कौन सी ग्रहण करूँ। जब वह सुधापरिपूर्ण मुखचन्द्र सम्मुख था तब उसकी रूपमाधुरी का पान नही कर सकी और अब पश्चात्ताप से मरी जा रही है। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाए कहती है कि अब तो नेत्र प्रिय-रूप-दर्शन के लिए ऐसे लालायित है कि नित्य नवीन वदनाओ से सतप्त होते रहते है।

विशेष—अलकार—पूर्णोपमा।

पद २६१

अनादि काल से प्रिय-वियुक्ताओ ने प्रेमी तक अपने अन्तस्तल मे उठने वाले ज्वार के सन्देश मेघ, पवन, कोकिल आदि को दूत बनाकर प्रेषित किये हैं, यहाँ गोपिकाएँ चन्द्रमा द्वारा अपनी विरह-व्यथा का सन्देश कृष्ण तक पहुंचाना चाहती है—

हे सागर पुत्र चन्द्र ! तुम प्रियतम कृष्ण के ही देश को जा रहे हो। वे समस्त भुवनो के स्वामी द्वारका मे रहते है। तुम अत्यंत शीतल और शरीर से अमृतमय हो, वियोगिनियो के दूतत्व की तुम मे पूर्ण योग्यता है। तुम हमारा

यह सदेश उनसे निवेदन कर देना कि आप अपना स्वार्थ सिद्ध करके हमे इस विपन्नावस्था मे छोड यहाँ विदेश मे आ बसे । जगत् के वन्दनीय, नन्दलाल, प्राण-धन कृष्ण ! फिर से आप वही नटनागर के वेष मे सुशोभित होकर ब्रज मे पधारो । सूर वर्णन करते है कि गोपिकाएँ कहती हैं कि हे नाथ ! आपने हमे इस प्रकार अनाथ कर विस्मृत क्यो कर दिया ?

विशेष—चन्द्र को दूत बनाने मे सूर ने दूतत्व परम्परा मे एक नवीन, मौलिक प्रयोग किया है ।

पद २९२

गोपिकाएँ कोयल को सम्बोधित कर कहती है—

हे सखि ! तू मेरी बात सुन ले । जहाँ पर विश्वमणि यदुकुल नाथ श्री कृष्ण निवास करत हैं वहा भी तू अपनी कूक सुना आ । हे कोकिल ! तू कुलीन और चतुर है. वियोगिनी की व्यथा को भी जानती है। इसीलिए तू श्री कृष्ण के उपवन मे बैठकर अपनी मधुर वाणी की कूक से उन्हे हमारी सुधि दिलाकर चली आ, प्रतिकार मे हम तुम्हारी दासियाँ बन जायेगी । परमार्थ मे प्राणोत्सर्ग कर देने से ही सुयश प्राप्त होता है किन्तु तू उसे सहज ही केवल अपनी वाणी सुना देने पर ही प्राप्त कर लेगी, उससे हमारे प्राणनिधि ब्रज आकर विरह-व्यथा को दूर कर देंगे । हमारा और कोई हितचिन्तक नही है, समस्त विश्व को हमने भली-भाति देख लिया है । अत तुम श्री कृष्ण के द्वार पर जाकर कूक से यह प्रकट कर देना कि वियोग-व्यथित अबलाओ को काम-देव ने घेर लिया है । वे आगे मनुहार करती हैं कि कोकिल यदि तू किसी प्रकार सूर के प्रभु कृष्ण को ब्रज ले आए तो हम उपकृत हो तेरी कीर्ति का गान किया करेंगी ।

पद २९३

प्रेमी के अभाव मे प्रकृति के समस्त सुखदायी उपकरण दग्धकारी हो जाते हैं । चन्द्रमा के इसी दाहक प्रभाव का वर्णन गोपिया करती हैं—

हे सखि ! कोई इस चन्द्रमा के अत्याचार को रोक दे । यह अपनी प्रिया कुमुदिनी को तो आनन्द देता है किन्तु हमारे ऊपर तो इसका अपार क्रोध है । चन्द्र को छिपा देने वाले उसके शत्रु न जाने कहाँ चले गये है । काली अमा-

वस्या, सूर्य, मुर्गा एव काले-काले मेघ न जाने कहाँ जाकर छिप गये जो इसे अस्त कर देते। यह चचलवृत्ति चलता ही नही, रथ रोककर खडा हो गया है जिससे विरहिणियों के शरीर मे असह्य ताप उपजता है। सूर वर्णन करते हैं कि वे सुमेरु पर्वत, समुद्र, शेषनाग सभी की निंदा करती है एव कच्छपावतार भगवान् विष्णु को भी गालिया देती है क्योकि इन सबकी सहायता से ही चन्द्रमा उत्पन्न हुआ था। वे जरा राक्षमी को देवी कहकर आशीष देती और प्रार्थना करती है कि काश ! वह खण्डित राहु और केतु को एक कर देती जिससे वह चन्द्रमा को समाप्त कर उनकी विरह व्यथा को दूर कर देता। कवि वर्णन करता है कि जिस भाँति जल से वियुक्त मछलियाँ तडपती है उसी भाँति ब्रजागनाएँ श्याम के दर्शन के लिए तडप रही है। इसलिए इनसे शीघ्र ही मदन-मोहन प्राणधन कृष्ण को मिला देना ही उपयुक्त है।

विशेष—१ अलकार—विरोधाभास, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति। २. चन्द्रमा का ऐसा ही सतापकारी वर्णन अन्य कवियो ने किया है, यथा—

"पूर्णिमा की चाँदनी सोने नहीं देती,
लीन है मन किन्तु तन की व्यथा खोने नहीं देती।"

—स० ही० वा० अज्ञेय

\+ + +

"गहै बीन मकु रैनि बिहाई, ससि बाहन तह रहे ओनाई।
पुनि धनि सिंह उरेहे लागै, ऐसिहि बिथा रैनि सब जागै।"

—'जायसी'

\+ + +

"ऐरे मतिमन्द चन्द ! आवत न तोहि लाज,
ह्वै के द्विजराज काज करत कसाई के।'

—'पद्माकर'

३. समस्त अन्तर-कथाएँ प्रसिद्ध पौराणिक कथाएँ हैं।

पद २९४.

सदेश-प्रेषित करने की कामना से गोपिका कहती है—

मैंने प्राणवल्लभ कृष्ण के लिए पत्रिका लिख रखी है, जो कोई उसे मथुरा

उन तक पहुचा देगा उसे अपने हाथ का कगन पारितोषिक के रूप मे प्रदान करूँगी। हे रसिक विहारी श्री कृष्ण ! अब वह प्रेम-व्यवहार कहाँ चला गया, जब तुम वशी की तान छेडकर हमसे मिला करते थे। अब हमारी निशा अत्यत दुखपूर्ण है, नेत्रो के अविरण प्रवाह से हमारा चन्द्रमुख भीग जाता है। यह (सम्भवत वर्षा) ऋतु मुझे तनिक भी रुचिकर नही। यह खडा हुआ सूना पर मुझे भयभीत करता है। सूरदास कहते है कि प्रभु यदि इस समय आपने दर्शन न दिया तो फिर गोपियो के अस्तित्वहीन गोकुल मे आकर क्या प्राप्त करोगे—

"का बरसा जब कृषि सुखाने
समय चूकि पुनि का पछताने।"

—'तुलसी'

पद २९५

वर्षा ऋतु आने पर विरह-विदग्ध गोपिकाएँ कहती है—

श्री कृष्ण ने विदेश मे बहुत समय लगा दिया और अब तक नही लौटे। गोपियो के नेत्रो मे श्यामल मेघ-मालाएँ देखकर अश्रु उमड आए और वे बादल को सम्बोधित कर कहने लगी कि हे आकाश मार्ग के वीर पथिक! हम तुम्हारी अनुनय करती हैं तुम यह बता दो कि कहाँ से आ रहे हो ? जहाँ वे श्याम-वपुधारी श्रीकृष्ण मिल जॉय उनसे मेरा यह सन्देश निवेदन कर देना कि अब यहा मेडक, मयूर और चातक अपनी रोर से शोर मचाकर सोते हुए कामदेव को जगा रहे हैं। सूर कहते हैं कि गोपिका प्रेम विभोर होकर कहती हैं—"स्वामी आप हमसे वियुक्त क्या हुए, दूसरो के ही हो गये॥"

पद २९६

काली कजरारी घटा को देखकर गोपियो को घनश्याम श्रीकृष्ण का स्मरण हो आता है, अत वे बादलो मे ही श्याम की प्रतीति करने लगती है—

हे सखि ! आज बादल घनश्याम श्रीकृष्ण जैसे ही है, तू इनमे उनकी रूपछवि को तो देख। बादलो के बीच पडा हुआ इन्द्रधनुष मानो उनके नवीन वस्त्रो की शोभा को व्यक्त कर रहा है। पल-पल मे चमकने वाली चपला

उनकी दंतावली की द्युति है। यह श्वेत वक-पाँति उनके वक्षस्थल पर सुशोभित मुक्तामाला है। इस रूप मे सुसज्जित हो वे हमारी ओर देख रहे है। मेघो की गर्जना को श्रीकृष्ण की समझकर उनके नेत्र अश्रुपूरित हो उठे। सूरदास वर्णन करते है कि इस प्रकार गोपाल का स्मरण करके समस्त गोपियाँ विरह व्याकुल हो गईं।

विशेष — अलकार—स्मरण, वस्तूत्प्रेक्षा एव रूपक।

पद २९७

गोपियाँ चन्द्र की दाहकता का वर्णन करती कहती है—

हे कृष्ण! आपके वियोग मे शकर जी का भाल-तिलक चन्द्रमा हमे वियोग-व्यथित कर रहा है। इस नक्षत्रराज चन्द्रमा को सुधामय कहा जाता है किन्तु मुझे तो यह अपना स्वभाव त्याग कर अग्नि-वर्षा करता प्रतीत होता है। सखि! निशा भी व्यतीत नही होती। सर्प न जाने कहाँ जा बसा है जो मेरी वेदना को, प्राणान्त कर, परिहार कर देता। चद्रमा पश्चिम दिशा को जाकर अस्त होने का नाम ही नही लेता। चन्द्र-शत्रु राहु इसकी परिसमाप्ति क्यो नही कर देता। हे चन्द्र! तुम इसी प्रकार अचल हो जिस प्रकार ऋषि-मुनिवर तथा भगवान् शङ्कर अपनी समाधि मे अटल रहते हैं। सूरदास वर्णन करते हैं कि गोपी ने कहा कि श्री कृष्ण की मनोहर मूर्ति का ध्यान करते ही यह चन्द्रमा हमारे चित्त को दाहक लगता है, हमे उसकी दाहकता असह्य है।

विशेष— तुलनात्मक स्थलो के लिए पद २९३ की पाद-टिप्पडियाँ देखिए।

पद २९८

गोपियाँ परस्पर कहती है—

हे सखि! आज की निशा की असह्य विरह-वेदना अवर्णनीय है। मन को प्रबोध देने के लिए वशी-वादन प्रारम्भ किया किन्तु उसका परिणाम और भी सतापकारी सिद्ध हुआ क्योकि चन्द्रमा की गति बन्द हो गई, उसके रथ के मृग मुरली की मधुर स्वर-लहरी पर विमोहित होकर रह गये। प्रियतम कृष्ण के अभाव मे कामदेव अपने नूतन नूतन बाणो से मुझे व्यथित कर रहा है। अत्यत विरह-व्यथित गोपिका कह उठी कि सर्प न जाने कहाँ चले गये जो मुझे

डस कर इस कष्टप्रद जीवन का अन्त भी नही कर देते। अत्यत विरहातुर होकर वह सिह का चित्र खींचने लगी जिससे चन्द्र रथ मे जुते मृग उसे देखकर भाग जाँय और उसकी इस कारुणिक दशा का अन्त हो। सूरदास वर्णन करते हैं कि इस प्रकार चन्द्रमा का रथ तो चला गया एव पीछे से सूर्योदय होने लगा।

विशेष—१ अलकार—विषादन (जहाँ चित चाहा वस्तु ते, पावे वस्तु विरुद्ध) २ तुलनात्मक स्थलो के लिए पद २९३ की पाद टिप्पणियाँ देखिए।

पद २९९.

गोपियाँ अपने नेत्रो की विरहाकुलता का वर्णन करती कहती है—

हे सखि! हमारे इन नेत्रों से तो मेघ भी पराजित हो गये। बादल तो पावस-ऋतु मे ही बरसते हैं किन्तु ये सर्वदा बिना ऋतु के भी अश्रुपूर्ण रहते हैं। दीर्घ श्वास-प्रश्वास की उत्तप्त और प्रचण्ड वायु अत्यत दुखदायी है जिससे तटवर्ती (तिलक आदि के) अनेक वृक्ष नष्ट हो गए हैं। वर्षा-ऋतु जानकर वचन रूपी पक्षीगण अपने नीड रूपी मुख मे ही वास करते हैं। गोपिकाओ के वक्षस्थल की कचुकी पर कज्जलमिश्रित अश्रु टपक-टपक कर बह रहे है। दोनो स्तनो के मध्य अश्रुओ का यह प्रवाह ऐसा प्रतीत होता है जैसा शिव की पर्णकुटी के मध्य धारा बहकर दो उटजो को अलग अलग कर रही हो। ये नेत्र श्री कृष्ण का गुण स्मरण कर अहर्निश अविरल अश्रु धारा प्रवाहित करते रहते है। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाएँ कहती है कि अश्रुधारा मे डूबते ब्रज की हे गोवर्द्धन धारी प्राणवल्लभ! आपके अतिरिक्त कौन रक्षा कर सकता है?

विशेष—१ अलंकार—सागरूपक, व्यतिरेक, परिकराकुर। २ अन्तिम चरण के पूर्वार्द्ध मे नाद-सौन्दर्य दर्शनीय है।

पद ३००

गोपिकाएँ कोकिल को सम्बोधन देकर कहती हैं—

हे कोकिले! तू यहाँ से कृपा कर अन्यत्र उड जा। अपनी मधुर-वाणी से विभिन्न प्रकार की स्वर लहरियाँ सुना कर तू यहाँ किसे रिझाया चाहती है।

मुख नीचा किये हुए ऊँची-ऊँची कूक देकर किसी क्रूर पशु के समान क्रुद्ध होकर हमे इतना सतप्त क्यो कर रही है ? तू भी समस्त जगत् की भाति निर्दय हो गई, कोई भी हमारी विरह व्यथा को सुनता या अनुभव नही करता। हे कामदेव ! तू हमे मुँह फाडकर खा मत अपितु कम से कम प्राणवल्लभ के प्रत्यागमन की अवधि तक तो हमारे शरीर को सुरक्षित रहने दे। तू तो शिव के द्वारा भस्म किये जाने पर दग्ध शरीर की व्यथा का अनुभव कर चुका है, तुझे अधिक क्या समझावें ? नदलाल श्रीकृष्ण की वियोगावस्था अत्यंत सतापकारी है जिसका वर्णन करना असम्भव है। सूर वर्णन करते है कि गोपिका कहती है कि हे कोकिल ! श्री कृष्ण के अभाव मे तू मौन धारण करके ही हमे उपकृत कर दे।

पद ३०१

गोपिकाएँ उद्धव से कहती है—

मधुप (उद्धव) ! सदेश-प्रेषण मात्र से ही योग को नही अपनाया जा सकता। आपके असख्य प्रयत्न करने पर भी ब्रज मे इस उपदेश को कोई नही अपनावेगा। जिस भाँति चकवी को सध्या समय अपने प्रियतम के बिछुडने पर यह विश्वास होता है कि प्रात काल मे पुनर्मिलन होगा, उसी भाँति हमारा भी यह अटूट विश्वास है कि वियोगावधि समाप्त होने पर हमे निश्चय ही कृष्ण-दर्शन प्राप्त होगा। भला प्रिय का अनन्य नेही चातक कानन मे रहता हुआ किसी का क्या अहित करता है ? किन्तु आखेटक उसे भी अपने शर सधान का लक्ष्य बनाता है। इसी भाँति हम कृष्ण की स्मृति मे सन्तप्त वियोगाकुल गोपियाँ किसी का क्या बिगाडती है ? किन्तु तुम फिर भी हमे अपने कटु योग-सदेश से मर्माहत कर रहे हो। हमारी प्रेम-नगरी तो उन प्राणधन के अभाव मे सूनी ही है, अन्य नगरवासियो से हमे क्या प्रयोजन ! सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने तीव्र व्यग्य करते हुए कहा कि दूसरे की विषम अवस्था को देखकर भी काली जाति वालो (कृष्ण और उनके समस्त साथियो) का स्वभाव थोडे ही परिवर्तित हो सकता है, दूसरो को डसना अर्थात् सन्तप्त करना ही इनका धर्म है।

विशेष—१. अलकार—अन्योक्ति । २· "नगर एक··· · सबै सन" से तुलना कीजिए—

> **"कहा करौं बैकुण्ठ लै, कल्पवृक्ष की छांह।**
> **अहमद ढाक सुहावने, जहँ प्रियतम गलबाँह ।।**
>
> —अहमद

पद ३०२

गोपियाँ श्री कृष्ण के ब्रज न आने पर अनुमान लगाती हुई व्यग्यपूर्वक कहती है—

हे सखि ! नदलाल किस भय से गोकुल नही आये— सुन । वे हमारे निष्ठुर व्यवहारो से सहम कर ही मथुरा मे रह गये है । वे सोचते होगे कि यदि ब्रज चला गया तो बहुत सबेरे प्रहर रात्रि रहते ग्वाल-बाल आकर मुझे जगा दिया करेगे और गोपिकाएँ मुझे नगे पैर ही बन मे गौ-चारण के लिए भेज दिया करेगी । एकाकी घर मे जब मैं दही और मक्खन चुराऊँगा तो वे मुझे पकड लिया करेगी एव प्रफुल्लित होती हुई यशोदा के पास पकड कर ले जायेगी एव वह ग्वालिनी यशोदा पुन न जाने कितने आरोप लगा, खरी-खोटी सुनाकर मुझे ऊखल से बाँध देगी । (सूर कहते है कि) वे यही सोचते होगे कि इन सब वेदनाओ को पुन सहने ब्रज मे कौन जाय ?

विशेष— १ वक्रोक्ति से पुष्ट ब्याजस्तुति अलकार है। २. स्मृति—सचारी ।

पद ३०३

उद्धव के मथुरा लौट जाने पर कृष्ण का अन्य कोई सन्देश न प्राप्त होता देख गोपिकाएँ कहती है—

सखि ! जब से श्रीकृष्ण मथुरा गये है तब से वहाँ से कोई आकर भी न फिरा । केवल एक बार उद्धव ने आकर उनकी कुछ कुशलता बताई थी । हमे यही चिन्ता रहती है कि श्रीकृष्ण ने लौटने मे इतना विलम्ब क्यो किया ? ब्रजनाथ प्राणधन केशव ने पत्रिका भी प्रेषित करने की कृपा न की । अब तक तो उनके प्रत्यागमन का अवलम्ब शेष था किन्तु यदि कृष्ण अब न आये तो मन पागल हो जायगा । सूर की गोपियाँ कहती हैं कि हे स्वामी ! चातक

'पी-पी' की मधुर स्वर लहरी छेड रहा है एवं मेघमालाएँ उमड कर आकाश मे आ रही हैं। वर्षागम के सूचक इन चिह्नो से हमारी विरह-वेदना और भी व्यथादायी हो गई है, अत शीघ्र आकर दर्शन दो।

विशेष— गोपियाँ अनेक स्थानो पर रमणीक प्रकृति के विविध उपकरणो की ओर इ गित कर योगसाधना का विरोध एव अपनी वेदना की अभिव्यक्ति प्रकट करती हैं—

"ऊधो कोकिल कूजत कानन"

पद ३०४.

गोपिका उद्धव से निर्गुण की योगसाधना का खण्डन करती कहती है—

मेरा मन तो मथुरा मे श्री कृष्ण के पास ही है। वह एक बार हमारे शरीर से जाने पर पुन नही आया, उसे तो कृष्ण जी ही ले गये। हमारे नेत्रो का यह रहस्य कि इन्होने श्री कृष्ण के रूप को चुराया है किसी को ज्ञात नही था किन्तु किसी भेदिये ने यह रहस्य खोल दिया और हमने जो उनके रूप को चित्त के भीतर छिपा लिया था श्री कृष्ण ने उसे खोज निकाला। अपने रूप के अभाव मे कृष्ण वहाँ नीरूप हो गये और उनके मित्र उद्धव रूप रूपी मणि के बदले निराकार रूपी मट्ठा देने का उपदेश देने यहाँ आए है। यह निर्गुण के बदले हमारे गुणवान् गोपाल को लेना चाहता है किन्तु हम इसे किस प्रकार सहन कर सकती है? सूरदास वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि जिस रूप के आधार पर हम यह असह्य विरहावस्था झेलकर जीवित है उसे छीनकर छार बनाया चाहते हो?

विशेष— 'भनि दै लेहु मह्यो' मे रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

पद ३०५.

गोपिकाएँ निर्गुण की योग साधना को अव्यवहार्य बताती उद्धव से व्यग्य-पूर्वक कह रही है—

लोगो को योग-चर्चा प्रिय ही लगती है किन्तु वे सब कहने भर के लिए सुगम हैं, उनको अपनाना कठिन है। यह हमारी बात अक्षरश सत्य है इसीलिए उद्धव की बोलती बन्द हो रही है। चिता मे सती होने वाली स्त्री आग को चन्दन समान शीतल ("हुताशनश्चन्दनपकशीतल:") मानकर बहुत प्रफुल्लित

होती है किन्तु उसके सती हो जाने के पश्चात् यह बताने वाला कोई नही रहता कि अग्नि शीतल थी अथवा अत्यत दाहक । यह सब कहते है कि वीरो के लिए युद्ध खेल और तलवार कुसुम-माल है किन्तु (सूर कहते है) शूर के प्राणोत्सर्ग कर देने के पश्चात् यह बताने वाला कौन बचता है कि युद्ध का अनुभव कैसा है ? भाव यह है कि अनुभव करने पर ही किसी सिद्धात की कठिनता ज्ञात हो सकती है, योग-मार्ग को उद्धव ! आप श्रेष्ठ ही श्रेष्ठ बताते है किन्तु वह अत्यत कठिन एव अग्राह्य है ।

विशेष— १. अन्योक्ति का सकर उदाहरणमाला है ।

२ **"पर उपदेश कुशल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे ।।"**

—तुलसी

पद ३०६.

गोपियाँ प्रकारान्तर से अपने नेत्रो की विरहाकुल दशा की अभिव्यजना करती है—

हे सखि ! आज ब्रजनाथ श्रीकृष्ण के बिछुड जाने पर इन नेत्रो के विश्वास की परिसमाप्ति हो गई । यदि ये नेत्र खन्जन पक्षी के समान हैं तो उड़कर श्री कृष्ण के साथ ही क्यो न चले गये अथवा ये उनके प्रेमी होने के कारण घनश्याममय क्यो नही हो गये । इन कुटिलो ने व्यर्थ ही मछलियो की श्याम आभा को धारण किया क्योकि श्री कृष्ण रूपी जल के अभाव मे इनका प्राणान्त नही हुआ एव ये श्री कृष्ण की रूपमाधुरी पान के लोभी के रूप मे बदनाम हो गये । अब तो समय चला गया क्यो चिन्ता मे अश्रुमोचन करते हुए नित नई वेदना का अनुभव करते हो ! जैसा किया है, वैसा भोगो । सूरदास वर्णन करते है कि गोपिकाएं कहती है कि जब से पलको ने उघड़कर प्रिय कृष्ण की रूपछवि को निकाल दिया तभी से ये और भी विकल हैं ।

विशेष—१ अलकार— हीनागरूपक । २ तुलना कीजिए

"उपमा नैनन न एक गही ।"—सूर

+ + + .

"सखि री ! ये अखियाँ भई बिगरैल ।"—'भारतेन्दु'

पद ३०७

गोपिकाएँ उद्धव को कृष्ण तक सदेश पहुँचाने का अधिकारी न समझकर व्यग्यपूर्वक कहती हैं—

कृष्ण तक हमारा सदेश कौन पहुँचाये ! हम तो यह बात कि अब हमारा हितचिन्तक कोई नही है, उसी दिन जान गई थी जिस दिन चचलवृत्ति, भ्रमर कृष्ण के मित्र एव अधिकारी बने। तुम दोनो का एक सा ही स्वभाव एव छलपूर्ण व्यवहार है, अत हम तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि कृष्ण अब हमारी सुधि लेगे ही नही। वहाँ मथुरा मे नित्यनूतन कमल विकसित होता है तो फिर ब्रज मे पलाश के कारण कृष्ण क्यो आवेगे ? भाव यह है कि उन्हे वहाँ नित्य नवेली नागरियो का ससर्ग प्राप्त होता है फिर भला वे यहा गोपिकाओ के मध्य क्यो आने लगे ? किन्तु भ्रमर की चचल गति वालो की चाल-ढाल विलक्षण ही है। भ्रमर कमल कोष पर रहता हुआ भी अप्रिय चपा के रसपान का अभिलाषी रहता है। यही स्थिति कृष्ण की है। मथुरा मे नित्य नवेलियो का रसपान करते रहने पर भी चित्त हममे अटका है, इसीलिए उद्धव को यहाँ प्रेषित किया है। कृष्ण की यह सब प्रवृत्ति भ्रमर की ही सगति से हो गई है। सूर कहते है कि इसीलिए उन्होने आज गोपिकाओ की मधुर प्रीति को विस्मृत कर दिया है।

विशेष—१ अलकार—रूपकातिशयोक्ति एव अन्योक्ति।

२ "प्रगटत है नव कज ... कत आवै" मे मथुरा की नवेलियो की उपमा 'नव कज' से एव गोपिकाओ की 'किसुक' से अत्यन्त सार्थक है। टेसू के फूल का रग प्रेम से स्नात लाल होता है, इसीलिए प्रेम का रग 'मजीठ रग' माना गया है। गोपियो की प्रीति भी टेसू के पुष्प सदृश अथाह अनुरागपूर्ण एव अनन्य है।

पद ३०८.

जब तक कृष्ण मथुरा मे थे तब तक गोपियो को उनके प्रत्यागमन का विश्वास था किन्तु जब वे द्वारका के लिए प्रस्थान कर देते है तो उनकी आशा चूर-चूर हो जाती है और वे कह उठती हैं—

सखियो ! अब हमारे प्राणधन कृष्ण और भी दूर जाना चाहते हैं उनके मथुरा रहते हुए तो दर्शन की आशा थी किन्तु अब तो हमे व्यथा से घुल-घुल मरना होगा। सखी की यह बात सुनकर अन्य गोपियाँ व्यग्र होकर पूछती हैं कि तुमको यह समाचार किसने सुनाया ? तुम कहाँ से यह सुनकर आई हो, किस दिशा मे उनके रथ की धूल तुमने उड़ते देखी है ? हमे शीघ्र बताओ चलो सब कृष्ण के साथ ही चलेंगी ! नही तो इस विरहाग्नि मे जल मरेंगी। पहली सखी उत्तर देती हुई कहती है कि पश्चिम दिशा मे चारो ओर से समुद्र से घिरी द्वारका नगरी है, वही कृष्ण जा रहे है। सूर वर्णन करते हैं कि हे प्रभु आपके रूप मे गोपिकाओ की प्राणाधार सजीवनी तो कहाँ जा रही है, ये व्रजाँगनाये किस प्रकार जीवित बचेगी ?

विशेष—अलकार—रूपकातिशयोक्ति।

पद ३०९

श्री कृष्ण के द्वारका प्रयाण पर गोपिका निराश होकर कह उठती है—

इतनी दूर से भला कोई कैसे आ सकता है ? मै जिसके द्वारा द्वारका अपना सदेश प्रेषित कर सकूँ। हे प्राणधन केशव ! इतनी दूर के लिए कौन प्रस्तुत हो सकेगा ? ज्ञात हुआ है कि समुद्रतट पर एक देश है जो न कभी देखा और न सुना, केवल मन मे उसकी कल्पना ही की जा सकती है। वहाँ नंदलाल ने एक नवीन नगर बसाया है, जिसका नाम द्वारका है। वहाँ समस्त भवन स्वर्ग के ही हैं, राजा से लेकर भिक्षु तक कोई भी घास फूँस के छप्पर नही डालते। इतनी समृद्धता के कारण ही वहाँ के निवासियो को ब्रज का रहन-सहन अच्छा नहीं लगता। व्यंग्य यह है कि वहाँ के भौतिक मद मे मस्त निवासियो को ब्रज का सहज प्राकृतिक जीवन नही भाता है। सूर कहते है कि गोपियाँ इसी भाँति अनेक प्रकार से अपनी विरह-व्यथा का कथन करती हुई अपने मन मे कृष्ण से मिलने के अनेक प्रयत्न रचती है किन्तु सब व्यर्थ। अन्त मे गोपिका विरह-विकल हो कह उठती है कि कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, कुछ समझ मे नही आता। मुझे तो बस कोई श्री कृष्ण के पास पहुँचा दे।

पद ३१०

गोपिकाएँ श्री कृष्ण का गुण-गान करती कहती हैं—

हमे नन्दलाल श्री कृष्ण पर गर्व है। उन्होने अत्यन्त गौरवपूर्ण कृत्य किये थे। जब इन्द्र के कोप से समस्त ब्रज बहने को था तब गोवर्द्धन धारण करके श्री कृष्ण ने ही सब की रक्षा की थी। समस्त गोप-समाज बलराम एवं कृष्ण के बल पर किसी को गिनता ही नही था और निर्भय होकर गौओ को चराते थे। हमारे सब बिगडे कार्यों को सम्भालने वाले बलराम-बन्धु श्री कृष्ण ही थे। सूरदास वर्णन करते है कि गोपिकाएँ कहती है कि जब से उन्होने केशी और तृणावर्त्त को मारा था तब से उनका ऐसा वीरतापूर्ण धैर्य बधाने वाला कार्य सुनने मे नही आया। हाँ, यह अवश्य सुना गया था कि युद्ध क्षेत्र में श्री कृष्ण जीते थे और कस पराजित हुआ।

विशेष—पद मे आए समस्त राक्षसो का वध भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने ब्रजवास के समय किया था।

पद ३११

वर्षागम पर गोपिकाएं वियोग-व्यथित हो कह उठती हैं—

हे सखि ! क्या कृष्ण पुरातन प्रीति के मधुर प्रसगो को स्मरण कर इस वर्षाऋतु मे ब्रज आ जायेगे ? रग-बिरगी मेघमालाएं नवीन तथा सुन्दर वेष धारण कर आकाश मे उमड रही है। इस ऋतु मे आकाश की शोभा अन्य ऋतुओ की अपेक्षा अधिक सुन्दर है। बगपाँतियाँ आकाश मे उड रही है, शुक-समूह सुशोभित है एव चातक तथा मयूर अपनी स्वर-लहरी छेड रहे है। मेघों के बीच तडित की तडपन देखकर हृदयस्थ प्रेमभावनाए उमडती है। पृथ्वी के शरीर पर प्रिय मिलन के कारण तृणरूपी रोमावली हर्षित हो रही है और अपने पतियो को पहचान कर लता रूपी प्रेमिकाए वृक्षो रूपी पतियो से मिली। हस, कोकिल, तोता-मैना, भ्रमरावली आदि विविध प्रकार की मधुर-ध्वनियाँ कर रहे हैं। प्रफुल्लित होकर मेघ मंगलमय जल वृष्टि कर रहे है एव पक्षी भी विषाद-रहित दृष्टिगोचर होते हैं। कुटज, कुन्द, कदम्ब, कचनार, कनियारी, सुन्दर कमल, केतकी, कनेर आदि के सुन्दर मनमोहक पादपो की शोभा और श्री वसन्त के समान प्रतीत होती है। तरुराजि के वृक्ष-वृक्ष पर नवल कलिकाएं अलकृत है। सुमन वातावरण को सुवासित कर रहे है। इस

सुन्दर शोभा को देख कर मन मे माधव से मिलने की आशा बलवती हो उठती है। मनुष्य से लेकर मृग, पशु, पक्षी पर्यन्त जितने भी अनन्त नामधारी जीव है, उनमे से जिनके प्रियतम विदेश है, इस ऋतु मे वे सब अपने-अपने घर को चल देते है। ब्रजवासियो के मन मे तो उनके मिलन का अन्य कोई उपाय ही नही उठता, वे तो प्रत्येक दशा मे नदलाल श्रीकृष्ण को अपने समीप देखना चाहते है। सर्वदा ही दयालु श्री कृष्ण की सुन्दर कलात्मक गति एव मद मद मधुर हास्य की स्मृति आती है। कृष्ण के सुन्दर कपोल और चचल कुण्डलो का प्रकाश सदैव ही उनको आर्कषित करता है। अपने हाथो मे सुन्दर मुरली धारण कर बहुत से ग्वाल बालो के साथ वे किस दिन रसध्वनि छेडेंगे? न जाने कब वह सौभाग्यशाली दिवस आवेगा जब हम इन नेत्रो से उनकी बाल-लीलाओ का दर्शन करेंगी ? गोपियो को पुन पुन. उनकी मधुर लीलाओ की स्मृति आ जाती है और वे उससे विरहाकुल होती है। समीर के तीव्र झोके से जिस प्रकार दीप-शिखा प्रकम्पित और ज्योतिहीन हो जाती है, वैसी ही दशा उनकी है। सूरदास गोपिकाओ का दारुण दुख देखकर हृदय मे प्रार्थना करते है कि हे प्रभु आप उनकी इस दुर्वह व्यथा को समाप्त कर दीजिए, गोपिकाएं अब इस व्यथा को न सहन कर सकेंगी।

विशेष— १ अलकार रूपक, उपमा, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास । २ प्रकृति का उद्दीपनात्मक वर्णन हुआ है। ३ वर्षाऋतु मे हस नही होते, या तो कवि के प्रकृति निरीक्षण के अभाव अथवा बत्तख जैसे किसी अन्य जलचर के लिए "हस" शब्द प्रयुक्त हुआ है।

पद ३१२

बहुत मनुहार करने पर भी, जब कृष्ण ब्रज नही आते तो गोपिकाए कहती है—

चलो सखियो सब मिलकर गोपाल श्री कृष्ण को ले आवे। उनके चरण छूकर, अनुनय करके विनय सहित उन्हे तथा बलराम जी की विशाल भुजा पकडकर ले आवे। नद एक बार पुन. अपने बच्चो को देख लेगे। पुन श्री कृष्ण अपनी गौएं सम्भाल कर गोप-गोपियो सहित वशी वादन सीख ले। यद्यपि सम्प्रति कृष्ण महाराज है, मोती-मणि आदि सम्पत्ति और सुख की

वहाँ कोई गणना नही। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि उन्हे फिर भी हमारी घुँघुची की माला ने आकर्षित कर ही लिया, अन्यथा वे उद्धव को यहाँ क्यो भेजते ?

विशेष—अलकार—वृत्त्यनुप्रास।

पद ३१३

गोपिकाए वर्षा ऋतु के आगमन पर कालिदास के यक्ष के समान मेघ से कह उठती हैं—

हे वीर बादल ! मैं तुम्हारी बलिहारी जाती हूं। देखो तुम्हारे सदृश ही घनश्याम हमारे प्रियतम है जो अब सिंधु तट स्थित द्वारका चले गये है। हे विरहिणियो की व्यथा को दूर करने वाले मेघ ! हम तुमसे अनुनय करती है कि तुम शीघ्र द्वारका चले जाओ एव उनसे हमारी विरह-व्यथा का कथन करो। सूर वर्णन करते है कि करुणाकर प्रभु की प्रीति ऐसी ही है कि बाद मे दग्ध होना पडता है।

पद ३१४

गोपिकाएँ यह कहती है कि अब तक श्री कृष्ण के अग-प्रत्यग की जो उपमाएँ दी गईं वे अत्यत उपयुक्त है—

सखि ! विभिन्न कवियो ने उनके अग-त्प्रयग की जो उपमाएँ दी है वे अत्यत सार्थक है। उनकी शोभा असख्य अनगो के समान बताई गई है, ऐसे सौन्दर्य-शाली पुनः ब्रज मे क्यो आवेगे। उनके शीश पर मोर-मुकुट की इन्द्रधनुष सी शोभा है जो दूर से ही दिखाई देती है किन्तु जिस प्रकार रति अगहीन कामदेव का शरीर-स्पर्श नही कर पाती, इसी प्रकार कोई असख्य प्रयत्न करने पर भी उसका स्पर्श नही कर सकती। उनकी केश-राशि की उपमा भ्रमरावलि से भी अत्यत उपयुक्त है। वे मधुप समान अनेक वनो मे विविध लताओ का रसपान करते फिरते है और पद्मकोश के वासी होने पर भी अपना ध्यान अपने वश रूपी बाँस की ओर लगाए रखते है। भाव यह है कि वहाँ श्री कृष्ण नवेली नागरियों रूपी कलिकाओ का रसपान करके भी पुरातन प्रीति-पात्र गोपिका रूपी बाँस मे भी ध्यान लगाये रखते है। उनके

कुण्डलो की मछली, नेत्रो की कमल एव नासिका की तोते से उपमा देकर कवि-गण उनका गुण गान करते है, वह नितान्त उपयुक्त है, क्योकि उनके कुण्डल सदैव मछली के समान चचल, झिलमिल ज्योति वाले कमल जिस प्रकार रात्रि मे सम्पुटित हो जाते हैं उसी प्रकार हमारी वियोग निशाम्रो मे ये भी बन्द रहने वाले है। नासिका तोते के समान ही अपने मधुरिम सौन्दर्य से सब को आकर्षित कर वियोग मे विकल करने वाली है। उनकी भ्रू-लता दर्शको के लिए धनुष सदृश है। कठोरता के कारण दाँत हीरे-पत्थर जैसे ही है एव ओष्ठो का बिम्बाफल उपमान यथार्थ है, बिम्बाफल को खाने से बुद्धि नष्ट हो जाती है—'सद्य प्रज्ञाहरा तु डी सद्य प्रज्ञाकरी वचा।", एव उनके अधरामृत पान से भी मति खो जाती है। उनकी पुष्ट भुजाएँ बड़े-बडे शत्रुओ को परास्त करने वाली थी फिर भला वे हमारे स्कधो पर गलबाही के रूप मे अधिक दिन कैसे ठहर पाती। इतने पर भी सप्त-छिद्र युक्त दुष्टा मुरली उनको हमारे विपरीत पाठ पढा रही है। भाव यह है कि मुरली भी हमारी विरोधी ही रही।

१ **विशेष**—अलकार—रूपक, रूपकातिशयोक्ति, यथाक्रम, काव्यलिंग एव व्याजस्तुति। २ तुलना कीजिए—

"**ऊधो अब यह समुझ भई**।"—पद १०७

पद ३१५

गोपियाँ श्री कृष्ण के दर्शन की कामना प्रकट करती कहती है।

हे कृष्ण ! तुम कम से कम एक बार तो हमे दर्शन दे ही जाम्रो। न जाने कब हमारा जीवन समाप्त हो जाय एव यह दर्शन कामना मन की मन में ही रह जाय। यदि तुम दर्शन देने नही आना चाहते तो एक बार नद बाबा के ही यहाँ अतिथि रूप मे आ जाओ, वही आपको क्षण भर के लिए देखकर हम कृतकृत्य हो जायेगी। पहले मिला कर भी विधि के कठोर विधान ने अब दर्शनो तक मे व्यवधान डाल दिया है। जो सुख शिव, सनकादिक ऋषिगण को भी कठोर तपस्या से प्राप्त नही होता, वही भगवान् का मिलन-सुख गोपिकाम्रो ने प्राप्त किया था। सूरदास वर्णन करते हैं कि राधा श्री

कृष्ण भगवान् की अगाध रूपनिधि के लिए विकल है, इसलिए हे प्रभु आप एक बार दर्शन अवश्य दे जाना।

पद ३१६

गोपिकाएँ अपनी असह्य विरह दशा का वर्णन करती है।

हमारे नेत्र अहर्निश मेघो के समान बरसते रहते है। जब से श्रीकृष्ण ने मथुरा प्रयाण किया है, तब से हमारे यहाँ नित्य वर्षा ऋतु लगी रहती है। नेत्रो मे अश्रु-प्रवाह के कारण कभी भी काजल नही रुकता, वह घुल-घुलकर वक्षस्थल एव कपोल भाग को काला कर देता है। हे सखि ! अविरल अश्रु-प्रवाह से मेरी कचुकी सदैव भीगी रहती है और हृदय के बीच वर्षा के पतनाले सदृश अश्रुधारा प्रवहमान रहती है। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि ब्रज मे जल की बाढ आ गई है, इस सकट से गोकुल को आप ही बचा सकते है। हे सौन्दर्यशाली घनश्याम ! इस व्यथा का वर्णन कहाँ तक करूँ, इससे हम गोपिकाएँ अत्यत विकल है।

विशेष — अलकार — रूपक एव अतिशयोक्ति।

पद ३१७

गोपिकाएँ अपने नेत्रो की असहाय अवस्था का वर्णन करती है—

श्री कृष्ण के मुख कमल के दर्शन रस के अभिलाषी भ्रमर रूपी दो नेत्र सदैव विकल रहते है। वे प्राणधन स्वर्णलता सदृश गोपिकाओ एव उनके नव-पल्लव तुल्य कोमल अंगो के सम्पर्क मे रहते रहते एकदम चले गये। ये भ्रमर रूपी नेत्र कभी अपने पखो को समेट कर चुपचाप अश्रु बरसाते है एव कभी कभी प्रकम्पित होते हुए भावविभोर हो जाते है और अपनी चचल तथा लोलुप भ्रमरवृत्ति को त्याग देते हैं। ये नेत्र मुख-चन्द्र रूपी अमृत मण्डल मे निवास करते है और सदैव सम्पूर्णत. अमृतस्नात रहते है। इतना प्रयत्न करने पर भी इनका जीवन दूभर हो रहा है एव ये सदैव विरहाकुल रहते है। बिना वाणी के मौन रहकर ये अपनी समस्त व्यथा निवेदन करते है—

"Most expressed when unexpressed"

—शेक्सपियर

सूर वर्णन करते हैं कि कीर (नास्का), कमल (मुख), कोकिला (वाणी) एव सर्प-कुल (केश-राशि) सभी इनकी इस विषम दशा से चिन्तित रहते है। हे प्रभु! आप स्वय आकर नेत्रो की इस असहाय अवस्था को क्यो नही देख जाते, ऐसी कौन सी हानि आपके यहाँ आने मे है ?

विशेष—१ अलकार—रूपकातिशयोक्ति, विभावना, विरोधाभास, रूपक।

पद ३१८

गोपिकाएँ मदन-शर से मर्माहत हो उससे निवेदन करती हैं—

हे कामदेव! सब युवतियो को अवध्य मानते है किन्तु तू फिर भी हमे अपने शरसधान का लक्ष्य बना रहा है। आज गोपिकाओ ने कृष्ण का आगमन जान-- सोलह शृगार किये है और तू उन्ही के द्वारा हमे शिव समझकर अपने तीक्ष्ण बाण मार रहा है। हे कामदेव! यह तो हमारी मुक्ता-माला है, गगा की श्वेत धारा नही। हमारे ललाट पर चन्द्रमा नही अपितु सोभाग्य-टीका है। तुम हमारी वेणी के जूडे को शेषनाग का फन समझने की भ्रान्ति मत करो। मूर्ख मदन! हमारे शरीर पर शिव के समान श्मशान की विभूति एव चन्द्र-ज्योत्स्ना का प्रकाश नही है अपितु हमने शरीर पर कस्तूरी और चन्दन चर्चित अगराग लगाया है। यह हमने गजचर्म धारण नही किया है अपितु काले रग की कचुकी है। तू यदि अब भी हमे शिव समझने की भ्रान्ति मे है तो तनिक विचार कर तो देख यहाँ उनका वाहन नन्दी कहाँ है ? सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि हे प्राणनाथ कृष्ण! आपके अभाव मे यह काम इतना समझा देने पर भी हम पर प्रहार करने से नही चूकता। अत. आप आकर हमारी रक्षा करो।

विशेष—१ अलकार—भ्रान्तापह्नुति, रूपक। २. इस पद का मूल भाव निम्न सस्कृत श्लोक से लिया गया है—

"जटा नेयं वेणी कृतकचकलापो न गरलं,
गले कस्तूरीयं शिरसि शशिलेखा न कुसुमम्।
इयं भूतिर्नाङ्गे प्रियविरहजन्मा धवलिमा,
पुरारातिभ्रान्त्या कुसुमशर! किं मां व्यथयसि॥

३ इसी प्रकार का वर्णन एक अन्य कवि ने इस प्रकार किया है—

"ऐरे मनोज सम्हार कै मारियौ ईस नही, ये कोमल बाल है ।"

४ विद्यापति ने भी ऐसा ही वर्णन किया है ।

पद ३१६

विरह-व्यथिता गोपिकाए प्रकृति के रमणीक रूप को देखकर श्री कृष्ण की स्मृति मे विभोर हो उठती है, अत वे कोकिल को सम्बोधन देकर कहती है—

हे कोकिल ! तू ऐसा प्रयत्न कर कि श्री कृष्ण ब्रज मे आ जाय । तू अपनी इस मधुर स्वर-लहरी को मथुरा मे जाकर छेड जिससे श्री कृष्ण का मन वहाँ से उचट जाय और वे ब्रज आ जाँय । सज्जन शरणागत की तन, मन धन सर्व प्रकार से सहायता करते है । हम भी आज वेदना विह्वल हो तेरी शरण मे आयी है, तू हमारी भरसक सहायता कर । आज गोपियो की प्राण-रक्षा का सुयश तुझे केवल अपनी मधुर वाणी के द्वारा प्राप्त हो रहा है, तू इसे प्राप्त करने का उद्योग क्यो नही करती ? दूसरो का भी कुछ उपकार करना चाहिए, यही ससार मे उत्तम कर्म है । सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि कोकिल तू अपनी मधुर तान से कूक कर कृष्ण को जाकर यह बता दे कि ब्रज के कानन-कानन मे आज वासन्ती छिटक रही है ।

विशेष—१. अलकार अन्योक्ति । २ पहले पद २६२ मे भी कवि ऐसा वर्णन कर चुका है—

"उपवन बैठि बोलि मृदुबानी, वचन बिसाहि मोहि करु चेरी ।
प्रानन के पलटे पाइय जस, सेंति बिसाहु सुजस की ढेरी ।।"

पद ३२०.

गोपिकाएँ श्री कृष्ण की स्मृति मे विभोर हो, परस्पर कहती है—

हे सखि ! नदकुमार श्री कृष्ण न जाने कहाँ चले गये ? समस्त विश्व के शोभागार हमे विस्मृत कर चले गये किन्तु फिर भी उनकी मनमोहक मूर्ति का सौन्दर्य मन से एक क्षण भी नही उतरता । श्री गोपाललाल के अभाव मे बछड़ों को कौन चराए एव कौन दूध की हाँडी भर कर दुहाए ? समस्त सखाओ को

साथ लिए-ग्वाल-बालो के साथ जब वे मक्खन खाते थे तो कितने सुन्दर लगते थे। मै ज्यो-ज्यो उनकी क्रीडाओ का अधिकाधिक स्मरण करती हू त्यो-त्यो वे मुझे और अधिक आकर्षक लगते है। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि प्राणधन के बिछुडने पर इस क्षोभपूर्ण विरहावस्था मे हम कैसे जावित रह सके गी।

विशेष—'ज्यो-ज्यो······मनमोहन" मे 'बेनी प्रवीण' की नायिका के समान ही कुछ कुछ, गोपियो की स्थिति है—

"ज्यों-ज्यो विलोकिए जू प्रति अगन,
त्यों-त्यो लगि अति सुन्दरताई।"

पद ३२१

गोपिकाए श्री कृष्ण की अनुपस्थिति मे उत्पन्न वेदना और आपत्तियों की परिकल्पना करती कहती है—

वे सुन्दर, सुजान, सुखनिधान श्री कृष्ण हमारे इस सुन्दर शरीर के द्वार-पाल थे। वे अपनी रूपमाधुरी के दण्ड से समस्त आपत्तियो और विघ्नो को बाहर ही रोके रहते थे। अब उनके अभाव मे हमारे सूने हृदय-सदन मे काम-देव का प्रसार हो गया है। इस भवन को सूना देखकर दुख भी निर्बाध प्रवेश पा गया है। प्राणो की निरकुशता देखिए कि वे श्वास-प्रश्वास के साथ निस-कोच होकर हृदय तल मे पहुच जाते है। रात्रि भर जागरण के कारण पलक-क्पाट खुले रह जाने से चन्द्रमा अपने शत-शत बाणो से प्रहार कर हमे विकल करता है। इस प्रकार कृष्ण के बिना मेरी यह असह्य स्थिति हो गई है जिसका नन्दनन्दन के दर्शन के अतिरिक्त अन्य कोई उपचार नही है। सूर प्रार्थना करते है कि इसलिए हे प्रभु नदलाल आप शीघ्र दर्शन दे कर गोपियो की प्राण-रक्षा कर लो।

विशेष— १. अलकार—छेकानुप्रास, सागरूपक, रूपक, अतिशयोक्ति।

पद ३२२

प्रिय-वियोगिनियो के लिए यद्यपि सभी ऋतुएँ सतापकारी है किन्तु वसन्त और वर्षा मे तो वे अत्यत विकल हो जाती हैं। जिस वर्ष मे एक मास अधिक

होता है, उसका वर्णन लोक-काव्य मे वियोगिनियो ने "लौद-वर्ष' की व्यथा" के रूप मे किया है। सूर की गोपिया भी श्रावण के दो मास सुनकर वर्षा की मेघ-मल्हारो मे अपनी भविष्य-आपत्ति की आशका से कह उठती हैं—

हे सखि ! यह सुना है कि अब की बार दो श्रावण है। वर्षान्त मे श्री कृष्ण ने आने के लिए कहा था किन्तु यह सावन उस अवधि को और भी बढा देगा, इससे हमारा हृदय बार बार वेदना-विह्वल हो जाता है। जब तो हम उन निर्मोही से यह प्रेम-सूत्र जोड बैठी और अब वियोग-व्यथा से सतप्त हो रही हैं। इस वेदना के ही कारण हृदय मे यह कामना जगती है कि हम ऐसे शून्य स्थान मे चली जाती जहाँ कोई हमारा नाम भी न सुन पाता। मथुरा जाकर उन्होने हमे एकदम विस्मृत कर दिया और अन्यत्र प्रेम क्रीडा रत रहने लगे, इसकी हमे बहुत ग्लानि है। सूरदास वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि अब उन्हे हमारी स्मृति क्यो आने लगी, उन्हे तो अब (मथुरा की) सुन्दरियाँ मिल गई हैं। अथवा श्लेषार्थ यह होगा कि अब हमारा सहभोग उनसे कैसे हो सकता है, उन्हे तो वहा नागरिया मिल गई हैं।

विशेष— अलकार— श्लेष।

पद ३२३

गोपिकाएँ स्वय को ही प्रबोध देती कहती हैं—

अब पश्चात्ताप करने से क्या होता है ? अब तो कृष्ण हमारे पास नही हैं। जब वे खेलते, खाते, हँसते एव विविध प्रेमक्रीडाएँ करते थे तभी हम उन के महत्त्व को न समझ पायी थी। अब तो स्थिति भी प्रतिकूल हो गई है, यह घोषणा की जा रही है कि ब्रजवासी उनके कुछ नही लगते, कृष्ण तो ब्रज के लिए धरोहर मात्र थे। किन्तु हे सखि ! यह वसुदेव कृष्ण का तथाकथित पिता कौन है ? कृष्ण किसकी धरोहर थे ? वसुदेव उनको यहा छोड गये थे इसका कोई गवाह भी है ? उद्धव तुम तो अत्यत ज्ञानवान् हो, यदि उनका कोई गवाह हो तो हमे बता दो। उनके हृदय मे हमारी निधि श्री-कृष्ण को छीनने का कपट पूर्ण भाव है किन्तु उन्हे यह ज्ञात होना चाहिए कि यह कौआ और कोकिल का व्यवहार नही है। (सूर कहते है) वसन्तागम पर कोकिल के —ौर द्वारा पोषित शावक अपने समूह मे जा मिलते है और कौआ उस वेदन

को चुप सहन कर जाता है किन्तु हम कृष्ण को प्राप्त करके ही रहेंगी, यों ही न छिन जाने देंगी ।

विशेष— निदर्शना अलकार ।

पद ३२४

प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण के वियोग मे राधा की विरह-विदग्ध दशा का वर्णन गोपी सखी से कर रही है—

हे सखि ! प्राणधन गोपाल के अभाव मे राधा के शरीर की दशा अत्यत विषम हो गई है । उसके शरीर की चन्द्र-ज्योत्स्ना स्नात छवि समाप्त होकर चन्द्रमा का अश केवल कलक ही कलक रह गया है । शरद ऋतु के सारस पक्षी के समान उसके नेत्रो की सुन्दर शोभा को किसी ने निचोड लिया है । जिस भाति अग्नि के ताप से स्वर्णकार की कटोरी का स्वर्ण बह निकलता है उसी प्रकार विरह-वह्नि के ताप से राधा-शरीर का सौन्दर्य-स्वर्ण पिघल गया है अर्थात् नष्ट हो गया है । उसकी कदली दल के समान पुष्ट पीठ मानो उल्टे केले के पत्ते के समान गहरी सी हो गई है अर्थात अत्यत क्षीण हो गई है । सूर कहते है राधा के शरीर की समस्त सौन्दर्य-निधि का हरण तो श्री कृष्ण ने कर लिया और अब तो विधाता ने केवल वियोग की विपत्तियाँ ही उसे दी है ।

विशेष – अलकार— रूपक, उत्प्रेक्षा, सभग पद व अभग पद यमक । २ कदली दल ‥ ‥ गई" मे उपमानचयन मे सूर के कवि की मौलिकता तो है ही, साथ ही अधमहाकवि का सूक्ष्म प्रकृति-पर्यवेक्षण भी दर्शनीय है । ३. देव की नायिका भी श्री कृष्ण के वियोग मे इसी प्रकार दिनोदिन क्षीण होती जाती है, यथा—

"गोरो गोरो मुख आज ओरो सो बिलान्यो जात ।"

पद ३२५

गोपिकाएँ वर्षागम पर चातक से कृष्ण को बुलाने की प्रार्थना करती है—

हे चातक ! तू अपनी 'पी-पी' की प्रिय ध्वनि से कृष्ण को हमारी स्मृति

करा दे। मथुरा, जहाँ श्री कृष्ण है, वहाँ ऊँचे स्वर से तू अपनी कूक सुना कर उन्हे यह सूचित कर देना कि ग्रीष्म-ऋतु व्यतीत हो गई है और उल्लासकारी वर्षा-ऋतु आ गई है जिससे समस्त लोक मे आनद की उमग है। किन्तु आपके बिना ब्रजवासियो की वैसी दशा है जैसी बिना मल्लाह के नौका की हो जाती है। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि हे चातक हमे विश्वास है कि कृष्ण तेरा कहना अवश्य मान लेगे अत हम अनुनय करती है कि तू उन्हे ले आ। बस इस बार वर्षा-ऋतु मे हमे कृष्ण का दर्शन करा दे, हम कृतकृत्य हो जायेगी।

विशेष—१ अलकार—दृष्टान्त। २ 'सारग' का 'मोर' अर्थ लेकर भी पद का अर्थ किया जा सकता है।

पद ३२६

गोपिकाएँ श्रीकृष्ण के ब्रज न आने पर अनुमान करती है कि—

हे सखी! अब कृष्ण यहाँ किस लिए आये? वे ठहरे मथुराधिपति महाराज और तुम सामान्य ग्वाल-समाज के सदस्य, तनिक इस व्यवधान का तो विचार करके देखो। अब उनके समस्त आचार-व्यवहार ही परिवर्तित हो गये है। अब उनके शीश पर रजत छत्र एव मणि-खचित मुकुट सुशोभित है, अब वे मयूरपच्छ निर्मित मुकुट को नही चाहते। यदि कोई उन्हे ब्रजराज जैसे पुरातन नाम से सम्बोधित कर दे तो वे अप्रसन्न हो जाते है, अब तो वे यदुकुल के सम्मानित नामो का सम्बोधन अच्छा समझते है। उनके प्रत्येक द्वार पर द्वारपाल सन्नद्ध है एव उनकी सेवा मे असख्य दासियाँ रहती है। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने व्यग्यपूर्वक कहा कि भला वे सुकुमार शरीर यहाँ कब तक दुग्ध दुहने के कष्ट को सहते? भाव यह है कि अब कृष्ण मथरा के ऐश्वर्य और सुखभोग को छोड़कर ब्रज नही आयेगे।

विशेष—अलकार—अप्रस्तुत-प्रशसा।

पद ३२७

गोपिकाओ की श्रीकृष्ण मे अनन्य निष्ठा है, कठिन से कठिन परिस्थिति मे भी वे अपने स्नेह को सुरक्षित रखना चाहती है। इसीलिए वे श्रीकृष्ण से

निवेदन करती है—

हे प्राणधन ! शैशव से ही पल्लवित प्रेम अत्यत सुखपूर्ण होता है। इसलिए हे चतुर प्रियतम ! आप इस तथ्य को सत्य मानते हुए दूर रहते हुए भी इसका परित्याग मत करो। भ्रमर, सर्प, कौआ और कोकिल के स्वार्थी और क्षणिक प्रेम सम्बधो पर आप अपना विश्वास प्रस्थापित मत कीजिए अर्थात् आप उनके समान प्रेम मे स्वार्थी मत बनिए। उद्धव और अक्रूर आपको हमारे विरुद्ध पढा रहे होगे किन्तु आप इन दोनो के उपदेश पर मत रहिये इनके क्रूर कृत्यो मे समस्त घर कानन समान ऊजड और शून्य हो गये। सूरदास वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि हे कृपासिन्धु बस हमारी आप से ये ही दो प्रार्थनाएँ है जिन पर आप भली-भाँति ध्यान दे। अब आप हमे दर्शन क्यो नही देते ? शरीर और मन दोनो ही अन्तिम अवस्था को पहुँच रहे है।

विशेष—'फागुन के मेहु' सूर-काव्य का अत्यत प्रिय और बहुप्रयुक्त सारगर्भित उपमान है। फाल्गुन मास मे वर्षा नही होती अत इसका अर्थ है असम्भव जिसके द्वारा कवि यह व्यजित करना चाहता है कि जिस प्रकार फाल्गुन मे वर्षा-जल अप्राप्य होता है उसी भाँति हम भी आपको न मिल सकेगी। पीछे पद २८५ मे भी सूर ने इसका प्रयोग किया है—

"सूरदास तन तो यो ह्वै हैं ज्यो फिरि फागुन-मेहु।"

पद ३२८

गोपिकाएँ विरह-विकला राधा की असह्य और क्षीण दशा का वर्णन करती कहती है—

इस अनगरूपी राहु ने (राधा के) उस चन्द्र सुन्दर मुख को ग्रस लिया। ना जाने इस कामदेव-राहु ने उमापति शङ्कर रूपी सुख को कहाँ से खोज निकाला। अर्थात् यह खोज खोज कर सुखो को समाप्त कर रहा है। कदाचित् यह उस मुख चन्द्र के मध्य ही अपने काले शरीर को नेत्रो के काजल मे छिपाये रह रहा था। अब यह विरहाम्बुधि की उत्ताल तरगो को देखकर ऐसे भयावह रूप मे प्रकट हो गया है (सागर-मथन के समय समुद्र से ही इसकी

उत्पत्ति मानी जाती है) कि उसका वर्णन असम्भव है। यह उस मुख को अपने कठोर दाँतो से काट कर ऐसा दुख देता है कि वेदनाकुल होकर नेत्रो से इतना सतप्त अश्रु-प्रवाह निकलता है कि उसे स्पर्श नही किया जा सकता। वह ऐसा लगता है मानो मुख-चन्द्र के अमृत का ज्वालामुखी विस्फोट कर वक्षस्थल पर प्रवहमान हो रहा है। अब उस सौन्दर्यनिधि अमृत के निकल जाने से मुख ऐसा प्रतीत होता है मानो बिना नवनीत का छूछा मठा। सूरदास कहते है कि गोपिकाओ ने कहा कि इस ग्रहण मे श्री कृष्ण के दर्शन-दान से ही मुख के प्रकाश की रक्षा की जा सकती है अर्थात् श्री कृष्ण का दर्शन कराकर ही राधा की प्राणरक्षा की जा सकती है।

विशेष—१ अलकार—सागरूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा एव रूपकातिशयोक्ति। २ विरहणियो की क्षीण मुख-छवि के ऐसे ही मार्मिक चित्रण अन्य कवियो ने किये है। यथा—

"कामायनी कुसुम-वसुधा पर पड़ी न वह मकरद रहा,
एक चित्र बस रेखाओं का अब उसमे है रग कहा।
वह प्रभात का हीन कला शशि, किरन कहाँ चाँदनी रही;
वह सध्या थी, रवि शशि तारा ये सब कोई नहीं जहाँ।"

– जयशकर प्रसाद ('कामायनी)

पद ३२९

कृष्ण भोली भाली गोपिकाओ का मन चुराकर ले गये, इसी लिए वे कहती है—

गोपाल लाल श्री कृष्ण को शैशव से ही चोरी की आदत है। किन्तु पता नही कहा से उन्होने चोरी के ऐसे चमत्कृत कर देने वाले छल-छन्द सीखे। जब बचपन मे मक्खन और दूध चुराकर खा जाते थे तब उसे तो हम चुपचाप सहन कर लेती थी किन्तु हे सखी ! अब मन जैसे बहुमूल्य माणिक्य की चोरी की हानि को किस प्रकार सहन किया जा सकता है ? हे मधुकर (उद्धव) ! तुम श्री कृष्ण से राजनीति समझाकर कह देना कि हे यदुराज चोरी करना ठीक नही, इससे प्रजा त्रस्त ही है। तुम अब भी अपनी इस पुरानी आदत को न छोडोगे आज आप ब्रजवासियो की बुद्धि, विवेक सर्वस्व चुराकर प्रसन्न हो

रहे है। सूरदास वर्णन करते है कि गोपिकाएँ कहती है कि प्राणनाथ कृष्ण के गुण और अवगुणो की चर्चा किससे करे ?

विशेष—अलंकार—अप्रस्तुत-प्रशसा।

पद ३३०

गोपिका प्रकारान्तर से प्रकृति के विरहोद्दीपक उपकरणो का वर्णन करती कहती है—

यद्यपि मैंने इस दुर्वह जीवन से मुक्ति पाने के बहुत से प्रयत्न किये किन्तु मधुकर! मुझे श्रीकृष्ण की प्रेयसी जान किसी भी सहारक वस्तु ने मेरे प्राणो का हरण नही किया। अत्यत सुवासित सुमन राशि को मैंने स्वय अपनी शय्या पर रखा और फिर शरद् के सुन्दर चन्द्रमा के प्रकाश को शय्या पर आने दिया किन्तु तो भी मेरे अग भस्म नही हो पाये। चातक, मयूर कोकिल, भ्रमर आदि की दाहक ध्वनियो को अपने कानो से सुना और एक पल को भी न सोते हुए कामदेव के प्रहारो को देखती रही किन्तु फिर भी मेरा प्राणान्त न हुआ। इसका कारण यही है कि हम अहर्निश नदलाल श्रीकृष्ण का ध्यान करती रही एव वे हमारे हृदय से पल भर के लिए भी न हटे। कामदेव ने बडे उत्साह से अपनी चतुरगिणी सेना सजा कर आक्रमण का आयोजन किया किन्तु वह एक बाण भी न चला सका। सूर वर्णन करते है कि गोपिका कहती है कि न जाने इस शरीर मे ऐसा कौन सा गुण था जिससे विपक्षी डर गये। अरे! श्रीकृष्ण के नाम मात्र से ऐसे-ऐसे पराक्रमी वीर अपनी शक्ति भूल गये अर्थात् अपनी शक्ति के प्रयोग से प्राणान्त न कर सके। भाव यह है कि श्रीकृष्ण गुणगान और निरन्तर स्मरण से ही इस असहाय विरहावस्था मे भी हम जीवित है।

विशेष—१. अलंकार—काव्यलिग। २ भवभूति के निम्नस्थ पद से तुलना कीजिए—

> "धत्ते चक्षुर्मुकुलिनि रणत्कोकिले बालचूते,
> मार्गे गात्रं क्षिपति बकुलामोदगर्भस्य वायो।
> दावप्रेम्णा सरसबिसिनीपत्रमात्रोत्तरीयः,
> ताम्यन्मूर्तिः श्रयति बहुशो मृत्यवे चन्द्रपादान्।"
> —'मालती-माधव'

पद ३३१

गोपिकाएँ निर्गुण का खण्डन करती उद्धव से कहती है—

हम श्री कृष्ण से प्रेमसम्बंध नही तोड सकती। जिन नेत्रो ने गोपाल के मुख चन्द्र का दर्शन किया है, वे योग के दाहक सूर्य से किस प्रकार मिलाई जा सकेगी। योग तो केवल वैरागी मुनियो के मन मे ही रह सकता है, मदराचल के भार को तो कछुए के शरीर के अतिरिक्त और कोई सहन ही नही कर सकता। युवतियो के हृदय कमल के समान है, योग, रूपी हाथी उन्हे नष्ट किए बिना कैसे रह सकता है ? नीलमणि के समान दुर्लभ और सुन्दर घनश्याम के बदले कोई योग के निस्सार धुएँ को ग्रहण नही कर सकता। सूरदास वर्णन करते है कि गोपियो ने उद्धव से कहा कि भ्रमर कमलकोष-रस-अभिलाषी अवश्य होते है किन्तु वे चपा से प्रेम नही कर सकते। भाव यह है कि हमारा श्रीकृष्ण से अनन्य प्रेम है, उनके अभाव मे हम किसी अन्य इष्ट को अपनाने का दुस्साहस नही कर सकती।

विशेष—अलकार—रूपक, उपमा एव निदर्शना।

पद ३३२.

नेत्रो की विरहाकुल दशा के माध्यम से गोपिकाएँ अपनी विरह-व्यथा की अभिव्यक्ति करती कहती है—

हे उद्धव ! श्री कृष्ण के वियोग मे अन्य अगो की अपेक्षा नेत्र ही अधिक व्यथित है। हम इनकी शान्ति के लिए अनेक प्रयत्न कर चुकी है किन्तु सब असफल, ये अत्यत दुखी रहते है एव कभी भी इन्हे चैन नही पडता। ये आँखे पल भर के लिए भी विश्राम नही लेती, सर्वदा ही कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा मे निर्निमेष देखती रहती है। इस प्रकार विरह वेदना से ये अत्यत व्यथित रहती है। प्राणधन की प्रतीक्षा मे सदैव खुली रहने से उनके दर्शन न होने पर विरह-वायु से भर गई है (नेत्रो मे वायु भरने पर टीस हो जाती है)। ओ शठ भ्रमर ! इस वेदना मे ये तुम्हारी ज्ञान-शलाका को सहन नही कर सकती। सूर वर्णन करते हैं कि गोपियो ने कहा कि आप हमारी नेत्र-व्यथा को दूर करने के लिए श्री कृष्ण की रूप-माधुरी का अंजन ही कृपाकर ला दीजिए।

विशेष—१ अलकार—वृत्यनुप्रास एव रूपक । २ 'पिराति, मिराति' की पद-मैत्री दर्शनीय है ।

पद ३३३

गोपिका उद्धव को कृष्ण के समान ही छली बताती सखियो से कहती है—

सखियो ! तुम इनकी चिकनी-चुपडी बातो के भुलावे मे क्यो पड रही हो ? यह मधुप तो श्री कृष्ण के समान ही छली, चचल चित्त और श्याम-वर्ण है । श्री कृष्ण तो अपनी मधुर वंशी की स्वर-लहरो से सबको आकर्षित करते हैं और यह गुन-गुन के मधुर गु जन से कुसुमो का मन मोह लेते है । वे नित्य नवीन प्रेयसियो के मन को आह्लादित करते है और ये स्थान-स्थान पर उड कर प्रेम-क्रीडा रत रहते है । श्री कृष्ण जी नित्य नवीन मानिनियो के घर मे आनन्द रत रहते हैं और यह मधुप अहर्निश पद्मकोष मे ही रहता है । यह षट्पद है और उनके दो पैर तथा चार भुजाए मिलकर छ हो जाते है । इस भाँति दोनो सर्वथा एक से ही है । सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि ये दोनो ही सब के रस का पान करके स्वार्थ-सिद्धि मे सलग्न रहते हैं । अपने प्रेमियो को विरह-व्यथा प्रदान करने वाले इन दोनो का कोई भी विश्वास मत करो । दोनो के नाम मे भी समानता है—वे माधव हैं तो ये मधुप दोनो मे कोई किसी से कम नही ।

विशेष— १ अलकार—सम (जहाँ किन्ही दो की समानता दिखाई जाय) । २ अन्तिम पक्ति मे मुहावरे के प्रयोग से भाषा मे विशेष प्राणवत्ता आई है ।

पद ३३४

गोपियाँ श्री कृष्ण को ब्रज बुलाने का आग्रह करती उद्धव से कहती हैं—

हे उद्धव ! आप श्री कृष्ण से कहना कि वे जिस प्रकार भी हो ब्रज आ जाये । वे कुछ समय मथुरा रह लिए यह पर्याप्त है, अब वहाँ से लौटने मे वे देरी न करें । उनसे कहना कि गोपिकाओ को आपके अभाव मे कुछ भी रुचि-कर नही लगता । घर और वन—कही भी हमारा चित्त नही लगता । तुम हमारी विरहाकुल दशा स्वय ही अपनी आँखो से देख रहे हो, हम ही अधिक

क्या निवेदन करे ? ग्वाल-बाल वियोग मे बिलख रहे है, गौएं मुख से चारे का तिनका तक भी नही छूती एव बछड़े दूध पीने के लिए नही भागते है, सम्पूर्ण व्यवस्था ही अस्त-व्यस्त हो गई है। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि नन्दलाल के बिना अहर्निश हम विलाप करती फिरती है अब तो उनके मिलन से ही शान्ति प्राप्त हो सकती है।

विशेष —अलकार—अतिशयोक्ति।

पद ३३५.

गोपियाँ अपने मनरजन श्री कृष्ण को ले जाने वाले अक्रूर और उनके प्रेम को छुडाने का प्रयत्न करने वाले उद्धव दोनो को बनाती कहती है—

हे सखि ! मथुरा मे दो ही हस के समान विवेकशील है, एक तो अक्रूर एव दूसरे उद्धव जी। हम इनके मन मे बसे कपट से भली-भाति परिचित हैं। इन दोनो को ही क्षीर-नीर अर्थात् सदसद् की पहचान अधिक है। इनके षड्-यन्त्र से तो कस का वध कराया गया। इनके कुल की यही परम्परा है, इनका वश ऐसे ही दुष्कृत्यो के लिए विख्यात है। आप मथुरा मे कृपा कर ऐसे उत्पात मत करवाइये, कम से कम यह विचार कर लीजिए कि वहाँ तो आपके ही कुल के अर्थात् आपके समान ही तन-मन से काले कृष्ण का राज्य है। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि आप असहाय ब्रजागनाओ को योग का उपदेश दे रहे है जिसे सुनकर चित्त व्याकुल हो रहा है।

विशेष— अलकार— काकु-वक्रोक्ति ("जहा कठध्वनि भिन्न ते, आसय जुदो लखाय")।

पद ३३६.

गोपिकाएँ श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए अत्यत आकुल मनुहार करती कहती है—

हे कृष्ण ! आप ब्रज मे एक बार पुनः क्यो नही आते ? चाहे आप यहाँ स्थायी रूप से न रहे, केवल एक बार दर्शन देकर मथुरा को चले जाना। वह क्षणिक दर्शन-लाभ ही हमारे लिए पर्याप्त होगा। यह सब उचित ही है कि वे अपने माता-पिता वसुदेव, देवकी एव अपने परिवार के अन्य स्वजनो से मिल गये किन्तु उद्धव ! हम नद और यशोदा के दुख को देखकर किस आशा

के अवलम्बन पर जीवन-धारण करे ? सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि हे प्राणधन श्रीकृष्ण ! आपके अतिरिक्त अनाथो का प्रतिपालक अन्य कौन है ? अब हमारी (जीवन) नौका अत्यत जर्जर हो रही है और सगति भी (भ्रमर और उद्धव जैसे) दुर्जनो की है। इस विराहाम्बुधि मे डूबने पर आपके अतिरिक्त हमे कौन पार लगा सकता है ? हम ब्रजवासियो का बेडा थक चुका है, अत आप इस विरह-समुद्र से पार उतार दीजिए।

विशेष—अलकार—रूपक एव रूपकातिशयोक्ति।

पद ३३७

गोपिकाएँ उद्धव एव श्रीकृष्ण के आचार-व्यवहार को समान बताती कहती है—

श्रीकृष्ण और उद्धव के छलपूर्ण व्यवहार से सिद्ध होता है कि मानो दोनो एक ही साँचे मे ढालकर बनाये गये हो। उद्धव का स्वरूप अग-प्रत्यग मे कमलनयन श्रीकृष्ण की ही भाँति है, अन्तर है तो केवल यही कि उद्धव के वक्षस्थल पर भृगु के पदाघात का चिह्न अकित नही है। दोनो मे भ्रमर के समान गुण है एव अन्तर तथा बाह्य दोनो ही मधुप के समान काले हैं। ये व्यर्थ ही हम अबलाओ को धुँए के हाथी अर्थात् निस्सार निर्गुण ब्रह्म का उपदेश दे रहे है। हे सखि ! ये जितने भी काले रग के है, सब एक जैसे ही कुटिल है। सूर वर्णन करते है कि गोपिका ने कहा कि उस मथुरा की खान मे ये एक से एक श्रेष्ठ काले (रत्न) है।

काव्य-सौन्दर्य—१. अलकार—उत्प्रेक्षा, सम। २ शकर के अद्वैत का शैलीगत प्रभाव 'धूम-गयंद' आदि के प्रयोग मे देखा जा सकता है। ३ तुलना कीजिए—

"मधुपुर वारे सबै एकै ढार ढारे हौ।"

—'रत्नाकर'

× × ×

"वह मथुरा काजर की कोठरि जेहि जे आवे ते कारे।"

—सूर

पद ३३८

गोपियाँ उद्धव की खिल्ली उडाती हुई कहती हैं

उद्धव ! तुम बाते तो ज्ञानियो जैसी कर रहे हो किन्तु उनकी निस्सारता उसी प्रकार प्रत्यक्ष दृष्टिगत हो रही है जिस भाँति खाली शीशी-भरी भरी दिखाई देती है किन्तु उसे जल मे डाल देने पर बुलबुले उठने पर पता चल जाता है कि यह तो खाली है अर्थात् तुम्हारे सुन्दर लगने वाले योग-सिद्धात व्यर्थ का प्रलाप है। उद्धव मैं ये सब बाते तुम्हारे भले के लिए ही कह रही हूँ किन्तु तुम व्यर्थ ही इनसे विचलित होते हो। हम तुम्हारे उपकार की ही बाते करती है क्योकि हमे आपके हित-साधन की चिन्ता और आपसे कुछ स्नेह है। श्रीकृष्ण को ले जाकर पहिले तो अक्रूर ने क्षणभर मे यह वियोग की झोपडी छाकर बना दी, (सूर कहते है) अब आप अपने योगोपदेश के मर्माहत वचनो से इसे स्थायित्व प्रदान कर रहे है।

विशेष—१ अलकार उपमा एव लोकोक्ति।

२ "कपट तिहारो····· नाए सीसी"—समस्त हिन्दी साहित्य मे अनूठी और मौलिक उपमा है।

पद ३३९.

गोपिकाएँ उद्धव की निर्गुण साधना का खण्डन करती कहती हैं—

उद्धव ! वैसे तो आप नदलाल श्रीकृष्ण के दूत होने का दम भरते हैं किन्तु ब्रज मे आकर आप श्रीकृष्ण का पक्ष लेने के स्थान पर योग कथा का बखान कर रहे हो। यह तुम्हारा कितना निकृष्ट व्यवहार है। अब तो आप युवतियो को योग ग्रहण कर विभूति एव अधारी को प्रयुक्त करने को कहते है किन्तु जब श्रीकृष्ण ने हमारे साथ वृन्दावन मे रास-क्रीडाएँ की थी तब आप कहाँ चले गये थे ? उस रसपूर्ण क्रीडा के रसास्वादन के पश्चात् वैराग्य-पूर्ण योगसाधना असम्भव है। आप इस मत का कथन कर हमारे लिए वैसी ही अग्राह्य बात कह रहे है जैसे योगियो के लिए भोग अग्राह्य है। सूर की गोपिकाएँ वर्णन करती है कि इस योगोपदेश से हमें और भी अधिक पीडा हो रही है एव वियोग-व्यथा से हम और अधिक सन्तप्त हो जाती हैं।

विशेष—उपमा अलंकार।

पद ३४०.

गोपिकाएँ अक्रूर और उद्धव दोनो के कृत्यो को सतापकारी बताती हुई कहती हैं कि—

लगता है उद्धव एव अक्रूर दोनो ने साठ-गाँठ कर ली है। ये दोनो ही आखेटक हैं जिन्होंने आखेट-स्थल ब्रज को ही चुना है। इन्होने अपनी बातो के जाल मे कृष्ण रूपी मृग को फँसा लिया और उससे निकलने का प्रयत्न करने पर उन्हे अपने प्रहार द्वारा वही दबोच दिया। इन्होने अपने ज्ञान के बाणो से भोली गोपियो रूपी मृगियो को मार दिया। इन्होने ही विरहाग्नि के रूप मे समस्त ब्रज-प्रदेश मे दावाग्नि लगा दी है जिससे ब्रज का सर्वस्व समाप्त हो रहा है। समझ मे नहीं आता कि ये इससे अधिक अनर्थ और क्या करना चाहते है? ये प्रेमानुरक्त गोपिकाओ को ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश देकर कैसा अन्याय कर रहे है? सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि इस असह्य विरहावस्था मे हम श्रीकृष्ण के बिना कैसे जीवित रह सकती है? भला स्वाति-मेघ के चले जाने पर चातक किस प्रकार जीवन धारण कर सकता है?

विशेष—१ अलकार—सागरूपक एव निदर्शना। २ बहेलिये वन मे मृगो को फासने के लिए जाल लगाकर शेष समस्त वन मे आग लगा देते है मृग अपनी प्राणरक्षा के लिए उस जाल मे आ जाते हैं और आखेटक अपने बाणो द्वारा उनका प्राणान्त कर देता है, इसी रूपक को अपनाकर गोपियो ने अपनी तथा कृष्ण की स्थिति स्पष्ट की है।

पद ३४१.

उद्धव गोपिकाओ को निर्गुण साधना का उपदेश देते हुए उन्हें योग की विभिन्न प्रक्रियाएं बताते है। गोपिकाए कहती है कि इन साधनाओ की सिद्धि के बिना सगुण पंथ मे हमे उनका लाभ मिल रहा है, फिर हम क्यो योग प्रपंच मे पडें?

उद्धव! इस ब्रज मे सगुण-भक्ति का दीपक अपना प्रकाश विकीर्ण कर

रहा है। उसी की निर्मल ज्योति से हमारी भ्रकुटि का त्राटक अहर्निश प्रकाशित है, उसके लिए योग के ध्यान की आवश्यकता नही। यहाँ सबके हृदय रूपी दीप पात्रो मे श्री कृष्ण के प्रेम-प्रसून का तेल भरा हुआ है। उनके अनेक गुण ही दीपो की वर्तिकाएँ है एव स्नेह-सुमन की सुगध ही कपूर के समान सर्वदा सुवासित करती रहती है। योगी तो पचाग्नि मे तपते हैं किन्तु हम सब के अंगो मे विरह की ऐसी तीव्र अग्नि लगी हुई है जो इस वर्षाऋतु मे भी नही बुझती। इस अग्नि को और भी अधिक प्रज्वलित कर दग्ध करने वाले आप तीन है—श्रीकृष्ण, तुम स्वय (उद्धव) एव कामदेव। हम अन्य इष्टाराधना को तृण तुल्य उपेक्षित कर इस सगुण-ज्योति की ही उपासना करती है। विविध सुख भोग के निर्मल साधनो से हमने अपना अज्ञान दूर कर लिया। जिस दिवस से आपने यहा पदार्पण कर अपना प्रलाप प्रारम्भ किया तभी से तुम उपहासास्पद बन गये हो। आपके आगमन से यह सगुण-ज्योति और भी अधिक प्रज्वलित हुई अतः आपने निर्गुण का कथन कर सगुण-वर्तिका को उसी प्रकार बढा दिया जिस भाति सीक से वर्तिका उकसा कर और अधिक तीव्र प्रकाश देती है एव यह सगुण-ज्योति की शिखा बढकर शीश तक पहुंच गई तथा इससे ज्ञानगढ भस्मसात् हो गया। मस्तिष्क रूपी आकाश मे दुर्वासना रूपी जितने भी कीट थे वे सब इससे भस्म हो गये। उद्धव ! आप तो श्रीकृष्ण के अत्यन्त निकटवर्ती एव मन्त्री सुने गये थे फिर भी आप ब्रज की प्रेम-रीति से अवगत न हो सके। इन विपरीत परिस्थितियो मे भी आप हमारे प्रेम की अडिगता नही देखते ? सूरदास जी वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि तुम्हे सत्कर्मों से खीर परोसी मिली अर्थात् कृष्ण का ससर्ग और गोपियो की अनन्य भक्ति का परिचय प्राप्त हुआ किन्तु आप उसे ग्रहण करने के स्थान पर बार बार जवासा अर्थात् निर्गुण को अपनाते हो।

विशेष—१ अलकार—सांगरूपक, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, लोकोक्ति आदि।

२. तुलना कीजिए—

"विरहिन के सहजै सबै योग, भक्ति, और ज्ञान।"

३ 'जवासा'—शुष्क तथा काँटेदार एक पौधा जो ग्रीष्म मे फलता फूलता है किन्तु वर्षा आते ही सूखकर नष्ट हो जाता है।

पद ३४२

गोपिकाएँ प्रेम-पथ की कठिनता जानते हुए भी उसे छोडने को तैयार नही। वे उद्धव से कहती है—

एकनिष्ठ प्रेम-भावना के कारण चातक ने समस्त जल त्याग दिये और तृषाकुल रहने पर भी वह स्वाति मेघ का ही भक्त बना रहता है और उसी की रट लगाता है। मछली जल के निर्मम स्वभाव से परिचित है (वह यह जानती है कि ग्रीष्म मे जल सूखकर मुझे निराश्रय कर देगा) तो भी उसके वियोग मे वह अपने प्राणो का उत्सर्ग कर देती है। मृग वशी की स्वर-लहरी पर झूमने से नही झिझकता यद्यपि आखेटक उसे अपने शर-सधान का लक्ष्य बना कर उसका प्राणान्त कर देता है। चकोर को चन्द्रमा की ओर निर्निमेप देखते युग बीत गये किन्तु वह चन्द्रमा की निर्ममता देख प्रेम नही छोडता। असख्य शलभो ने दीप शिखा मे अपना शरीर स्वाहा कर दिया किन्तु फिर भी उनके हृदय के प्रेम-कोष रिक्त नही हो पाये है। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि प्रेमी की निर्ममता के होते हुए भी दृढ प्रेम के ऐसे-ऐसे उदाहरण प्रत्यक्ष है तो हम श्री कृष्ण को किस भाँति विस्मृत कर दे? उनके साथ की गई प्रेम-क्रीडाओ की मधुर स्मृति आज तक हृदयस्थल पर अकित है।

विशेष—अलकार—तुल्ययोगिता से पुष्ट उदाहरणमाला।

पद ३४३

गोपिकाएँ श्रीकृष्ण की दर्शनाभिलाषा व्यक्त करती कहती है—

हे उद्धव! प्राणवल्लभ की दर्शनाभिलाषा मन की मन मे रह गई। उद्धव! उनके दर्शनाभाव मे हमे एक पल के लिए भी शान्ति नही, इस आकुल-व्याकुल दशा का वर्णन हम किससे करे? उनके प्रत्यागमन की अवधि-आशा के आधार पर ही हमने शारीरिक और मानसिक सन्तापो को सहन किया, किन्तु अब वह आशावलम्ब भी छूट गया। जहाँ से कुछ सहायता की आशा थी, वही से हमे डुबाने के लिए सकट की धार फूट पडी, अर्थात् श्रीकृष्ण के

मित्र होने के नाते हम उनके दर्शन प्राप्त करने के लिए सहायता लेती किन्तु आप उन्हे विस्मृत करने का उपाय बता रहे हो । सूर वर्णन करते हैं कि गोपिकाओ ने कहा कि हमारी इस विषम अवस्था को उद्धव तू स्वय देख ले, हमारी विवेक शून्यता से समस्त मर्यादाए नष्ट हो चुकी है । उन स्वामी श्री कृष्ण के वियोग मे हम अत्यत दग्ध हो रही है ।

पद ३४४

गोपिकाए कृष्ण की निष्ठुरता के प्रति आश्चर्य प्रकट करती कहती है—

हमे तो श्री कृष्ण का वर्तमान व्यवहार देखकर यही आश्चर्य और सोच होता है कि कहाँ तो उनका हमसे ऐसा प्रगाढ प्रेम था कि अपने हाथो से हमारे पैरो मे महावर लगाते थे और अब कुबडी कुब्जा को ऐसा अपनाया कि हमे सर्वथा विस्मृत कर दिया । गोवर्द्धन पर्वत को धारण कर जब उन्होने हमारी रक्षा की थी तो अब ब्रजनाथ नाम को बट्टा क्यो लगा रहे है ? तब वे मुरली को अधरो पर रख कर उसकी स्वर-लहरी मे हमारा नाम ले-लेकर क्यो आमन्त्रण देते थे ? तब न जाने कितना स्नेह प्रदर्शित कर उन्होने प्रमुदित हो हो कर हमारा आलिगन किया था । अब वे ऐसे निष्ठुर हुए है कि उस अनुपम रूप-छवि को इन नेत्रो को दिखाने की कृपा नही करते । जिस मुख के मधुर वार्तालाप का रात दिन ससर्ग रहता था वही अब मुख के स्पर्श ने हमारी रसना को अमृत प्रदान किया वह अब विष का पान कैसे करा रहा है ? सूर दास जी वर्णन करते है कि वियोगिनी गोपिकाएँ इस प्रकार हाथ मीड-मीड कर पछताती हुई बार-बार अपने मन को प्रबोध देती है, जिससे वे और भी अधिक व्यथित होती है ।

विशेष— अलकार— प्रतिवस्तूपमा, निदर्शना एव वृत्त्यनुप्रास ।

पद ३४५.

गोपी उद्धव को बनाती हुई कहती है—

हे सखि ! मेरा मन अनजाने मे ही मथुरा चला जाता है । ये उद्धव कहते रहते है कि श्री कृष्ण मथुरा मे है इसीलिए उनके दर्शनार्थ यह मन आते जाते थकता नही । जब मन ब्रज मे देखता है तो उद्धव नशे में चूर शराबी के समान प्रलाप करते दृष्टिगत होते हैं एव जब मथुरा मे पहुँच कर मन

देखता है तो प्राणधन श्री कृष्ण उद्धव की यह योग कथा सुनकर (सर्वज्ञ होने के कारण वे मथुरा मे भी उद्धव की कथा सुनते रहते है) व्यग्यपूर्वक मुस्कराते रहते है । सूरदास कहते है कि गोपियो ने कहा कि केवल श्री कृष्ण ही सत्य है और निर्गुण की यशोगाथा का वर्णन करने वाले ये समस्त ज्ञानी मिथ्या है । जिस अविद्या माया से समस्त जगत् भ्रम मे पडा हुआ है, ये ज्ञानी भी उसी माया के मोह मे पडकर निर्गुण का कथन करते है ।

विशेष—अन्तिम पक्ति मे माया का स्वरूप वल्लभ के पुष्टिमार्ग के अनुरूप प्राप्त होता है । पुष्टिमार्ग मे अविद्या माया ही जगत् के भ्रम का कारण है । "जेहि सब . डहकात" से सूर 'अविद्या माया' की ओर ही इगित करते है ।

पद ३४६

श्री कृष्ण के वियोग मे व्यथित गोपिकाए प्रकारान्तर से अपनी विरहा-भिव्यक्ति कर रही है ।

श्री कृष्ण के मथुरा चले जाने पर और तो जो कुछ हुआ सो हुआ ही किन्तु ब्रज मे दो ऋतुओ ने अपना स्थायी प्रभुत्व स्थापित कर लिया । ग्रीष्म और वर्षा दोनो ऋतुए नदनन्दन के बिना प्रचण्ड रूप धारण किये हुए है। दीर्घ श्वास-प्रश्वास के झझा एव नेत्र-मेघो का उमडना—ये समस्त वर्षा के उपकरण एकत्रित हो गये है । इन नेत्र-मेघो ने बरस-बरस कर दूर छिपे हुए दुखरूपी मेडको को लाकर प्रकट कर दिया । इस प्रकार ब्रज मे वर्षा का स्थायी वास है, अब ग्रीष्म की भी अवस्था देखिये ग्रीष्म मे यह असह्य वियोग प्रचण्ड-सूर्य के समान प्रति दिन उदय होता है । सूर वर्णन करते है कि श्री कृष्ण रूपी चन्द्र के विमुख हो जाने पर शरीर के वियोग-ताप को कौन दूर कर सकता है ।

विशेष—अलकार—रूपक, उपमा । २ छोटे से पद का अर्थ-गौरव दर्शनीय है जिसमे एक साथ दो ऋतुओ का अत्यत सुन्दर वर्णन हुआ है ।

पद ३४७

प्रेमी को यह जानने की बडी प्रबल इच्छा रहती है कि प्रिय भी उन्हे प्रेम

करता है अथवा नही। गोपियाँ इसी मनोभाव की अभिव्यक्ति कर रही है।

हे अलि ! तुम्हे श्याम की सौगध है, तुम हमे सच-सच बताना। श्री कृष्ण का मन कभी ब्रज आने को भी करता है या उन्होने हमारी स्मृति को सर्वथा भुला दिया है। हम तो अज्ञ अहीरने ठहरी। हम प्रेम-बावलियो ने दूसरो के वर्जित करने पर भी उनसे प्रेम-सम्बध स्थापित किया। वे मथुरा के रहने वाले निष्ठुर अग-प्रत्यग मे छलपूर्ण चतुराई भरे हुए है। उद्धव ! तुम सत्य तथ्य कहकर हमारे कानो को सुख प्रदान करो और योग की कुटिल बाते कहने की धूर्तता छोड दो। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाएँ कहती है कि हे प्राणधन ! कृष्ण ! आप अपने यश की रक्षा कीजिए, यहाँ आपकी लोक-हँसाई हो रही है। अर्थात् आप ब्रजनाथ कहाते है किन्तु ब्रज मे दर्शन तक नही देते इसलिए आपकी कीर्ति मे कलक लग रहा है। हमे दर्शन देकर आप इस कीर्ति को अक्षुण्ण रख सकते है।

पद ३४८

प्रेमी के लिए वियोग मे जीवन धारण करना अत्यत दुर्वह है। फिर गोपिकाओ का प्रेम तो अखिल-भुवन-विहारी सच्चिदानद श्री कृष्ण से था, उनके वियो ा मे वे किस प्रकार जीवित रहती।

"राम वियोगी ना जिये जिये तो बौरा होय।"

गोपिकाएँ भगवान् से वियुक्त प्रेमियो के उदाहरण देकर अपनी बात की पुष्टि करती है।

उस लीलाविहारी भगवान श्री कृष्ण का विरही आत्मसुधि कैसे रख सकता है ? जब से गगा विष्णु-पद से पृथक् हुई तब से उसने बहना बद नही किया, उसे शान्ति कहाँ ? उनकी नेत्र-ज्योति से वियुक्त होकर सूर्य निरन्तर भटकता रहता है और चन्द्रमा का शरीर उसी विरह से आज भी क्षीण होता रहता है। उनकी नाभि से अलग होकर कमल मे काँटे हो गये तथा समुद्र उन्ही के वियोग मे (वडवाग्नि से) जलकर खारा हो गया। उनकी वाणी से पृथक् होकर सरस्वती विधि-विधान के प्रतिकूल पुत्री होकर भी ब्रह्मा की पत्नी बन गई। इन सब की व्यथा को दूर करने वाला कोई नही। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा जब एक ही अग से वियुक्तो की ऐसी विकल दशा है तो

हम तो उनके सर्वांग से वियुक्त प्रेमिकाएँ है, हमारी असह्य वियोग-व्यथा का क्या उपचार हो सकता है ?

विशेष—१ अर्थान्तिरन्यास से पुष्ट उदाहरण माला, हेतूत्प्रेक्षा, एव सभगपद यमक अलकार है। २ प्रस्तुत पद के समस्त प्रसग वैदिक वचनावली एव पौराणिक गाथाओ पर आश्रित है।

पद ३४९

गोपिकाएँ श्री कृष्ण की निष्ठुरता पर व्यग्य करते कहती है—

उद्धव ! श्री कृष्ण ब्रज के निवासी थे, ऐसी बात सुनकर लोग हँसी करते है कि वे गोकुलवासी कहाँ से हुए जो इतने समय से यहाँ आते तक नही। कृष्ण ! आपने विष्णु रूप मे सागर मथन के समय अत्यत परिश्रम से निकाला हुआ अमृत तो देवताओ को पिला दिया एव विष शकर को दे दिया और स्वयं ने सर्वाधिक श्रेष्ठ अनिद्य सुन्दरी लक्ष्मी को लिया। आपका वह छल अब भी न गया, अब कस को मार कर राज्य तो अन्य स्वजनो को दे दिया किन्तु आपने उस दासी कुब्जा को पत्नी रूप मे ग्रहण किया। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि हमे आपकी ये ऊटपटॉग करतूते सुनकर अपनी विरह व्यथा भी विस्मृत हो जाती है।

पद ३५०

गोपिकाएँ उद्धव से कहती है—

जिस प्रकार आपने हमे दाहक निर्गुणोपदेश दिया, उसी भाँति आप हम से उसका प्रतिकार मथुरा लेते जाइये। उन्होने तो एक योग-सदेश ही भेजा था किन्तु उसके बदले तुम हमारी समस्त खरी-खोटी बाते उन्हे सुना देना। उद्धव ! तुमने तो हमे भोली भाली जानकर अपने योग की चाले चलने मे कोई कसर नही रखी। जब हमारी चढ बनी तो तुम पीछा छुडाकर भागना चाहते हो। हे मित्र ! अब तुम शीघ्र ही मथुरा जाकर सन्ताप दूर कर दो। अर्थात् उन्हे चिन्ता होगी कि गोपियो के पास मुफ्त मे एक योग-सदेश भेजा तुम उन्हे उस योग के बदले हमारी अनेक शिकायते बताकर उनके चित्त को परितोष दो। सूर वर्णन करते हैं कि गोपिकाओ ने कहा कि इस आदान प्रदान के व्यापार मे दोनो समान रहे, अत. हम दोनो (श्रीकृष्ण और गोपियाँ) ही श्रेष्ठी है, कोई किसी का ऋणी नही।

विशेष—अलकार—स्वभावोक्ति एव परिवृत्ति (जहाँ दो पक्षो मे परस्पर आदान-प्रदान हो)।

पद ३५१

अधिकारी भेद के आधार पर गोपिया निर्गुण का खण्डन करती उद्धव मे कहती है—

उद्धव! हमसे तनिक होश मे तो बात करो। तुम योग की अनधिकारी युवतियो को यह योगोपदेश देने आए हो क्या यही आपका ज्ञान है। आपने यहा निर्गुण का गुण गान किया, भला आपके क्या कहने! आपके लिए तो वह गुणहीन अत्यन श्रेष्ठ है। आप यह कहते है कि निर्गुण को अपनाने से मुक्ति की प्राप्ति हो जायेगी किन्तु हमने तो सगुण-स्वरूप श्री कृष्ण की प्रीति मे ही चारो मुक्तियो को प्राप्त कर लिया है। अत सालोक सारूप्य, सायुज्य एव सामीप्य—चारो मुक्तियाँ हमे प्राप्त है। आप चारो मुक्तियो को प्रदान करने वाली श्री कृष्ण की सगुण भक्ति को छोडकर निर्गुण का प्रलाप कर रहे हो। तुम वस्तुत बडे दुष्ट हो। अधिक क्या कहे, आप ज्ञानी और हम मूर्ख ही सही। किन्तु आप बिना कार्य के इधर-उधर भटकते फिरते हो अत तुम अपना मार्ग नापो। हे अज्ञानी! श्रीकृष्ण के सान्निध्य से हम स्वय ज्ञान-रूप हो गई है और आप हमे ही ज्ञान पढा रहे हो। हे मूर्ख भ्रमर! हम रात दिन सूर के प्रभु श्री कृष्ण के ही ध्यान मे मग्न रहती है अत जिधर दृष्टि निक्षेप करती है, वही दिखाई देता है—

"यत्र नान्यत्पश्यति, नान्यच्छृणोति, नान्यद्विजानाति।"

विशेष—१ अलकार—यमक, वृत्त्यनुप्रास। २ अन्तिम चरण के पूर्वार्द्ध मे शुक्ल जी का कथन द्रष्टव्य है—"जैसे, ज्ञान की चरमावस्था मे ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नही रहता, वैसे ही प्रेम या भक्ति की चरमावस्था मे उपास्य और उपासक का भेद मिट जाता है, गोपियो का अभिप्राय यह है कि हम तो स्वय कृष्णमय हो रही है।" ३ गोपियाँ श्री कृष्ण प्रेम मे ही चारो मुक्ति मानती है, इसी प्रकार द्वारकाप्रसाद मिश्र के 'कृष्णायन' मे अर्जुन 'गीताकाड' में कहता है—

"तुमही ज्ञेय, तुमहि पुनि ज्ञाना, तुम परमपद मोक्ष प्रदाता।"

पद ३५२.

गोपिकाए श्री कृष्ण की निष्ठुरता पर झल्लाकर कहती है—

हे भ्रमर ! तू यहाँ से दूर चला जा। तू रूप रग और आकार मे श्री कृष्ण के समान ही छली है। तेरे व्यवहार से मेरा मन विदीर्ण हो गया। जब तक तुम्हारा स्वार्थ रहता है तब तक तो सम्पर्क मे रहते हो, तदनन्तर अन्यत्र ऊपर उड जाते हो। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने भ्रमर से कहा कि तुम अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए घूम-घूम कर कलियो का रसपान करते-फिरते हो (तुम से ही श्री कृष्ण को हमारी हित चिन्ता से क्या प्रयोजन ?)।

विशेष—१ अलकार—अन्योक्ति। २ सूर काव्य किसी चली आती लोक-काव्य परम्परा का विकास है, इसका प्रमाण प्रस्तुत पद की लोक-धुन है। ३ तुलना कीजिए—

"रस रहते-रहते रहते हैं, कलियो पर अलियो के फेरे।"

पद ३५३

गोपियाँ उद्धव के निर्गुणोपदेश की खिल्ली उडाते हुए कहती है—

उद्धव ! तुम्हारा यह निर्गुणोपदेश का कृत्य स्तुत्य है। तुम्हारे स्वामी और उनके अनुचर तथा आप जैसे उनके दूत धन्य है। आप योगोपदेश द्वारा सगुण भक्ति का खण्डन करके आम जैसे मधुर फल के वृक्ष को काटकर कटक-पूर्ण बबूल लगाना चाहते है एव इस प्रकार आप चन्दन तुल्य कृष्णभक्ति को नष्ट कर देना चाहते है। गोपिकाए इस अनीतिपूर्ण व्यवहार को देखकर सूर के श्याम से निवेदन करती है कि यह अन्यायपूर्ण शासन कब तक चलता रहेगा (अब तो आप हमे दर्शन दे दे)।

विशेष—१ अलकार अन्योक्ति एव व्याजनिंदा। २. अन्तिम पक्ति मे सूर काव्य का लोक-रक्षक तत्व प्रकट होता है।

पद ३५४.

उद्धव गोपियो से निर्गुण को अपनाने मे ही उनका कल्याण बताते है, इसी के प्रत्युत्तर मे गोपियाँ कहती है—

हे उद्धव ! आप यहाँ से चले जाइये, आपको हम भली-भाँति जानती है। जैसे छली श्री कृष्ण है वैसे ही चतुर तथा छली आप उनके सेवक है। तुम्हें इस निर्गुण ज्ञान की प्राप्ति कहाँ हुई और किसके सिखाने से आप इसे यहाँ लाये है ? (गोपियो का सकेत कुब्जा की ओर है). यह ज्ञानोपदेश आप उस कुबडी कुब्जा को ही देना जिसके रूप पर श्रीकृष्ण अनुरक्त हैं। इस योग की

कठिनता का वर्णन कहाँ तक किया जाय । यह योग-सदेश है भी इतना विस्तृत कि पढते-पढते नेत्र दुखने लगते है। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि हे प्रभु कृष्ण ! इस योग को न अपनाने से हम तो बुरी है ही किन्तु आप अवश्य बारहबानी के खरे कचन हो ।

विशेष—अलकार—व्याजस्तुति ।

पद ३५५

उद्धव जब गोपिकाओ से बारम्बार योग द्वारा उनकी हितसाधना की बात कहते है तो गोपियाँ प्रत्युत्तर देती है —

उद्धव ! तुम्हारा कथन यथार्थ है । मथुरा मे सब कृतज्ञ धर्मात्मा ही तो निवास करते है । वे उदार हृदय है एव दूसरे के हित के लिए आपके समान ही इधर-उधर फिरते है । वे अत्यत विनययुत प्रिय भाषण भी (आप जैसा) ही करते है । एक तो परोपकारी वे अक्रूर आये थे जो श्री कृष्ण को लेकर मथुरा चले गये । कृष्ण के वहाँ पहुँचने पर कस का वध द्वारा एव हमारा वियोग-व्यथा द्वारा अन्त होने से एक साथ दो प्रयोजन सिद्ध हो गये । अब उद्धव जी श्री कृष्ण की योग शिक्षा का उपदेश देने के लिए पधारे है । वहा मथुरा मे श्री कृष्ण कुब्जा दासी के साथ प्रेम-क्रीडाओ मे सलग्न है और इधर उद्धव योग का बखान कर रहे है । अब हम इस विरहाम्बुधि मे श्री कृष्ण की प्रेम-रज्जु मे बधी हुई डूबने को ही है । अब तक तो इस समुद्र मे सगुण-स्वरूप श्री कृष्ण का लीलास्मरण ही हमारी नौका थी । हे भ्रमर ! उसी के द्वारा हम इसमे डूबने से बची रही । किन्तु अब आप उस अवलम्ब को छुडाकर गुणहीन (रज्जु-पतवार-विहीन) निर्गुण के द्वारा पार पाने को कहते हो ? सूर की गोपियाँ कहती है कि इस अक्रूर और भ्रमर के मन मे हमारी वेदना का भी तो ध्यान नही, अथवा अक्रूर और मधुप को दीनबन्धु ईश्वर का भी भय नही ।

विशेष—अलकार रूपक, व्याजनिंदा ।

पद ३५६.

गोपियाँ कृष्ण की भ्रमरवृत्ति पर व्यंग्य करती हुई उद्धव की खिल्ली उडाती हैं—

उद्धव ! आप भी खूब इस योग के प्रपच मे भटक गये । श्री कृष्ण ने

कभी योग की कोई बात वैसे ही कह दी होगी और आप उसे यथार्थ जान हमे उपदेश देने आ गये। हमने आपकी चतुरता को भली भाँति देख लिया है। अरे श्री कृष्ण ने तो इस योगोपदेश के बहाने तुम्हे इधर टरका दिया है और वे स्वय कुब्जा के साथ प्रेम-क्रीडा मे सलिप्त है। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि हममे से कोई भी कृष्ण प्रेम को छोड इस कठिन योगसाधना को नही अपनायेगी। इसलिए आप अपने इस योग को भली प्रकार सहेज कर शीघ्र ही मथुरा को लौट जाइये।

पद ३५७.

गोपियाँ उद्धव के निर्गुण की खिल्ली उडाती कहती है—

हे उद्धव ! आप योग का सदेश ब्रज मे लाये है। इसके प्रचार मे इधर-उधर भटकने से आपके पैर भी थक गये होगे। आप परिश्रमपूर्वक निर्गुण पक्ष की युक्तियाँ गढ गढ कर कहते है किन्तु फिर भी आप की इस निर्गुण-कथा को कौन सुनता है ? हमे तो सगुण श्री कृष्ण की भक्ति सुमेरु पर्वत के समान स्पष्ट और प्रत्यक्ष दिखाई देती है आप उसे योग के तिनके की ओट मे छिपाने का विफल प्रयत्न कर रहे है। हम श्री कृष्ण की चालो को भली भाति समझती है, वे सर्वदा ऐसी ही चिकनी चुपडी बातो से बहकाया करते हैं। हमने तो अब तक कभी भी जल को मथकर नवनीत प्राप्ति की बात न कही देखी और न सुनी है। भाव यह है कि जिस प्रकार जल को मथकर नवनीत प्राप्त नही किया जा सकता उसी भाति निर्गुण को अपना कर भक्ति के सुरम्य फल प्राप्त नही किये जा सकते। योगी जिस ब्रह्म को योग के अथाह समुद्र मे ढूँढने का प्रयास करने पर भी प्राप्त नही कर सकता, वही यशोदा माता के प्रेम के कारण प्रत्यक्ष रूप मे स्वत ही ऊखल से बँध जाते है। इसलिए आप इस योग के प्रलाप को बन्द कर अपने ज्ञान को अनावृत ही रहने दो, व्यर्थ हमारी विरह वेदना को क्यो बढा रहे हो ? हमे तुम बताओ कि कमल के समान सुन्दर नेत्रधारी श्रीकृष्ण किसे प्रिय नही है ! ऐसी स्थिति मे भी तुम योग की ये ऊटपटाग बाते कहकर हमे व्यथित कर रहे हो। सूर वर्णन करते है कि गोपिकाओ ने कहा कि जिस अरूप ब्रह्म को वेदादि शास्त्र 'नेति-नेति' कहकर रह जाते है उसे युवतिया किस भांति अपनावें ?

विशेष—अलंकार—रूपक, छेकानुप्रास, निदर्शना।

पद ३५८

गोपिकाएँ श्री कृष्ण की निष्ठुरता को लक्ष्य कर व्यग्य करती हैं—

हे मधुप ! श्री कृष्ण को मथुरा जाकर क्या लाभ हुआ ? अब वे न जाने किस प्रकार सुख पाते होगे, क्योकि अब उनके शरीर के दो स्वरूप है—एक मथुरा मे और दूसरा यहाँ। यहाँ उनका शरीर पुरातन-प्रेम मे सलिप्त है और उधर वे नित्य नवीन प्रेम का उपभोग करते है। यह सुना जाता है कि मथुरा मे वे राज वेष धारण कर सुशोभित होते है एव यहाँ हम उन्हे (उसी पूर्व रूप मे) वशीधारण किये देखती है। उस धूर्त क्रूर अक्रूर को कृष्ण को ले जाने के छल से न जाने क्या प्राप्त हो गया ? अब स्थिति परिवर्तित हो गई है, श्री कृष्ण का वह पुरातन प्रेम-सम्बन्ध समाप्त हो गया है। भला हमे बिना योग सिखाये अब वे ब्रज मे क्यो रहेगे ? अस्तु ! यदि कोई मथुरा मे राजा है तो वह अपने लिए, शीश पर छत्र सुशोभित करवा कर वह आनन्द पूर्वक राज्य करे। (सूर कहते है कि) हमे तो नन्दलाल श्री कृष्ण ब्रज मे बने रहे, हम उन्ही का मुख-दर्शन कर जीवन धारण किये हुए है। भाव यह है कि मथुराधिपति श्री कृष्ण हमे भले ही न स्मरण करे किन्तु हम नदलाल की स्मृति मे ही अपना जीवन व्यतीत कर देंगी।

विशेष—अलंकार—वृत्त्यनुप्रास।

पद ३५९

गोपिकाओ की प्रीति असह्य विरह-वेदनाए सहते हुए भी छूटती नही है। गोपी कहती है—

उद्धव ! श्री कृष्ण से हमारा अनुराग जन्म-जन्मान्तर का है किन्तु अब तो यह प्रेम वेदना की असीमता के कारण मेरे प्राणो के लिए सकट बन रहा है। हे प्राणधन श्री कृष्ण आप दीर्घ समय से हमारा साथ छोडकर मथुरा मे रम रहे है और मथुरा आने के लिए भी हमे मना कर दिया। जिस दिन से हमने आपसे प्रेम किया तब से यह अनुदिन बढ रहा है घटता नही है। यदि आपको इस कथन का विश्वास न हो तो तराजू (नरजी=छोटी तराजू, आज भी प्रचलित देशज शब्द) से तोल (तूल) कर देख लीजिए। सूरदास वर्णन करते हैं कि गोपिका ने कहा कि हे प्राणनाथ आपके वियोग मे यह

शरीर एक सिलाई का वस्त्र बन गया है, विरह रूपी दरजी जिसकी काँट-छाँट कर (क्षीण कर) रहा है।

विशेष—अलकार—लुप्तोपमा।

पद ३६०

गोपियाँ उद्धव से श्री कृष्ण को बुलाने की अत्यन्त आकुल मनुहार करती है --

हे उद्धव! तुम श्री कृष्ण को अब की वार छल-बल अथवा अनुनय किसी प्रकार से भी मना कर व्रज ले आओ। तुम उन्हे भली-भाँति धैर्यपूर्वक समझाकर यह उपालम्भ देना कि तुम जिन निरवलम्ब व्रजागनाओ को विरह-बाढ मे छोड आये थे, हे यदुनाथ! अब वे वेदना-विकल है। सूर वर्णन करते है कि गोपियो ने कहा कि उद्धव तुम तो स्वय ज्ञानी हो, तुम्हे अधिक क्या समझाये? जिस प्रकार भी हो, बाँह पकडकर हठपूर्वक अथवा नद की सौगंद दिलाकर, उन्हे यहा ले आओ।

पद ३६१

गोपियाँ उद्धव पर झल्लाती हुई कहती है—

हे उद्धव! आप से हमारा पिण्ड या तो लडकर अथवा मौन धारण कर ही, छूट सकता है। एक तो हम श्री कृष्ण की वियोगाग्नि मे वैसे ही दग्ध हो रही है, इस निर्गुण-ज्ञान के द्वारा आप जले हुए को और भी जलाते हो। अत्र बताओ कुभाषी कौन है, आप या हम। तुम और श्री कृष्ण दोनो समान स्वरूप के काले वर्ण वाले (छली) हो, मन किस का विश्वास करे—यही उलझन है। आपके लाये इस योग सन्देश को वही ग्रहण कर सकती हैं जो तुम्हारे समान चचल हो। जिस किसी को योग अच्छा लगता हो वह अपने शरीर पर विभूति धारण कर सकती है। भला जिसके हृदय मे श्री कृष्ण बसे हुए हैं उसे निर्गुण किस प्रकार अच्छा लग सकता है? हे उद्धव! आप सूर के स्वामी श्री कृष्ण से जाकर यह निवेदन कर देना कि आपका निर्गुण सर्वथा अन्यायपूर्ण है। अत. आप अपने इस सन्देश को स्वय ही ग्रहण करे और निर्गुण की गुत्थी को सुलझाते रहे।

विशेष—लोकोक्ति अलकार है।

पद ३६२

गोपिकाएँ एकपक्षीय प्रेम की दशा का वर्णन करती कहती है—

हे सखि ! एकपक्षीय प्रेम की स्थिति ऐसी ही है जैसे कुसुभी रग थोडा ही अधिक होकर वस्त्र को गहरा रग दे देता है और थोडा कम होने पर श्वेत रह जाता है अर्थात् एकपक्षीय प्रेम मे भविष्य प्रिय की इच्छा पर निर्भर रहता है एव जिस प्रकार कृषक अधिक अन्न-उत्पादन के विचार से अपने खेत को अनेक बार जोतता है किन्तु इस घोर परिश्रम पर भी निष्ठुर जल वर्षा के द्वारा उसकी समस्त आशाएँ नष्ट हो जाती है। सूरदास वर्णन करते है कि समस्त गोपिकाएँ उद्धव से कह रही है कि आप हमारी बात तनिक सजग होकर सुनिये कि उन प्रभु श्रीकृष्ण से वियुक्त होकर भी भक्त उसी प्रकार अलग नही हो सकता जिस भाँति बालू मे मिली राई अलग नही हो सकती। भाव यह है कि श्री कृष्ण से हमारा प्रेम सम्बन्ध अटूट है।

विशेष—अलकार—मालोपमा एव उत्प्रेक्षा।

पद ३६३.

गोपिकाएँ उद्धव से कहती है—

हे मधुप (उद्धव) ! हमारा मन तुम्हारी योग-चर्चा सुनकर भयभीत होता है। आप अत्यत ज्ञानी कहे जाते है तो भी इतनी सी बात आपकी समझ मे नही आती कि दूसरो का मन दुखाना पाप है। तुम कृष्ण से हमारा प्रेम-सम्बध छुडाना चाहते हो किन्तु यह असम्भव है। जो अनेक सुगन्धित, शीतलता प्रदान करने वाले एव सुन्दर पुष्प है उन सबका अनादर करके तुम कमल वन मे ही क्यो जाते हो ? महान्-ज्योतिष्मान् समूहो मे सूर्य सर्वाधिक प्रकाशवान् ज्योतिपुज है, फिर भी चकोर चन्द्रमा को छोड उसका ध्यान नही करता। तुम सबको ये विपरीत बाते बता रहे हो जिनको सुनकर हृदय दग्ध होता है। रे दुष्ट मधुप ! भला जामुन के वृक्ष पर भी कही आम जैसा श्रेष्ठ मधुर फल लग सकता है ! हस के समान विवेकी गोपिकाए केवल मुक्ता-रूपी दर्शनावधि पर ही आश्रित रहेगी। सूर वर्णन करते है कि आज गोपिकाएँ आपके प्रेम मे इतनी क्षीण हो गई है जिस भाति जल के अभाव मे मछली।

विशेष—अलकार—रूपक, उत्प्रेक्षा, निदर्शना।

पद ३६४

निर्गुण की निरन्तर उपेक्षा पर उद्धव गोपियो से कहते है कि तुम निर्गुणोपासना को थोड़े ही समय अपना कर देख लो, यदि उसमे मन न लगे तो पुन. श्री कृष्णाराधना मे तत्पर हो जाना। इसी के प्रत्युत्तर मे गोपिकाएँ कहती है—

एक बार किसी से प्रेमसम्बध तोडकर पुन स्थापित करना कुछ शोभा नही देता क्योंकि टूटा हुआ सूत्र जुड तो जाता है परन्तु गाँठ पड जाती है। छल कपट पूर्ण प्रेम व्यवहार इसी प्रकार अनैच्छिक है जिस भाँति गाय अपने पैरो मे नोई बँधवा कर दूध देती है। भला खटाई से फटे दूध को जिस भाँति कोई स्वादिष्ट कहकर स्वीकार नही कर सकता उसी प्रकार योग को। उद्धव से गोपियों ने कहा कि जिस प्रकार केले के पेड के पास बेर का वृक्ष रहने से केले को निरन्तर कष्ट रहता है, उसी प्रकार आपको भी। तुम अपनी इस योग-वाणी को अमृत-तुल्य समझते रहे होगे किन्तु जिस भाँति साँप के मुख मे स्वाति नक्षत्र की बूँद गिरकर विष बन जाती है, उसी प्रकार आपके द्वारा उपदेशित योग हमारे लिए विष बन जाता है। ऐसी तो कितनी ही झूठी बाते बना बना कर तुम श्रीकृष्ण के विरोध मे कहते हो किन्तु वे सब निरर्थक है। सूर वर्णन करते हैं कि गोपिकाएँ कहती है कि नग्न रहने वालो की नग्री मे धोबियो का व्यापार कैसे चल सकता है ? भाव यह है कि श्री कृष्ण की प्रेम-दीवानी गोपिकाओ के लिए निर्गुणोपदेश व्यर्थ है।

पद ३६५.

गोपिकाएँ श्री कृष्ण की निष्ठुरता पर व्यग्य करती कहती है—

उद्धव ! उस परदेशी श्री कृष्ण के छलपूर्ण व्यवहार की बात आपसे क्या कहे ? उन्होंने अपने प्रत्यागमन की अवधि एक पक्ष बताई थी किन्तु अब उनको आये मास के मास व्यतीत हो गये है। उनके वियोग मे हमारे दिवस वर्ष के समान तथा रात्रियाँ युगो के समान बीत रही हैं एव कामदेव हमारे प्राणो का ग्राहक बन कर बैठा है। हमारा चित्त तो श्री कृष्ण अपने साथ ही ले गये हैं, इसलिए आज ऐसी स्थिति हो गई है कि हम नक्षत्र (२७) वेद (४) ग्रह (९) जोडकर उन्हें आधा करके अर्थात् विष खा जायेगी, हमे इस कार्य से कोई भी नही रोक सकता। सूरदास वर्णन करते हैं कि गोपिकाएँ इस

प्रकार दिनानुदिन की गणना कर हाथ मलती हुई आपके दर्शनार्थ लालायित है।

विशेष—इस दृष्टकूट पद मे सूर ने अपनी कल्पना की उछल-कूद तो पर्याप्त दिखाई है किन्तु इस शैली से रस बोध मे बाधा पडती है और काव्य प्रथम कोटि का नही रह जाता।

पद ३६६.

गोपिकाएँ उद्धव से कहती है कि आपका उपास्य निर्गुण है एव हमारा सगुण, इसमे व्यर्थ के विवाद की क्या आवश्यकता है ? "भिन्नरुचिर्हि लोक" को लक्ष्य कर गोपिकाएँ कहती है—

उद्धव ! यह तो अपने अपने मन की रुचि है, तुम्हें निर्गुण की योग साधना रुचिकर लगती है तो हमे सगुण का प्रेम। जिसका जिससे प्रेम है वह उसे त्याग नही सकता, देखो न किशमिश एव छुहारे जैसे अमृत-तुल्य फलो को छोडकर विप का कीडा (अथवा विष्ठा का कीडा) विष ही खाता है। यदि कोई चकोर को कपूर जैसा शीतल भोज्य दे तो वह अगारो के अभाव मे उससे परितृप्ति कर ही नही सकता। भ्रमर कठोर काष्ठ मे तो छिद्र करके अपना घर बना लेता है किन्तु पद्म-कोष मे बन्दी हो जाता है। शलभ दीप शिखा पर प्राणोत्सर्ग करने मे ही अपना हित समझता है। सूर वर्णन करते हैं कि गोपियो ने कहा कि जिसका जिससे प्रेम होता है उसे वही अच्छा लगता है। अत· यदि आपका निर्गुण सगुण से श्रेष्ठ है तो हम उसके लिए श्री कृष्ण-प्रेम का परित्याग नही कर सकती। हमे तो यह सगुण ही बना रहे।

विशेष— १. अलकार—उदाहरणमाला तथा निदर्शना ("जो चकोर को ...अघात ?") २. तुलना कीजिए—

"प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।"

+ + +

"जो है जाको भावता सो ताहि के पास।"

पद ३६७.

गोपिकाएँ उद्धव से अपनी विरह वेदना प्रदत्त कृशता का वर्णन करती कहती हैं—

उद्धव ! हम श्री कृष्ण के वियोग मे इतनी क्षीण— कृशकाय हो गई हैं

कि हाथ का कगन बाहु के भुजबध का कार्य कर रहा है। जब प्राणवल्लभ नद-कुमार मथुरा गये थे तो उन्होने अत्यत शीघ्र लौटने का वचन दिया था, किन्तु अब उनके प्रत्यागमन की प्रतीक्षा करते करते इतना समय व्यतीत हो गया है। मै अहर्निश आपकी मगल कामना के लिए शकर की मनौतियाँ कर अवधि के क्षण-क्षण गिनती रहती हूँ। इस वियोग की अवस्था का सदेश आप तक पहुँचाने के लिए यदि कभी पत्रिका लिखने का उपक्रम करती हूँ तो विरहा-कुलता में गिरे अश्रु जल से कागज भीग जाता है। अत श्रीकृष्ण के लिए मैं कोई लिखित सदेश नही कह सकती। मेरी यह बात उनसे निवेदन कर देना कि आपके वियोग मे हमे नित्य नवीन वेदना सहन करनी पडती है। सूरदास वर्णन करते है कि आपके दर्शन के लिए वियोगिनी ब्रज-बालाएँ अत्यंत व्याकुल हैं।

विशेष—अतिशयोक्ति एव काव्यलिंग अलकार है।

पद ३६८.

कोई गोपी अपनी विरह विकलता का वर्णन करती कहती है—

हे सखि! मै कुसुम चुनने नही जा सकती। प्रियतम श्रीकृष्ण के अभाव मे मैं किस प्रकार सुमन सचित कर सकती हूँ? हे सखि! मैं प्रभु की शपथ खा कर कहती हूँ कि मुझे कोमल पुष्प त्रिशूल के समान भयानक एव सताप-दायी लगते है। जो सामने लाल-लाल फूल डालियो पर झूम रहे हैं वे श्री कृष्ण के बिना अग्नि के समान दाहक लगते है और वे झडते हुए अगारो के समान प्रतीत होते है। हे सखि! मैं पनघट पर कैसे जाऊँ? जल भरने के लिए जब मैं यमुना तट पर जाती हूँ तो इन नेत्रो के अश्रु-प्रवाह से यमुना मे बाढ आ जाती है। सखि शय्या पर पहुँचकर अश्रुओ का निरन्तर प्रवाह चलता है जिस से मेरी शय्या चन्नई (माटो अथवा घडो द्वारा निर्मित नौका जैसी) बन जाती है जिस पर मेरा अस्तित्व तिरता रहता है। उस समय यह इच्छा होती है कि उस पर बैठ कर श्री कृष्ण से मिलने जाऊँ अर्थात् शयन समय उनकी स्मृति अत्यत विकल बना देती है। हे सखि! प्रियतम श्री कृष्ण के अभाव मे हमारे प्राण ओष्ठो पर आकर अटक गये हैं। भाव यह है कि मरणासन्न अवस्था को प्राप्त हो रही हैं किन्तु मेरी इस असाध्य अवस्था का वर्णन श्री कृष्ण से भली प्रकार समझा कर कौन कहे?

विशेष—१ अलकार अतिशयोक्ति एव लुप्तोपमा। २ वियोग की दशम अवस्था का वर्णन है।

पद ३६९

गोपिकाए श्रीकृष्ण को बुलाने के लिए अत्यत विनम्र प्रार्थना करती है—

हे उद्धव ! हम आपसे अनुनय करती है कि ऐसा उपाय कीजिए जिससे श्री कृष्ण पुनः ब्रज मे एक बार दर्शन देने की कृपा करे। उनके आगमन की प्रतीक्षा करते करते नेत्र-ज्योति धूमिल पड गई है। उनकी स्मृति मे न रात को नीद आती है और न दिन मे भोजन अच्छा लगता है। आज भी ब्रज उन्ही अन्धकारपूर्ण सघन काननो से युक्त है (सकेत स्थलो की ओर इगित है) एव यमुना की वही श्यामल धारा प्रवहमान है किन्तु श्री कृष्ण के अभाव मे यह सब अच्छा नही लगता। हम आत्म-विस्मृत हो पागलो के समान यत्र-तत्र प्रलाप करती फिरती है। हम लज्जा का परित्याग कर मथुरा की ओर चल देती है किन्तु विरह-ज्वर मे अशक्तता के कारण चला नही जाता। हे प्रभु श्री कृष्ण ! आप शीघ्र दर्शन दे, इससे आपको हमारी प्राण-रक्षा का यश ससार मे प्राप्त होगा।

विशेष—१ अलकार अतिशयोक्ति एव यमक। २ पुष्टिमार्गीय भक्ति पद्धति के अनुकूल 'कुलकानि त्याग' का वर्णन हुआ है।

पद ३७०.

गोपिका श्री कृष्ण के लिए संदेश प्रेषित करती उद्धव से कहती है—

उद्धव ! जब तुम मथुरा जाओ तो ब्रजनाथ श्री कृष्ण से मेरा चरण स्पर्श कह देना एव उनसे कहना कि अब आपके दर्शन बिना मुझे बडा दुख पहुच रहा है। शरीर इस असह्य दारुण विरहातप से विदग्ध हो रहा है। शरत्-चन्द्र मेरे लिए बहुत बडा शत्रु बन गया है एव शीतल समीर का सस्पर्श मुझ से सहन नही होता। अब किस प्रकार जीवन धारण किया जाय ? सूर स्वामी श्री कृष्ण के अभाव मे घर एव वन कही भी आनन्द नही, उनके अतिरिक्त हम किसका आश्रय ग्रहण करे।

विशेष—१ अलकार अतिशयोक्ति। २. इसी प्रकार 'रत्नाकर' की गोपियो ने कहा था— **"श्याम सों हमारी राम राम कहि दीजियो"**

पद ३७१

सयोग-कालीन स्मृतियो का ध्यान करके राधा कहती है—

हे सखि ! मेरे मन मे कृष्ण के सयोग समय की स्मृतियाँ आकर वेदना-विदग्ध करती है। नन्दलाल श्री कृष्ण के साथ जो प्रेम-क्रीडाए हुई वे आज तक हृदय पटल पर अकित है। एक दिन का प्रसग है कि वे मेरे घर आये, मै दही बिलो रही थी। उनको देखकर मैने मान किया, श्री कृष्ण जी भी क्रुद्ध हो गये। सूरदास वर्णन करते है कि वियोग काल मे उस घटना को स्मरण कर के राधा अत्यत चिंतित होकर पृथ्वी पर मूर्छित हो गिर पडती है। श्री कृष्ण के वियोग की असह्य व्यथा उससे सहन नही हो पाती।

विशेष—१ अलकार—अतिशयोक्ति। २ 'मूर्च्छा' नामक वियोग दशा का सुन्दर चित्रण है।

पद ३७२

गोपिकाएँ श्री कृष्ण को उपालम्भ देती कहती है—

हे सखि ! श्री कृष्ण के प्रेम का छलपूर्ण व्यवहार तो देखो। उस झूठे प्रेम की स्वर्ण के समान चमकदार कलई का रहस्य खुल गया। हम तो समझती थी कि कृष्ण हमारे सच्चे मित्र है किन्तु अब उनकी निष्ठुरता से ज्ञात होता है कि वे कपटी हृदय थे। मथुरा के दुष्ट लोगो ने उन्हे बहका लिया है इसीलिए समस्त ब्रज-समाज की प्रीति को उन्होने विस्मृत कर दिया है। वे भला प्रेम निर्वाह के महत्व को क्या जाने ? अहीर ही जो ठहरे। सूरदास जी वर्णन करते है कि इस प्रकार वियोगिनी गोपिकाएँ पुरातन प्रेम-सम्बन्ध का स्मरण कर हाथ मल-मल कर पछता रही है।

पद ३७३

गोपिका श्री कृष्ण की निष्ठुरता के प्रति उपालम्भ देती कह रही है—

सखि ! मै समझ रही थी कि श्री कृष्ण ने मुझसे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित किया है। जिस प्रकार भ्रमर अत्यन्त सम्मानपूर्वक कमल के साथ प्रेम-क्रीडा मे रत रहकर उसका मधुपान कर छोड देता है उसी भाति उन्होंने मेरे मुख कमल का समस्त रस पान कर परित्यक्त कर दिया है। हमसे तो अच्छी वह पूतना राक्षसी रही जिसके स्तन्य-पान के साथ प्राणो का अन्त

कर स्नान के लिए उन्हे बडे प्रयत्न से तैयार करती थी । इतने दिनो मे तुम कृष्ण के स्वभाव और रुचि से अवश्य परिचित हो गई होगी किन्तु फिर भी मेरा मन बिना कहे मानता नही है। प्रात काल उठते ही मेरे लाडले गोपाल को मक्खन और रोटी बड़ी प्रिय लगती है। सूर वर्णन करते है कि यशोदा कहती है कि मेरे हृदय मे यह चिन्ता रात-दिन बनी रहती है कि अब मेरे लाडले श्रीकृष्ण को इन प्रिय वस्तुओ के माँगने का सकोच होता होगा।

पद ३७६

यशोदा उद्धव से अपनी व्यथा का बडा मार्मिक उल्लेख करती है—

यद्यपि लोग मेरे मन को श्री कृष्ण की वियोग-व्यथा को दूर करने के लिए प्रबोध देते है तथापि प्रात काल मे गोपाल के खाने योग्य सद्य नवनीत देखकर मन बहुत सतप्त होता है। भला अब मेरे गोपाल को प्रात काल होते ही बिना माँगे कौन मक्खन और रोटी प्रस्तुत करता होगा। अब मेरे प्रिय पुत्र कुँवर कन्हैया की क्षण प्रतिक्षण प्रतीक्षा कौन करता होगा ? हे उद्धव ! तुम मथुरा जाकर श्री कृष्ण से कह देना कि वे और बलराम दोनो भाई घर लौट आवे। सूर वर्णन करते है कि यशोदा ने कहा कि उनसे कहना कि जब अभी मुझ जैसी स्नेहमयी उनकी माँ जीवित है तो वे व्यर्थ वहाँ क्यो दुखी हो रहे हैं ?

पद ३७७

यशोदा देवकी के लिए अत्यत आक्रोश-पूर्ण सदेश प्रेषित करती है—

उद्धव ! देवकी से कहना कि यदि वह मुझसे अपना सम्बध बनाए रखना चाहती है तो मुझे मेरे लाल गोपाल के एक बार आकर दर्शन करा दें। यह ठीक है कि आप वसुदेव की गृहलक्ष्मी और हम तुच्छ अहीर हैं किन्तु आप हमे हमारे प्रिय पुत्र गोपाल को लौटा दे। कृष्ण को रोके रखने का यह परिहास हमे रुचिकर नही। श्री कृष्ण ने कसादि का वध करके भला ही किया, अवसर पर बिगडी बात को सम्भाला ही किन्तु अब इन गायो को कौन चराये। उनकी स्मृति मे इनका हृदय दुखित रहता है। सूरदास कहते हैं कि यशोदा ने कहा कि यह माना कि उन्हे वहाँ सम्पूर्ण सुख और ऐश्वर्य प्राप्त हैं, खान, पान, वस्त्रादिक एव अन्यान्य राजकीय सुखो की प्राप्ति उन्हे अवश्य होती होगी किन्तु वह मेरा बालक गोपाल मक्खन खा कर ही परितृप्त होता है। अत उसे ब्रज भेज दो।

कुब्जा-संदेश

कृष्ण की मुँह लगी दासी कुब्जा का उद्धव सदेश कहते है—

ये ब्रजागनाएँ न जाने मुझ पर क्यो अपनी झुझलाहट उतारती है? मुझे श्री कृष्ण के ससर्ग का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, इसमे उनके जलने की क्या बात है? किसी के भाग्य मे दूसरे का भाग थोडे ही होता है। यह तो प्रभु की कृपा है कि किसी को कुछ और किसी को कुछ प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण उनके मध्य भी रहे किन्तु उन्होने उनकी उपेक्षा इसी प्रकार कर दी जिस प्रकार कुछ तोरई की तूमडी कूडे पर व्यर्थ पडी रहती है। किन्तु यदि यही तूमडी जब किसी पारखी के हाथ लग जाती है तो सुन्दर राग बजाने लगती है, उसी भाँति कृष्ण को पाकर मैने उनके गुणो को समझा और अब आनद प्राप्त कर रही हूँ। उद्धव गोपिकाओ से कहते है कि कुब्जा ने यह सदेश कहा है और साथ निवेदन किया है कि श्रीकृष्ण को मथुरा रोकने मे मेरा कोई दोष नही। मैं तो राजा कस की एक दासी मात्र थी किन्तु सूर-प्रभु दयालु श्री कृष्ण ने अपने हाथ से मुझे सीधा कर दिया है। अत वे व्यर्थ मुझ पर क्रोध न करे।

विशेष—"फल माँझ जैसे राग दुलारी" चरण का अर्थ इस प्रकार भी लगाया जा सकता है—

"जिस प्रकार कटु तोरई की तूमडी व्यर्थ कूडे पर पडी रहती है उसी प्रकार मैं (कुब्जा स्वय) कृष्ण के आने से पूर्व उपेक्षिता थी किन्तु तूमडी को कोई गुणी पाकर रागपूर्ण वाद्य का स्वरूप दे देता है, उसी भाति मुझे भी कृष्ण के ससर्ग से आनद प्राप्त हुआ।"

पद ३७९

पहले बताया जा चुका है कि सूर ने तीन भ्रमर गीतो की रचना की है— एक तो विभिन्न पदो मे चलने वाला प्रसिद्ध भ्रमरगीत एव अन्य दो मे भ्रमर गीत की समस्त कथा एक दो ही पद मे विस्तार पूर्वक कह दी गई है। इस प्रकार का एक पद पहले आ चुका है, (देखिये पद १७) प्रस्तुत पद भी इसी प्रकार का है—

उद्धव गोपिकाओ से कहते है मुझे तुम्हारे पास श्रीकृष्ण ने भेजा है। मैं तुम्हें आत्म-ज्ञान का उपदेश देने आया हूँ। तुम व्यर्थ मे कृष्ण-मोह मे पड गयी हो। वह किसी से प्रेम नही करता। वह तो स्वय पुरुष और स्वयं ही

नारी है, अत उसे किसी के प्रेम की आवश्यकता नही। स्वय ही वह वानप्रस्थ व्रत का आचरण करने वाला है। वह स्वय ही अपना पिता और माता है। आप ही अपनी बहिन एव भाई है। उसे किसी अन्य सम्बधी की अपेक्षा ही नही। वही विद्वान् और वही ज्ञानवान् है। स्वय राजा और रानी दोनो है। धरती और आकाश उसी के अस्तित्व है। वह स्वय ही अपना स्वामी और सेवक है। वह स्वय ग्वाल-बाल है और स्वय ही गौ-धन है जिसे वह स्वय ही चराने जाता है। वह स्वय सुमन और स्वय ही मधुप है। इस आत्म-ज्ञान के अभाव मे समस्त जगत् भ्रमित है। राजा और निर्धन अन्य कोई नही है, वह निर्गुण ब्रह्म ही है। जो इस रहस्यपूर्ण तत्व को जान लेता है उसके हृदय से वृद्धावस्था और मरणादि के भय दूर हो जाते है।

गोपी वचन—उद्धव की इन ज्ञानपूर्ण बातो के प्रत्युत्तर मे गोपिकाएँ कहती है—हे उद्धव! आप तो अत्यत ज्ञानवान् हो किन्तु ब्रज मे ऐसी चतुर और ज्ञानी कौन है। जो योगी है वे ही आपके इस उपदेश को हृदयगम कर सकते है। हमारा मन तो सर्वदा श्री कृष्ण की नवधा भक्ति मे ही अनुरक्त रहता है। भगवान् का प्रेमी भक्त तो भावपूर्ण भक्ति मे ही प्रवृत्त हो सकता है एव निर्गुण की उस अलख ज्योति को तो शिव, सनक सनदन आदि जैसे योगी ही देख सकते है। तुम अत्युक्तिपूर्वक निर्गुण ज्ञान का बखान कर रहे हो किन्तु ब्रजागनाएँ तो श्रीकृष्ण की सौन्दर्य-निधि पर ही आसक्त हैं। पुष्प-वन्ध्या स्त्री को प्रसवकालीन वेदना का अनुभव नही होता। आप बारम्बार निर्गुण चर्चा करते हो इससे हमे श्री कृष्ण की ही स्मृति आ जाती है और उनके दर्शनाभाव मे हमे अन्य कुछ रुचिकर नही लगता। हम जब भी कृष्ण की किशोरावस्था की लावण्यमयी छवि का ध्यान करती है तो उस पर तुम्हारे निरजन की कोटि-कोटि ज्योतियाँ न्यौछावर की जा सकती है। घनश्याम के श्यामल शरीर की कान्ति जलयुक्त मेघ के समान सुन्दर है। उन बलरामबधु श्री कृष्ण के रूप पर हम मोहित हो गई है। उनके भाल पर चन्दन, कानो मे कुण्डल एवं वक्षस्थल पर वनमाला सुशोभित है, भला उनके विशाल नेत्रो की शोभा किस प्रकार विस्मृत की जा सकती है? कस्तूरी का सुन्दर तिलक तथा घु घराली केशराशि वाले श्री कृष्ण ने हमारा मन चुरा लिया है। वकिम भौहे

सुन्दर नासिका वाले श्याम के अधरो पर रखी मधुर मुरली की स्वर लहरी फूटती है। अनार के दानो के समान सुन्दर दतावली की चमक बिजली जैसी है एव उनका मधुर स्मित कामदेव को भी मोहित कर लेता है। उनकी सुन्दर ठोडी है एव वक्षस्थल पर गजमुक्ताओ की माला सुशोभित है जो नक्षत्र-माला की ज्योति को भी मन्द कर रही है। हाथो मे ककण, कटि मे किकिणी एव चलते हुए पैरो मे नुपूर की मधुर ध्वनि शोभित होती है। वह अपने शरीर को गेरू से रजित किये रहने है। उनकी यह सम्पूर्ण शोभा हमारे हृदय मे समा कर हमे विकल करती है। उनके पीताम्बर की शोभा तो अवर्णनीय ही है। श्री कृष्ण आपादचूड सौन्दर्य युक्त है। वह सौन्दर्य निधि ग्वाल-सखा न जाने कब अपनी त्रिभगी छवि के दर्शन देगे ? उद्धव यदि आप हमारे हितैषी बनते है तो श्री कृष्ण को हमसे मिला क्यो नही देते ?

उद्धव वचन—गोपिकाओ की ये बाते सुन कर उद्धव कहते है कि हे चतुर गोपियो ! तुम उस ब्रह्म की उपासना क्यो नही करती जिसको महान् ज्ञानी ऋषिवर खोजते है। जिस ब्रह्म का कुछ स्वरूप नही है उस निराकार का ध्यान तुम सब करो। उस ब्रह्म की ज्योति हृदय मे निरन्तर ज्योतित रहती है एव अनहद नाद होता रहता है। इडा, पिगला तथा सुषुम्णा नाडियो की साधना के माध्यम से शून्य देश मे वसे ब्रह्म का ही ध्यान करो। माता-पिता पत्नी आदि के साँसारिक सम्बध मिथ्या है, केवल ब्रह्म ही सत्य हे जो समस्त चराचर मे व्याप्त है। इस प्रकार योग साधना को शनै शनै अपनाकर तुम इस कठिन ससार सागर से पार हो जाओगी।

गोपी वचन—गोपिकाएँ उद्धव के इस कथन पर झुझला कर कहती है— उद्धव ! अब आप शान्त रहिये, योग का यह प्रलाप बन्द कर दीजिए—

"चुप रहौं ऊधौ सूधौ पथ मथुरा कौ गहौ" —'रत्नाकर

हमारे लिए तो यादवराज श्री कृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ धन हे। समस्त ब्रज-वासी श्री कृष्ण के ही उपासक है। तुम्हारा यह निर्गुण का ऊटपटाग ज्ञान सुन कर तो हसी आती है। अब तक तो उन्होने कभी योग की शिक्षा हमे नही दी थी, ज्ञात होता है कि कुब्जा ने उन्हे यह ज्ञान सिखाया है। कुब्जा से उसे पाकर श्री कृष्ण ने हमे अच्छा ग्राहक जान उद्धव के हाथो भेजकर खूब खोलकर इस ज्ञान को दिखाया है। जिस छलिया ने सम्पूर्ण ब्रज को एक

दृष्टि निक्षेप मे छल लिया था उसे ही कस की एक तुच्छ दासी ने ठग लिया —कैसा आश्चर्य है ? यदुराज श्री कृष्ण ने राम जन्म मे तपस्वी का रूप धारण किया था उसी पुण्य से उन्हे कुबडी कुब्जा जैसी सुन्दर पत्नी प्राप्त हुई है। सीता के वियोग मे तब उन्होने बडी व्यथा पायी थी किन्तु अब कुब्जा से रस-प्रसग कर हृदय को आनन्दित करते है। इस निराशापूर्ण ज्ञान को लेकर हम क्या करेगी, इसे तो आप कुब्जा के सिर पर रख दे।

उद्धव वचन—उद्धव उत्तर देते है—वह ब्रह्म अच्युत, अगम्य एव नित्य है एव वह सत्-रज-तम तीनो गुणो से निर्लिप्त है। अत. वह कुब्जा दासी को अगीकार नही कर सकते। वह तो सर्वथा अलिप्त शून्य स्वरूप है। अत हे गोपिकाओ सुनो, न कोई दासी है और न स्वामिनी. जहाँ देखो केवल ब्रह्म ही ब्रह्म है— "**सर्व खल्विद ब्रह्म**।"

यह ब्रह्माश मानव ही उस अशी ब्रह्म को जान सकता है। ब्रह्म के अतिरिक्त ससार में अन्य कुछ भी नही है।

गोपी-वचन— गोपियो ने कहा कि हे उद्धव आप अपनी बहुचर्चित निर्गुण-गाथा को बन्द कर दो। आपका ज्ञान भक्ति विरोधी होने के कारण अग्राह्य है। हे मधुप ! भला तेरे इस योगोपदेश से हो भी क्या सकता है, मेरे नेत्र ही वश में नहीं है जिन्हें तेरी निर्गुण की निरजन-ज्योति की खोज मे प्रवृत्त करूँ। वे नेत्र इस प्रकार निरन्तर कृष्ण के आगमन का मार्ग जोहते रहते है और हम कृष्ण वियोगिनियो को रात-दिन नीद नही आती। हम श्री कृष्ण के सुन्दर स्वरूप को देखकर ही जीवित रह सकती है एव प्राणयाम साधना नहीं कर सकती। हे भ्रमर ! तेरे यह कटु उपदेश हमे तनिक भी रुचिकर नही। भला इस योग कथा को लेकर हम क्या करे ?

उद्धव-वचन— गोपिकाओ के इस अनन्य प्रेम-व्रत को देखकर उद्धव कहने लगे कि हे ब्रजागनाओ ! तुम धन्य हो क्योकि मनमोहन श्री कृष्ण ही तुम्हारे सर्वस्व हैं। मैं भी तुम्हारे दर्शनो से इस प्रेमाभक्ति को प्राप्त कर रहा हूँ। इसीलिए मैं उस निर्गुण पथ का परित्याग कर सगुण-मार्ग को ग्रहण करता हूँ। तुम मेरी गुरु हो और मै तुम्हारा शिष्य — सेवक हूँ ; इस भक्ति को सुनाकर तुमने मुझे ससार-समुद्र से पार कर दिया। सूरदास जी वर्णन करते है कि गोपियाँ अत्यत सौभाग्यशालिनी हैं जिनको भगवान् श्री कृष्ण के दर्शनों

की लगन लगी हुई है। जो व्यक्ति इस 'भ्रमरगीत' को सुनेंगे वे प्रेमा-भक्ति को प्राप्त करेंगे।

विशेष—सूर के इस भ्रमरगीत मे अधिकाशत परम्परागत तर्क ही प्रस्तुत हुए है जिनमे वैसा सौन्दर्य नही जो सूर के भ्रमरगीत सम्बधी अन्य पदो मे। स्थान स्थान पर पुष्टिमार्गीय भक्ति सिद्धात एव शकर के अद्वैत का आश्रय लिया गया है।

मथुरा लौटने पर उद्धव का वचन कृष्ण-प्रति—

पद ३८०

गोपियो को ज्ञान का पाठ पढाने वाले उद्धव स्वय प्रेमा भक्ति मे दीक्षित होकर लौटते है। वे श्रीकृष्ण से कहते है—

हे गोकुलनाथ श्री कृष्ण जी! ब्रज जाकर मुझे अत्यत सुख प्राप्त हुआ है। आपने स्वजन जानकर ही सदेश-प्रेषित के बहाने मुझे ब्रजवासियो से मिलने भेजा था। यदि आप क्षमा करे तो मै वह सब निवेदन करूँ जो वहाँ देखकर आया हू। आपने अपने श्री मुख से जिस ज्ञानमार्ग का कथन किया था वह ब्रजवासियो को तनिक भी रुचिकर नही लगा। जीवन भर के अध्यवसाय से वेदादि शास्त्रो के जिस सिद्धात को प्राप्त किया उसे पल भर मे ही राधा ने व्यक्त कर दिया। जिस रहस्यमय आनद का वर्णन वेदादि शास्त्र, सहस्रफन-धारी शेषनाग, योगी शिव एव ब्रह्मा नही कर सकते उसी का वर्णन गोपियाँ आपके गुणगान द्वारा कर रही है। मै उस प्रेम-सागर मे डूब गया और उसके समक्ष मुझे अपनी निर्गुण कथा कटु लगी। ब्रज जाकर मैने आपका और ही प्रेममय स्वरूप देखा जिससे मेरी समस्त ज्ञान-पिपासा परितृप्त हो गई। आप की यह अवर्णनीय कथा आप ही जान सकते है, इसका जानना हम जैसे व्यक्तियो की सीमा से परे है। सूरदास जी वर्णन करते है कि यह कहत कहते श्रीकृष्ण के चरणो की ओर देखते ही प्रेम-विह्वल हो उद्धव के अश्रु बह निकले।

विशेष—१ पुष्टि मार्ग के अनुरूप गोपी-महत्ता वर्णन प्रस्तुत पद मे हुआ है। २. 'रत्नाकर' के उद्धव की भी ऐसी ही दशा ब्रज से लौटने पर हुई थी—

"रावरे पठाए जोग देन कौं सिधाए हुते
ज्ञान गुन गौरव के अति उदगार मैं।

कहै रतनाकर यै चातुरी हमारी सबै
कित धौं हिरानी दसा दारुन अपार मैं ॥
उड़ि उधिरानी किधौं ऊरध उसासनि मै
बहि धौं बिलानी कहूँ आँसुनि की धार मै।
चूर ह्वै गई धौं भूरि दुख के दरेरनि मै
छार ह्वै गई धौं विरहानल की भार मै॥"

पद ३८१

उद्धव गोप-समाज के दुख से व्यथित हो श्री कृष्ण से अनुनय करते है—

हे ब्रजनाथ ! कुछ दिन के लिए वृन्दावन चले चलिए। वहाँ पहुँचकर आप गौओ की आकुलता को दूर कर ग्वाल-बालो से भुजा पसार कर प्रेमपूर्वक मिलिए। जब से आपने ब्रज को छोडा है, उसी दिन से मनभावनी वर्षा-ऋतु आने पर भी मयूर नृत्य नही करते। आपके दर्शनाभाव मे मृग भी दुर्बल हो गये है क्योकि उन्हे अब मधुर मुरली की स्वर-लहरी सुनने को नहीं मिलती। वृन्दावन आपकी बाट जोहता है, तमाल के समान श्याम शरीर धारी प्रभु ! आप उसे चलकर दर्शन दीजिए। सूर वर्णन करते हैं कि उद्धव ने कहा कि हे कृष्ण माँ यशोदा के गृह को पुन सुशोभित कीजिए।

विशेष—१. ब्रज के कण-कण, चर और अचर की वियोग-विकलता से कृष्ण-प्रेम की व्यापकता परिलक्षित होती है। २. पुष्टिमार्ग मे ब्रज के वातावरण का भी महत्व है, इसीलिए सूर काव्य मे स्थान-स्थान पर ब्रज-वातावरण का चित्रण है।

पद ३८२

उद्धव श्री कृष्ण को गोपियों की प्रेमाभक्ति द्वारा अपने मन की स्थिति का वर्णन करते है—

हे प्रभु ! अब मेरा मन निश्चल एव शान्त हो गया है। मैं ब्रज मे निर्गुण-ज्ञान का उपदेश देने गया था किन्तु स्वय सगुण प्रेम-मार्गी बन गया। कहने को तो मै उस ज्ञान का उपदेश उन्हे दे आया क्योकि मैं ज्ञान का ही सदेश वाहक था, किन्तु उन ब्रजवासियों से मैंने सावधानी से बड़ा स्नेह रखा क्योकि अन्तत. वे आपके भक्त थे। भाव यह है कि यद्यपि मैं उनकी विचार धारा के प्रतिकूल निर्गुणोपदेश दे रहा था तथापि ब्रजवासियो से और उनके विचार

से मुझे बडी सहानुभूति थी आपका भक्त जान उनसे मैने उस विरोध मे भी स्नेह किया। मैंने जो कुछ भी ज्ञान-कथा कही उन्होने उसे तनिक भी न माना। सूर वर्णन करते है कि इस प्रकार मधुकर (उद्धव) अपना ज्ञान का बोरा उस प्रेम-समुद्र मे डबाकर मथुरा के लिए चल दिये।

पद ३८३

उद्धव श्री कृष्ण से कहते है—

हे कृष्ण! ब्रजभूमि का व्यवहार सुनिए। मै छ मास तक ब्रज मे रहा और विविध प्रश्न पूछकर गोपिकाओ के दृढ प्रेम को देखा है। ब्रजागनाओ के हृदय मे सदैव आपकी मूर्ति श्री बलराम के साथ बसी रहती है एव हृदयस्थ मूर्तियो पर नेत्र अपनी जलधारा का अर्घ्य चढाते रहते है जिससे वक्षस्थल पर अश्रु-जल प्रवहमान रहता है। वेदनाकुल होकर जब वे अपने हाथों से हृदय को मसोसती हैं कवि उस पर कल्पना करता कहता है कि गोपियाँ अचल के वस्त्र से कुच रूपी मगल कलशो को ढककर हस्त-कमल से मानो हृदयस्थ आराध्य की अर्चना करती है, (जिस प्रकार शिव की अर्चना मगल-घट एवं कमल सहित की जाती है उसी प्रकार श्री कृष्ण की उपासना की कल्पना की है) एव आत्मविभोर होकर वे प्रत्यक्ष ही आपकी प्रेम लीलाओ का आस्वाद लेती है और तदनन्तर आपका गुणगान कर उठती है। वे प्रेम-बावरी गोपियाँ आपकी राजीवनयन छवि का ध्यान करती है और अपना तन, मन, धन, गृह, सर्वस्व आपको अर्पित कर चुकी है। सूर वर्णन करते है कि उद्धव ने कहा कि उनके उस प्रेम-भजन के सम्मुख हमे अपना ज्ञानोपदेश तुच्छ दृष्टिगत होता है। वह प्रेम धन्य है।

विशेष—१ अलंकार—वस्तूत्प्रेक्षा, लुप्तोपमा, छेकानुप्रास। २ पुष्टि-मार्गीय भक्ति पद्धति के अनुकूल गोपियो के 'मार्जार-शिशु-न्यायवत्' समर्पण का चित्रण हुआ है।

पद ३८४

उद्धव ब्रज का वर्णन करते हुए कृष्ण से कहते है—

हे कृष्ण! मै आपसे कहाँ तक ब्रज की प्रेम कथा का वर्णन करूँ? गोपिकाएँ, ग्वाल-बाल, गौएँ एवं उनके बछडे सब मलिन मुख और क्षीण शरीर हो गये हैं, आपके अभाव मे उन के दिन कठिनता से कटते है। उनकी इस दीन

दशा को देखकर लगता है जैसे शिशिर ऋतु मे कमल दलो पर तुषारपात हो गया हो और अब वे नाल शेष रह गये हो। जो कोई पथिक ब्रज की ओर जाता है उससे सब आपका कुशल-समाचार पूछती है। वे प्रेमविभोर होकर उस पथिक को आगे नही बढने देती, विह्वल होकर अपने हाथो से उसके पैर पकड लेती है। कोकिल और चातक वृन्दावन मे अब रहते ही नही है क्योकि गोपिकाएँ उन्हे आपके सदेश पूछ-पूछ कर तग करती है। इसी भय से कौआ भी भोजन मे से निकले बलि-ग्रास को खाने ब्रज नही जाता। हे सूर-प्रभु कृष्ण ! अब इन सदेशो के भय से ही पथिक इस मार्ग से नही जाते।

विशेष— अलकार— अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा।

पद ३८५

ब्रज प्रेम का वर्णन करते उद्धव श्री कृष्ण से कहते है—

उन गोपिकाओ मे यदि पाँच दिन के अल्प समय के लिए भी रह लिया जाय तो हे प्रभु ! मै आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि मनुष्य आत्म-विस्मृत हो जाता है। गोपियो की वह प्रेम-लीलाएँ तथा हास-परिहास देखते ही बनता है। मुझ जैसा अभागी उस सुख को पुन कहाँ प्राप्त कर सकता है, अत्यत भाग्यवान् ही उसको पा सकते है। सूर वर्णन करते है कि उद्धव ने कहा कि मै मनसा वाचा-कर्मणा सत्य कहता हूँ, इसमे किसी भी प्रकार का दुराव नही है कि मुझे ब्रजवासियो ने इस प्रकार उपेक्षित कर दिया जिस प्रकार दूध से मक्खी निकाल कर फेक दी जाती है। भाव यह है कि मेरे ज्ञानोपदेश को उन्होने तनिक भी महत्त्व नही दिया।

विशेष— १. अलकार— लुप्तोपमा। २ 'दूध की मक्खी' मुहावरे का प्रयोग तुलसी की मन्थरा भी करती है—"**भामिनी ! भयऊ दूध की माखी।**"

पद ३८६

उद्धव श्री कृष्ण से कहते है—

हे चतुर कृष्ण ! तनिक ध्यानपूर्वक उस वृत्तान्त को सुनो कि मैने राधा को किस प्रकार आपके वियोग मे विकल क्षीण देखा है। जब वह सौन्दर्यवती राधा आपसे सदेश कहने के लिए मेरे पास आने को उठी तो कटि की क्षीणता के कारण उसकी करधनी खिसक गई एव अशक्तता से लडखडा कर वह गिर पडी। फिर युद्धक्षेत्र में गिरे योद्धा के समान अपने साहस को सचित करके वह उठी।

वह केवल मात्र आपके चरण कमल दर्शन की आशा पर जीवित है। सूर वर्णन करते है कि उद्धव ने कहा कि यद्यपि उनको समस्त सुख आपने प्रदान किये है किन्तु बिना आपके मुख-दर्शन के वे सब उनके लिए व्यर्थ है।

विशेष— १ अलकार— उपमा, रूपक एव अतिशयोक्ति। २ 'व्याधि' नामक वियोग दशा का चित्रण है।

पद ६८७

उद्धव श्री कृष्ण से ब्रज के प्रेम-पूर्ण व्यवहार का वर्णन करते है--

हे श्री कृष्ण ! यह ब्रजभूमि का व्यवहार बडा ही विचित्र है। वहाँ मेरा योगोपदेश तो बात की बात मे ऐसे उड गया जैसे वायु के झोके से भुस उड जाता है एव समस्त गोपिकाएँ आपके गोपाल स्वरूप का गुणगान करने लगी। गुणगान ही नही वे आपके द्वारा किये कृत्यो की अनुकृति करके आनन्द विभोर होती है। एक गोपिका एक हाथ मे लाठी लिए गौओ को चरा रही थी। दूसरी गोपी अन्य गोपियो को समूह मे बैठाकर बन भोजन दे रही थी। एक गोपी नटवरवेष धारण किये अनेक प्रेम लीलाएँ कर रही थी, एक आपके गुण एव कर्मों का यशोगान कर रही थी। मैने उन्हे अनेक प्रकार से समझाया कि तुम इस आत्म-विस्मृत अवस्था को छोड निर्गुण को अपना लो किन्तु उन्होने उन बातो पर तनिक भी ध्यान न दिया और मेरा श्रम व्यर्थ गया। सूर वर्णन करते है कि उद्धव ने कहा कि अब उन्हे नित्य-प्रति रातदिन एक ही लगन रहती है कि किस प्रकार आपकी प्रीति मे नित-नूतन सवर्द्धन हो। उन प्रेममयी गोपिकाओ के उस अटूट प्रेम-व्यवहार को देखकर समस्त आकर्षणहीन लगते है।

विशेष—१ लोकोक्ति अलकार है। २. **'हेला हाव'** का चित्रण है।

पद ३८८.

उद्धव कृष्ण से अपना व्रज-यात्रा का अनुभव सुनाते कहते है—

हे कृष्ण ! मैने अपने निर्गुण ज्ञान के कथन मे कोई कसर उठा नही रखी। अपनी बुद्धि, विवेक तथा अनुमान के आधार पर मैं जो कुछ कह सकता था, वह मैंने कहा। मै तो कठिनता से एक प्रहर मे कुछ कह पाता था किन्तु वे उसी अल्प समय मे उसके प्रतिवाद मे अनेक बाते कह जाती थी। अन्तत मैं तो अपनी पराजय स्वीकार कर निर्गुण की हठ छोड वहाँ से मुह लटका कर चला आया एवं मेरे मुख से शब्द भी न निकल सके तथा खेद सहित हृदय

उनके आधीन हो गया। मुझ दीन के सम्मुख वे इस प्रकार नेत्रो मे जल भर-कर रोने लगी जैसे कोई विपत्तिग्रस्त आशा की सहायता से रो पडता है। उस समय आपके श्री मुख से कही गई शास्त्र-प्रतिपादित ज्ञान-शिक्षा एक कहानी मात्र बन कर रह गई। सूर वर्णन करते है कि उद्धव ने कहा कि यदि वहाँ एक ही गोपिका इस स्थिति मे होती तो देखा भी जाता किन्तु वे सब की सब मुझे इस प्रकार से घेर लेती थी जैसे कि प्रेत सेना चढ आई हो। अत. मै वहाँ निरुत्तर ही हो गया।

विशेष—अलकार—उत्प्रेक्षा एव उपमा।

पद ३८९

उद्धव श्री कृष्ण से कहते है कि—

हे प्रभु ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं वह कथा सुनाऊँ जो मुझ पर ब्रज मे बीती है। मैने उन प्रेम-दिवानी गोपिकाओ को निर्गुण की योग कथा सुनाने का दु साहस किया था, अत मुझे इतना दुख तो प्राप्त होना ही चाहिए था। मै तो निर्गुण सबन्धी एक ही बात कहकर उसी को समझाने मे लगा रहता था किन्तु उन सबके समुद्र की वीचियो के समान असख्य तर्क उमड पडते थे, मै जिनका अर्थ भी हृदयंगम नही कर सकता था। मैं भला उनमे से किस-किस का उत्तर देता, अत मैदान छोडकर भाग लिया। वे जब मुझे प्रवृत्ति-मार्गी बना देती थी तो भला मैं योगियो की कंथा किसे पहना सकता था ? सूर वर्णन करते है कि उद्धव ने कहा कि समस्त ब्रज षट्-दर्शनो मे निष्णात था, मैं व्यर्थ ही उन्हे निर्गुण शिक्षा देकर प्रारम्भिक अक्षर ज्ञान कराने का मूर्खतापूर्ण कृत्य कर रहा था। मेरा यह ज्ञानोपदेश ऐसा ही था जैसे कोई आँखो की अघी मूर्खा खडाऊ पहनकर दौडने का उपक्रम करे।

विशेष—अलकार उपमा एवं निदर्शना।

पद ३९०.

उद्धव श्री कृष्ण से कहते है कि जब से आपका योग सदेश सुनकर राधा विकल हुई तब से ही उसके सुन्दर अगो द्वारा लज्जित उपमान सुख का अनुभव कर रहे है। वे कहते हैं—

हे कृष्ण ! जब से आपका निर्गुण-सदेश सुन कर राधा ,विरह-ज्वर से व्यथित हुई है तब से उसके अगो के सौन्दर्य से लज्जित विविध उपमानो को

अत्यत सन्तोष प्राप्त हो रहा है। उनकी वेणी के सौन्दर्य द्वारा लज्जित सर्प अब प्रसन्न हो गये है और स्वतत्रतापूर्वक पेट भर कर वायु का भोजन कर रहे है। जो मृग राधा के नेत्र-सौन्दर्य से लज्जित हो चरना छोड देते थे आज सब पुरातन पराजय विस्मृत कर गर्व से घूमते है। जो कोकिल राधा की मधुर वाणी से पराजय स्वीकार कर छिप जाती थी आज ऊँचे वृक्ष पर बैठ कर पक्षियो के समूह मे मधुर तान छेड रही है। जो सिंह उसकी कमर के लावण्य से गुफा मे जा छिपा था आज वहाँ से निकल कर गर्वपूर्वक अपनी पूंछ माथे पर रखने का प्रयास कर रहा है। हाथी राधा की मदमस्त चाल को देख कर छिप जाता था वही आज अपने अग-प्रत्यग की मदोन्मत्तता पर फूला नही समाता। सूर वर्णन करते है कि उद्धव ने कहा कि राधा ने आपके पास यह सदेश भेजा है 'क्या आप इसी भाँति मेरे शत्रुओ की मनचाही करते रहोगे ?' भाव यह है कि आप आकर पुन दर्शन दीजिए जिससे मेरी विरह-प्रदत्त क्षाणता दूर हो और ये उपमान पुन लज्जित होकर छिप जाँय।

विशेष—अलंकार—हेतूत्प्रेक्षा से पुष्ट अतिशयोक्ति ।

पद ३९१.

उद्धव कृष्ण से गोपिकाओ की प्रेम-विह्वल दशा का वर्णन करते है—

हे श्री कृष्ण सुनो ! आपके वियोग मे वे ब्रजागनाएँ वेदना से पागल सी हो गई है। आपकी कथा-वर्णन के अतिरिक्त हे नाथ ! उन्हे कहने के लिए अन्य कुछ है ही नही। कभी कहती है कि कृष्ण ने हमारा नवनीत खा लिया है, ऐसी कठिन परिस्थिति मे इस गाँव मे किस प्रकार रहा जा सकता है ? कभी कहती है कि 'चलो सखियो माखन चोरी का दण्ड देने के लिए गोपाल को ऊखल से बाँधेगी, सब अपने-अपने घर बाँधने के लिए रस्सियाँ ले चलो। कभी वे कहने लगती है कि 'श्री कृष्ण वन गये है अब तक नही लौटे है मार्ग देखते-देखते दृष्टि मद पड गई।' कभी वे कहती है कि 'वनवारी अपनी उस मधुर मुरली की स्वर लहरी मे हमारा नाम ले ले कर बुला रहे है।' कभी वे परस्पर कहती है कि इसी स्थान पर सखि हमने अभी कृष्ण के साथ चन्द्र-मुखी राधा को देखा है। सूर वर्णन करते हैं कि उद्धव ने कहा कि किन्तु हे प्रभु ! आपके वियोग में चन्द्रतुल्य उज्ज्वलवर्णा राधा अब श्यामल हो गई

विशेष—१ अलकार—रूपकातिशयोक्ति । २ 'उन्माद' नामक विरह-दशा का चित्रण है ।

पद ३९२

उद्धव श्री कृष्ण से राधा की वियोग दशा का वर्णन कर रहे हैं—

राधा मुझे आता देखकर एकदम से कह उठी कि कृष्ण जी ब्रज मे आ रहे है, यह उन्होने अच्छा ही किया ('सखा कछु अन्तर नाही') एवं विरहातुरा राधा ने आलिगन का जो उपक्रम किया तो केवल शून्य ही उसके बाहुपाश मे आ सका । उस विरह-विदग्धा का शरीर प्रकम्पित हो रहा था एव हृदय दुखमय घडकनो से धुकधुकी बन रहा था । ज्यो ही उसने आगे बढकर मिलने का प्रयत्न किया वह अशक्त हो गिर पडी एव पसीने के जल से भीगकर वह त्रस्त हो गई । इस विकलता मे उसकी केश राशि बिखर गई हाथ की चूडियाँ टूट गईं, वक्षस्थल मे पडी लड भी टूट गई एव उसकी जीर्ण चोली फट गई । उसकी इस दशा से मैं भली भाति समझ गया कि वह प्रेम के प्रण मे पडी प्रतिज्ञारत चकवी है । उसकी यह दशा देखकर प्रतीत होता था कि सर्प की पायी हुई मणि खो गई हो । सूरदास वर्णन करते है कि उद्धव ने कृष्ण से कहा कि राधा की विकलता का वर्णन मैं कहाँ तक आप से करूँ, वह तो नितात विवेकहीन एव चेतनाशून्य हो गई है ।

विशेष—१ अलकार—उत्प्रेक्षा एव अतिशयोक्ति । २ कम्प, स्वेद आदि सात्विको का चित्रण हुआ है ।

पद ३९३

उद्धव कृष्ण से राधिका की अत्यत आकुल-व्याकुल दशा का वर्णन करते कहते है—

हे माधव ! जिसने राधा की विकलावस्था को नही देखा है वह किस प्रकार उस अवस्था का वर्णन कर सकता है जिन दो विषमावस्थाओ को वह विरहिणी सहन करती है । वह कृष्ण प्रेम मे इस प्रकार तलीन और प्रिय से अभिन्न है कि जब उसे यह चेतना रहती है कि वह राधा है तब वह अपने मुख से 'कृष्ण-कृष्ण' की ही रट लगाए रहती है और कृष्णमय ही हो जाती है । कृष्ण होने पर उसका समस्त शरीर राधा के विरह में दग्ध होने लगा है । इस प्रकार उसकी दशा ऐसी ही है जैसे किसी लकडी के दोनो छोरो पर

आग लग जाने से उसके भीतर का कीडा शीतलता प्राप्त करने के लिए कभी इधर कभी उधर भागता है किन्तु उसे दोनो ओर दाह ही प्राप्त होता है। सूर वर्णन करते है कि उद्धव ने कहा कि इस प्रकार वह व्यथित वियोगिनी किसी भी स्थिति मे सुख प्राप्त नही कर पाती।

विशेष—१. अलकार—उपमा। २. तुलना कीजिए—

"राधा सय जब पुनतहि माधव माधव सयँ जब राधा,
दारुन प्रेम तबहि नहि टूटत बाढ़त विरहक बाधा।"
दुहि दिस दारु-दहन जैसे दगधई आकुल कीट पराग।"
—'विद्यापति'

'चण्डीदास' एव तुलसीदास मे भी इसी प्रकार के वर्णन प्राप्न होते है।

पद ३९४

उद्धव कृष्ण से राधिका की वियोग-विकल दशा का उल्लेख कर रहे है—

कृष्ण ! तुम्हारे निर्गुणोपदेश को सुन सुन कर एव तुम्हारे पुरातन गुणो का स्मरण आते ही राधा के दोनो विशाल नेत्रो मे जल उमड आया। उसी समय इस अश्रु-प्रवाह से मुख, समस्त शरीर एव वक्षस्थल सभी नेत्र जल से भीग गये। (भीगे उरोजो पर निरन्तर अश्रुधारा गिरते रहने पर कवि कल्पना करता है कि) मानो दो कमल (नेत्र) सुमेरु पर्वत (वक्षस्थल) की चोटी के ऊपर खिले हुए है जो चन्द्रमा (मुख) से उन कमलो की नाल (अश्रुधारा) द्वारा जुडे हुए है। आचल से ढके हुए उन भीगे स्तनो पर मोतियो की श्रेष्ठ माला सुशोभित हैं। ऐसा प्रतीत होता है। मानो चन्द्रमा (मुख) के उदय पर उसके द्वारा चुआए अमृत (अश्रु-कण) से मुकुलित कमल (उरोज) ओसकणो (मुक्ता-माल) को धारण कर सुशोभित हो। सूरदास जी वर्णन करते हैं कि उद्धव ने श्री कृष्ण से कहा कि कहाँ तो राधिका का वह अनन्य प्रेम और कहाँ आपका यह निर्गुणोपदेश—आप भी विपरीत व्यवहार ही करते हैं। भला आपके इस कटु-सदेश से विरह-व्यथित गोपिकाएँ किस प्रकार जीवित रह सकती है ?

विशेष—अलंकार—उत्प्रेक्षा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, वृत्त्यनुप्रास।

पद ३९५

उद्धव श्री कृष्ण से राधा की वियोग-व्यथा का वर्णन करते कहते है—

राधा के नेत्र घडे के समान सदैव जलपूर्ण रहते हैं, कभी भी तनिक सा भी पानी कम नही होता। इसके कारण ब्रज मे सदैव वर्षा की ऋतु की झडी लगी रहती है। भाव यह है कि राधा कृष्ण-वियोग मे निरन्तर अश्रु बहाती रहती है। इस विरह रूपी इन्द्र का अहर्निश बरसना अत्यत संतापकारी है। विरह के तीव्र श्वास-प्रश्वास ही झंझा के झोके हैं जिससे अश्रु-जल वक्षस्थल रूपी भूमि पर उमड उमड कर बह रहा है। इस जल की बाढ से भुजाएँ रूपी शाखाएँ, रोमावली रूपी वृक्षपाँति, वस्त्र रूपी आकाश एव उच्चस्थल उरोज—सभी कुछ डूब गया है। इस भीषण जल-वर्षा से समस्त इद्रियाँ रूपी पथिक थक कर रुक गये एव (शरीर के) सब स्थानो पर सयोग के समय लगाये गये चन्दन के अङ्गराग की अश्रु-जल मिलने से कीच ही कीच हो गई है। भाव यह है कि चन्दन आँसुओ से भीग कर गीला ही शरीर पर लगा हुआ है। इस प्रकार ब्रज मे समस्त ऋतुएँ समाप्त होकर, केवल वर्षा ऋतु ही रह गई है और इस प्रकार वहाँ विधि का विधान उलट गया है। सूर वर्णन करते है कि उद्धव ने कहा कि हे प्रभु! आपके वियोग के ही कारण ब्रज-प्रदेश मे षट् ऋतुओ का प्राकृतिक विधान समाप्त हो गया है।

विशेष— १ अलकार— साँगरूपक अर्थालंकार एव रूपक, श्लेष आदि शब्दालकार। २ 'जडता' दशा का वर्णन है।

पद ३६६

उद्धव श्री कृष्ण को अपना ब्रज-यात्रा का अनुभव सुनाते कहते हैं—

मैने उन गोपिकाओ को अपनी सामर्थ्यानुसार समझाने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु उन्हे मेरी ज्ञान-चर्चा मे विश्वास नही हुआ और उन्हे समस्त निर्गुणोपदेश स्वप्नवत् मिथ्या लगा। आपके द्वारा निर्दिष्ट तथा स्वयं की भी मति से मैने उन्हे पर्याप्त समझाया किन्तु उनके कान उन वचनो को सुनते ही नही। वे ज्ञानपूर्ण वचन उसी प्रकार व्यर्थ जाते है जिस भाँति घड़े मे कोई कुछ बात कहे तो वह प्रतिध्वनित होकर लौट आती है। भाव यह है कि गोपियो ने निर्गुण ज्ञान को हृदयङ्गम नही किया। चाहे कोई उनसे कितनी ही बाते बना बना कर समझाये किन्तु उन्होने तो एक ही टेक पकड रखी है कि हमे श्री कृष्ण का दर्शन हो जाय। वे ब्रजागनाएँ धन्य हैं जो कृष्ण-दर्शन के लिए इस दृढ़ प्रेम-व्रत का पालन कर रही हैं। सूर वर्णन करते है कि उद्धव ने कहा

कि उनकी यह प्रेम-विह्वल दशा देखकर मेरे नेत्रो मे जल उमड आया एव यहा की यह सब ज्ञान शिक्षा धरी की धरी रह गई। मै उसी प्रकार ठगा सा रह गया जिस प्रकार चकित मृग अपना पथ निर्दिष्ट नही कर पाता है।

विशेष— अलकार— उपमा।

पद ३९७

उद्धव श्री कृष्ण के सम्मुख गोपियो को ज्ञानमार्गी बनाने मे अपनी पराजय स्वीकार करते कहते है—

हे प्रभु ! अब आपको ब्रजवासियो का ही कहना मानना अधिक उपयुक्त होगा। मै अपनी ज्ञान-कथा की भूल भुलैयाँ के गुणो को मन ही मन समझ कर चुपचाप मन मे ही रहने दूँ— यही श्रेयस्कर है। मर्यादा का सर्वथा परित्याग कर युवतियो से जो योग अपनाने का आग्रह कर सके अब आप उसी को वहाँ भेजिये, उन्हे समझाना मेरे वश से परे है। अब तो मुझे वहाँ से गोपियो ने न जाने कितने दिन के लिए चुप करके भेज दिया है अर्थात् मुझे इतना लज्जित किया है कि मै न जाने कब तक अपना मुँह न खोल सकूगा। मुझ जैसे धूर्त, अल्पज्ञ मूर्ख को आपने व्यर्थ ही जानबूझकर वहाँ भेज दिया, वहा तो किसी महान् ज्ञानी की आवश्यकता थी। आप ही स्वय यहाँ बढ बढ कर इतनी बाते बना रहे हो, यदि वहाँ जाकर इस प्रकार प्रेम विरोधी बाते करे तो हम आपका साहस जानेगे। मै आपकी आज्ञा का उल्लघन भी नहीं कर सकता था उसका पालन करने के लिए ही आपकी इच्छा से ब्रज गया था। वास्तविकता यह थी कि आपका मुझे ब्रज भेजने का ऐसा ही आग्रह था जैसे हाथी किसी मुख की वस्तु को पेट मे पहुँचाने की धुन में रहता है, चाहे उसका लाभ हो या न हो।

विशेष—१. अलकार उपमा। २ रत्नाकर के उद्धव भी उद्धव को ब्रज जाने की ऐसी ही चुनौती देते हैं—

> **"एतौ और करत निवेदन स बेदन हैं**
> **ताकौ कछु बिलग उदार उर ल्यावौ ना।**
> **तब हम जानै तुम धीरज धुरीन जब**
> **नक बार ऊधौ बनि जाई पुनि आवौ ना।।"**